।। सप्तभङ्गी-प्रकाशः ।।

।। सप्तभंगी - रास ।।

स्यादस्त्येव

स्यान्नास्त्येव

स्यादवक्तव्यमेव

स्यादस्ति नास्त्येव

स्यादस्ति अवक्तव्यमेव

स्यान्नास्ति अवक्तव्यमेव

स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यमेव

।। મુનિ તીર્થબોધિ વિજય ।।

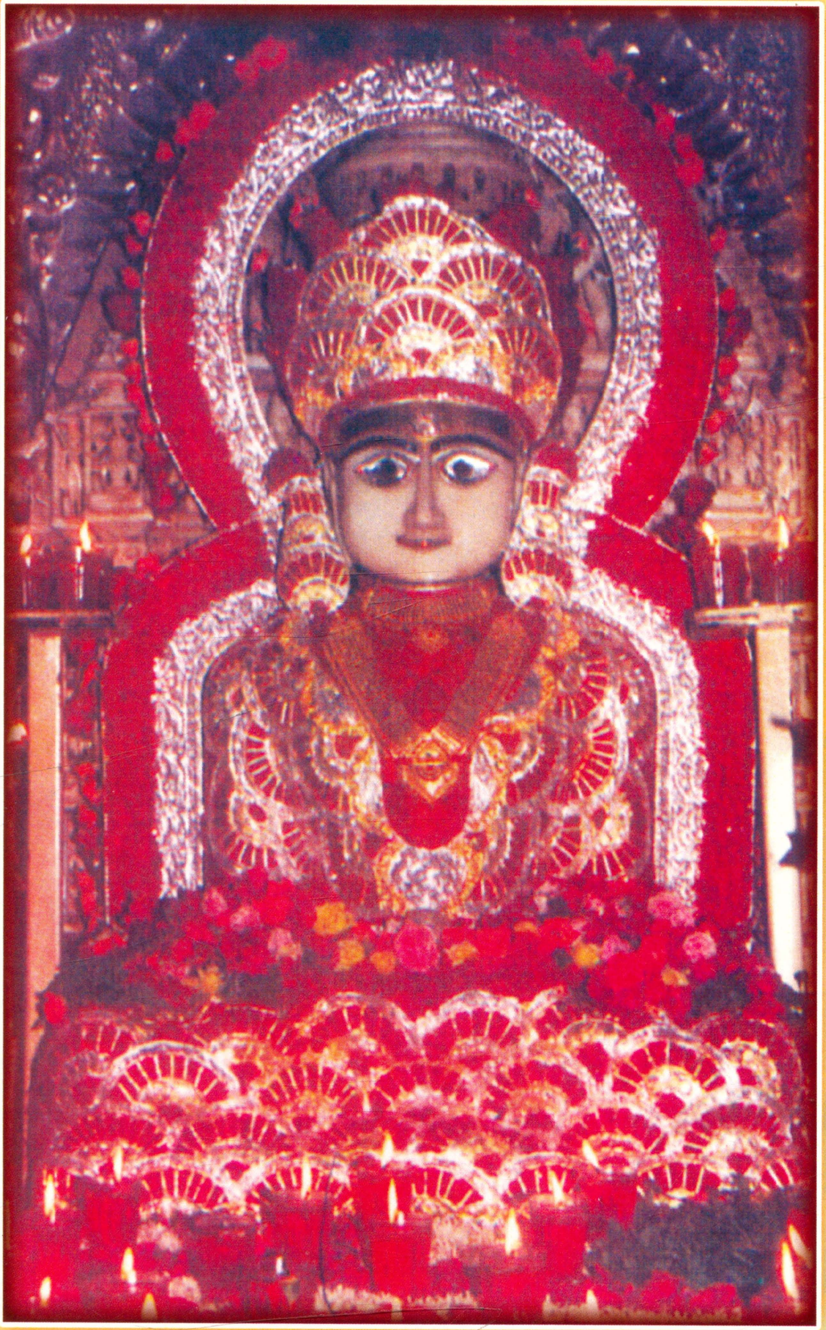

।। શ્રી આદિનાથ સ્વામી ।।

બોરીવલી - મંડપેશ્વર દેરાસરનાં મૂળનાયક

गुर्जरभाषाबद्ध "सप्तभङ्गी रास" समेतः

सप्तभङ्गी-प्रकाशः

मुनि तीर्थबोधि विजयः

વિજયશીલચંદ્રસૂરિ ગ્રંથ સંગ્રહ

आषाढ शुक्ल, वि.सं. २०७२

आवृत्ति : प्रथम

-: दिव्याशिष :-

सिद्धान्तमहोदधि गच्छाधिपति पूज्याचार्य श्री **प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा**
न्यायविशारद गच्छाधिपति पूज्याचार्य श्री **भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा**

-: पुण्याशिष :-

भीष्मतपस्वी मुनिराज श्री **मणिप्रभविजयजी महाराजा**
पूज्य पंन्यास श्री **कैवल्यबोधिविजयजी महाराजा**

-: अनुज्ञाआशिष :-

सिद्धान्त दिवाकर गच्छाधिपति पूज्याचार्य श्री **जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा**
पूज्य आचार्य श्री **वरबोधिसूरीश्वरजी महाराजा**
पूज्य पंन्यास श्री **पद्मबोधि विजयजी महाराजा**

-: प्राप्तिस्थान :-

श्री त्रिभुवनभानु शासन सेवा ट्रस्ट,
भरतभाई शाह, ए/४०३, ईस्टर्न कोर्ट, विलेपार्ले (ई), मुंबई.
मोबाईल : ९८२०३१०२७२

-: मुद्रक :-

राजुल आर्टस्
फोन : २५०१००५६, ९८६९३९०२८५

।। प्रस्तावना ।।

विश्व के पदार्थो का आरपार आकलन करने के लिए तत्पर बनी हुइ मानवीय प्रज्ञा जहाँ थकती है और हमेशा के लिए रुकती है वह एक दर्शन बन जाता है।

और अतीन्द्रियज्ञान के बल से जहां थकना या रुकना होता ही नही है वैसी इश्वरीय-कैवल्यप्रज्ञा पदार्थके अणु अणु को हर दिशासे आलोकित करके प्रस्तुत करती है वह सम्यग्‌दर्शन बन जाता है ।

दर्शन की भाषा में एक विरामस्थल होता है, जब कि सम्यग्‌दर्शन की भाषा में एक विश्रामस्थल होता है...

विराम लेने के बाद मार्ग और दिशाए मुद्रित हो जाते है। विश्राम में सहस्त्रमार्गो और अनंत दिशाए खुले हुए ही रह जाते है...

विराम में भी रुकना है विश्राम में भी रुकना है, दोनो रुकावट मे महदन्तर है, 'विराम' वो शाश्वत रोक है और 'विश्राम' वो मुसाफिर का आराम है...

नय और दुर्नयमें कुछ ऐसा ही फर्क है।

दुर्नय के पास जो एकांत है वो विराम की भूमिकावाला है, नय के पास भी एकांत है लेकिन वो है विश्राम की भूमिका से....

नय का अर्थ है-एक दिशा में विकसित द्रष्टिकोण। सर्व द्रष्टिकोणीय संग्रह-ज्ञान, उसे प्रमाण कहते है...

नय और प्रमाण सम्यग्दर्शन है। सर्वज्ञ शासन की मध्यस्थता परमोच्च है, केवल स्वदर्शनमें प्रस्तुत दृष्टिकोण को ही नय-उपाधि देना वैसा पक्षपात नही। परदर्शन में भी अगर कदाग्रह से मुक्त दृष्टिकोण है तो उसे भी नय कहने मे जैन-शासन को तनीक भी संकोच नही....

स्वदर्शन और परदर्शन का भेद स्वरूप से है जब कि नय और दुर्नय का भेद तो अध्यवसाय के आधार से निर्णीत होता है.... कदाग्रह-मुक्त अध्यवसाय दृष्टि मे नयत्व का निखार ला देता है...

नय जब भाषा में परिणत होता है तब उसमें पदार्थो की समग्रता प्रति गुप्त विनय होता है.... तादृश भाषा के वाक्य भेदोंका समावेश उसे सप्तभंगी कहते है... सप्तभंगी का प्रत्येक वाक्य नयरूप है और संपूर्ण सप्तभंगी प्रमाण रूप है...

अनेकांत, नय और सप्तभंगी जैनदर्शन की मौलिक धरोहर है। इस धरोहर को अनगिनत सरस्वतीपुत्रोने अपनी मार्गानुसारी प्रतिभा से अलंकृत कीया है, उसी के कारण जैन वाङ्मय समुद्र की तरह अपना अपार विस्तार धारण करता है... और यह विस्तार का वर्धन अद्यावधि अविरत है, क्योंकि प्रतिभा की परंपरा में नूतन प्रतिभाओंने अभी भी जन्म धारण करने का बंद नहीं कीया है....

नई प्रतिभा नया प्रकाश लाती है, नया सब सीसा नहीं होता और पुराना सब सोना नहीं होता.... नया सोना भी हो ही सकता है.....

और ऐसी क्रांति सभर प्रतीति प्रस्तुत ग्रंथ के अवलोकन से कीसी भी निष्पक्ष विद्वान को हो जाएगी।

सप्तभंगी जैसे विषय यूहि दुर्गाह्य है, तब उसके पर नवोन्मेष से भरी तर्क संपूर्ण अनुप्रेक्षा करना, उसे शास्त्रीय रीति से सुसंगत बनाना और पूर्वाचार्यो की सप्तभंगी विषय व्याख्या-विवेचना में प्राप्त दिशासूचन में से भी नवनीत निकाल के पदार्थ को सुस्पष्ट करना ये प्रचंड प्रतिभा, तलस्पर्शी ज्ञान और आत्मविश्वास के बिना संभव नहीं है....

केवल चौदह वर्ष संन्यस्त पर्याय में अनेक विषयों की ज्ञानसमृद्धि के साथ प्रस्तुत ग्रंथ को जन्म देनेवाले **पूज्य पंन्यास श्री पद्मबोधि विजय म.सा.** के शिष्य **मुनिराज श्री तीर्थबोधिविजयजी** ने इस ग्रंथ की रचना से स्वाभिधान सार्थक तो कीया ही है, साथ साथ आज तक में सप्तभंगी के विषय में जो भी प्ररुपणा हुई है उस में रही हुइ भ्रमणा का, वैशद्य और ताटस्थ्यसे उन्मूलन करने का प्रयास कीया है, यतः अभ्यासु वर्ग के उपर पारमार्थिक उपकार हो सके.....

इस रचना से कदाचित् कोइ क्षुब्धविक्षुब्ध हो सकता है, परंतु मुनिश्रीने इस ग्रंथ को अपनी मौलिक प्रतिभा से तर्क और शास्त्रीयता का अभेद्य कवच पहेना के रखा है, जो देखने के बाद अवश्य सराहना और सलाम से अभिनंदन का मन हो जाएगा...

मुनिश्री की विनम्रता भी प्रशंसनीय है, इस ग्रंथ मे छद्मस्थता से संभवित क्षतिओं का निदर्शन कराने के लिए विद्वानो कों मुनिश्रीने करबद्ध प्रार्थना की है... और क्षति अगर वास्तव में है तो उसका परिष्कार करने के लिए मुनिश्री तत्पर रहे है ।

आइए अब देखते है...

मुनिराजश्रीने प्रस्तुत ग्रंथ में क्या क्या अभिनव योगदान दिया है....

❖ जब ३ पदों के भंग पे विचार करते है तब असंयोगी द्विकसंयोगी और त्रिकसंयोगी ऐसे कुल मिलाके सात ही भंगस्थान हो सकते है। ये सप्तभंगी का नया उजाला है ।

❖ दो विरुद्ध धर्म-युगल से सप्तभंगी की रचना नहीं होती है, अपितु एक ही पर्याय पर सप्तभंगी बनती है, ये बात की शास्त्रपाठ के साथ स्पष्टता...

❖ **सन्मतितर्क** ग्रंथ में सप्तभंगी का तीसरा भंग है 'स्यादवक्तव्य एव' और **प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार** ग्रंथ में तीसरा भंग है 'स्यादस्ति नास्ति एव' ये विसंवाद के पीछे संभाव्यमान युक्ति की अनुप्रेक्षा तथा मतद्वय का समन्वय प्रयास।

❖ सप्तभंगी केवल व्यंजनपर्याय पर ही अवलंबित है इस बात का सयुक्तिक प्रतिपादन ।

❖ व्यंजनपर्याय कीसे कहते है? इस विषय की **सन्मतितर्क, द्रव्यगुणपर्याय-रास, विशेषावश्यकभाष्य, अनेकान्तव्यवस्थाप्रकरण** आदि ग्रंथो के आधार से निष्कर्षपूर्ण स्पष्टता....

❖ भाव नय और अभाव नय की वक्तव्यता से सप्तभंगी की प्रवृत्ति है ये नवीन अनुप्रेक्षा है...

❖ "अवक्तव्य" पद से वाच्य जो अर्थ है वह सर्वथा अवक्तव्य नही है, इस बाबत को **प्रमाणनय तत्त्वालोक, स्याद्वाद मंजरी, नयोपदेश, प्रवचनसारोद्धार** इत्यादि ग्रंथो के संदर्भ-साक्षी-पूर्वक दीर्घचर्चित कीया है और पदार्थ की शास्त्रीयता को सिद्ध कीया है।

❖ अवक्तव्य और अनभिलाप्य के बीच में जो भेद है उसे शास्त्राधीन रहकर सिद्ध कीया है।

❖ भंगस्थान सात ही होते है इस बारे में भी स्याद्वाद है ये एक नई ज्योति है...

❖ सकलादेश विकलादेश संबंधी विस्तृत विचारणा तथा उसकी समीक्षा एवं

संगति का प्रयास ।

❖ **प्रमाणनयतत्त्वालोक** में प्ररूपित सकलादेश की **रत्नाकरावतारिका** में दर्शित प्रचलित व्याख्या की समीक्षा तथा संभवित शास्त्रयुक्तिअबाधित व्याख्या की नव्यानुप्रेक्षापूर्वक पदार्थसंगति का प्रयत्न ।

❖ 'स्यादस्ति एव' ये प्रथमभंगस्थान ही सकलादेश विधया अनंत धर्मात्मक सकल वस्तुवाचक बन जाता है अत: वो प्रमाणवाक्य है, ऐसे **पू. मलयगिरि सूरिजी** के वचन की समीक्षा, एवं ऐदंपर्य को स्पर्शने का प्रयत्न ।

❖ **'अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे जस्स'** ये **सम्मतितर्क** की गाथा पे **पू. अभयदेवसूरिजी** कृत विवरण की समीक्षा और ऐदंपर्य को पाने का प्रयास।

❖ **"एवं सत्तवियप्पो..." सन्मतितर्क** की ये गाथा पे **पू. अभयदेवसूरिजी** कृत विवरण की **नयोपदेश** आदि ग्रंथ मे **पू. महोपाध्याय यशोविजयजी** म. ने की हुइ संगति की समीक्षा और उसके तात्पर्यार्थ के तल तक पहुंचने की प्रयति।

❖ स्यात्कार एवं एवकार का प्रयोग नयवाक्य में ही होता है, लेकिन प्रमाणवाक्य में नही होता है – वैसी भेदक स्पष्टता...

❖ नयवाक्य एवं प्रमाणवाक्य का स्वरुप क्या हो सकता है उसका शास्त्राधीन रहकर नवतम अनुप्रेक्षायुक्त स्पष्टीकरण ।

❖ नयवाक्य एवं दुर्नयवाक्य में रहे हुए भेद की अन्यान्य शास्त्राधार से निष्कृष्ट स्पष्टता । उपसर्जनता पदार्थ का स्पष्टीकरण ।

❖ **महोपाध्यायजी श्री यशोविजयजी** कृत **नयोपदेश** मे कथित स्वसमयवाक्यत्व परसमयवाक्यत्व नयवाक्यत्व दुर्नयवाक्यत्व के निष्कर्षस्पर्शी लक्षणों का सार-संग्रह ।

❖ धर्मदेशना प्रमाणरूप ही होती है, वैसा एकांत नहीं है, धर्मदेशना नयरूप भी होती है अत: उसमें भी स्याद्वाद है वैसा सयुक्तिक निरूपण।

ऐसी अनेक नवीन अनुप्रेक्षाओं से समृद्ध यह ग्रंथ अवश्य ग्राह्य व उपयोगी बनेगा ऐसी आशा सह।

– गणिवर्य लब्धिवल्लभ वि.म.

।। પ્રાસ્તાવિકમ્ ।।

દીર્ઘ મહાકાવ્યોમાં જેમ અવાન્તર રમ્ય વાર્તાઓ આવતી હોય છે, તેમ મારાં માટે **'સપ્તભંગી પ્રકાશ'** એ અવાન્તર સ્વાધ્યાય છે. મૂળ તો **'નયોપદેશ'**નો સ્વાધ્યાય ચાલુ કર્યો હતો. જે અદ્યાવધિ પ્રવર્તમાન જ છે. તેમાં સપ્તભંગી વિષયક ૬ઠ્ઠી ગાથા પરની **નયામૃતતરંગિણી**એ ચિંતન મનન મંથન કરવા પ્રેર્યો. પરિણામ સ્વરૂપે સપ્તભંગી વિષયક અનેક શાસ્ત્રોના મંથનથી સુંદર ચિંતન-નવનીત નીકળ્યું. **''અનુપ્રેક્ષા''** સ્વાધ્યાયનો આનંદ માણ્યા પછી **''ધર્મકથા''** સ્વાધ્યાયના સ્વરૂપે તે નવનીતનો આ પુસ્તક સ્વરૂપે વિનિયોગ કરતાં અત્યારે ગહેરો સંતોષ અનુભવાય છે.

આ સપ્તભંગી વિષયક મહાનિબંધાત્મક ગ્રંથમાં માત્ર દિગ્દર્શન કરાવીને અમુક પ્રકરણો જે છોડી દીધા છે, એની ઉપર હકીકતમાં સ્વતંત્ર એક એક ગ્રંથ રચી શકાય છે. પણ મારો પ્રયાસ માત્ર વિષય સંકલના પૂરતો જ છે. માટે શક્યતઃ લાઘવ રાખવાનો પ્રયાસ કર્યો છે.

પ્રાચીન તથા અર્વાચીન શાસ્ત્રકાર પૂજ્યોની આમાં અમુક જગ્યાએ સમીક્ષા પણ છે. તથા અમુક નવી વાતો એવી છે જે નજીકનાં ભૂતકાળમાં કહેવાઇ નથી, માટે વર્તમાનમાં પ્રચલિત નથી. માટે અમુક સુહૃદ્વર્યોએ મને તે અંશો પ્રગટ ન કરવા માટે સૂચના આપી હતી. તેમણે કહ્યું હતું કે શાસ્ત્રાબાધિત અને યુક્તિસંગત હોવાં છતાં પણ આ વાતો ચર્ચાસ્પદ અથવા વિવાદાસ્પદ બનશે. માટે પ્રકટ ન કરવી. તે સર્વે પૂજ્યોનાં સ્નેહનો હું આદર કરું છું. છતાંય ગવેષક તરીકે કે સંશોધક તરીકે મને જે સત્ય તત્ત્વ સાંપડ્યું હોય, એને સુજ્ઞજનો સમક્ષ રજૂ કરવાનો લોભ હું જતો કરી શકું એમ નથી. જો જનાપવાદ વગેરેથી ડરીને **મહોપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી મહારાજે** સત્ય તત્ત્વ ગ્રંથો દ્વારા આપણાં સુધી પહોંચાડ્યું ન હોત તો આજે આપણે અનેક બાબતે અંધકારમાં જીવતાં હોત.

આ ગ્રંથમાં સપ્તભંગી પર પ્રકાશ પાડવાનો પ્રયત્ન થયો છે. માટે આનું નામ **'સપ્તભંગી-પ્રકાશ'** વિચાર્યું છે.

આદિથી અંત સુધી પૂજ્ય ગુરુદેવ પંન્યાસ **શ્રી પદ્મબોધિ વિજય મ.સા.**નાં પ્રેરણા-સહાય-કૃપા રહ્યાં. સુહૃદ્વર્ય મુનિરાજ **શ્રી યશરત્ન વિ.મ.**ની પણ અનેક બાબતે અંગત સહાય રહી. તે બદલ તેમનો ઋણી છું. આવું કહીશ તો એમને નહીં ગમે, ને નહીં કહું તો હું કૃતઘ્ન કહેવાઇશ....

મુનિરાજ **શ્રી ભવ્યસુંદર વિ.મ.** એ પણ અમુક અમૂલ્ય સૂચનો કર્યા. તથા સુહૃદ્વર્ય મુનિરાજ **શ્રી કરુણાદ્રષ્ટિ વિ.મ.** એ પણ આંશિક સંશોધન કર્યું, ને સંમાર્જન કર્યું, તે બદલ પૂજ્યોનો ખૂબ આભાર...

સુહૃદ્વર્ય ગણિવર્ય **શ્રી લબ્ધિવલ્લભ વિ.મ.**એ પાંચ દિવસની સહ સ્થિરતા દરમ્યાન ગ્રંથનાં બધાં જ પદાર્થો યથાર્થ રીતે જાણ્યાં, મને સ્વાધ્યાયનો લાભ આપ્યો ને સુંદર પ્રસ્તાવના લખી આપી તે બદલ તેઓશ્રીનો પણ આભાર...

મારો ઉદ્યમ કદાચ અધિક હશે. પણ પ્રતિભા અત્યલ્પ છે. જો આ સર્વે પૂજ્યોની પૂરક સહાય ન મળી હોત, તો ગ્રંથ અનેક રીતે અધૂરો રહી જાત... હું આ ગ્રંથને પૂર્વપુરુષરચિત ગ્રંથો-શાસ્ત્રોની તુલનામાં તથા મારી જાતને તે પૂજ્ય ગ્રંથકારોની તુલનામાં નવત્, અકિંચિત્ ગણું છું. મારાં મતે આ કોઇ ગ્રંથ નથી. પણ પૂજ્યોનાં શાસ્ત્રોને આધારે થયેલી નવોન્મેષ સભર અનુપ્રેક્ષાઓનો સમુચ્ચય માત્ર જ છે. અને હું સર્જક નથી, માત્ર વિચારક છું.

પ્રાંતે, ખૂબ કાળજી રાખવાં છતાંય છદ્મસ્થતાવશાત્ રહી ગયેલી ક્ષતિઓ તરફ બહુશ્રુતો ધ્યાન દોરશે એવી અપેક્ષા, દુર્જનોનાં દુર્દાન્ત પ્રલાપોની ઉપેક્ષા, જેઓના ગ્રંથો દ્વારા સ્વાધ્યાયનું ભાથું મળ્યું એ પ્રાચીન શાસ્ત્ર નિર્માતા પૂજ્યોનાં ચરણોમાં ભાવભરી વંદના સહ વિરમું છું.

આમાં જે સારું છે, તે દેવ-ગુરુકૃપાનું પરિણામ છે, ને જે નરસું છે, તે મારી છદ્મસ્થતાનાં કારણે છે. પ્રસ્તુત ગ્રંથમાં જિનપ્રવચન વિરુદ્ધ કાંઇપણ લખાયું હોય, તો ત્રિવિધ-ત્રિવિધે મિચ્છામિદુક્કડમ્.

લિ. તીર્થબોધિ વિ.

સપ્તભંગી રાસ વિશે કાંઈક...

સપ્તભંગી પ્રકાશની કરેક્શન કોપી દસથી બાર વિદ્વાન મહાત્માઓને તપાસવા મોકલી ત્યારે એકાધિક મહાત્માઓનું સૂચન આવ્યું કે આનું ગુજરાતી પણ હોવું જોઇએ. બસ, એ જ નિમિત્તને પામીને સપ્તભંગી રાસની રચના થઇ.

એક અનુભૂતિ જે સપ્તભંગી પ્રકાશ વખતે પણ થઇ હતી. તે સપ્તભંગી રાસ વખતે વધુ ઘેરી રીતે થઇ. તે આ હતી, કે આ ગ્રંથની રચના દરમ્યાન મારી આસપાસ નિરંતર અદશ્યપણે પ્રાચીન ગ્રંથનિર્માતા પૂજ્યોની હાજરી સતત અનુભવતો હતો. ગણધર સુધર્મા સ્વામીજી, ઉમાસ્વાતિજી, સિદ્ધસેન દિવાકર સૂરિજી, વૃદ્ધવાદીદેવ સૂરિજી, અભયદેવ સૂરિજી, હેમચંદ્રાચાર્યજી, મલયગિરિજી, રત્નપ્રભસૂરિજી, મલ્લિષેણસૂરિજી અને મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી... આ દરેક પૂજ્યો મને વારાફરતી જ્ઞાન આપતાં, શીખવતાં, સમજાવતાં, ચૂકી જાઉં તો ટોકતાં... આ ગ્રંથનાં માધ્યમે તે સર્વ પૂજ્યોનું ગાઢ ઉપનિષદ્ અનુભવાયું, તે મારા માટે અવિસ્મરણીય સંભારણું બની રહેશે.

આજે ગ્રંથની સમાપ્તિ થતાં તે પૂજ્યોની જ વાતોને સૌની સમક્ષ મૂકવાનો એક સંતોષ-આનંદ છે. એની સાથોસાથ એમના પવિત્ર ઉપનિષદ્માંથી બહાર નીકળી જવાનો ડર અને દુઃખ પણ છે.

ફરી ફરીને તે પૂજ્યોને પ્રાર્થના કરું-

"હે ગ્રંથકાર ભગવંતો! તમારાં ચરણમાં રાખો મને."

સપ્તભંગી-રાસમાં જિનાજ્ઞા વિરુદ્ધ કાંઇ પણ લખાણ થયું હોય, તો ત્રિવિધે-ત્રિવિધે મિચ્છામિદુક્કડમ્.

- તીર્થબોધિ વિ.

સપ્તભંગી-પ્રકાશ ગ્રંથમાં નિમ્નોક્ત ગ્રંથોનાં સાક્ષીપાઠો મૂકવામાં આવ્યા છે

૧.	શ્રી ભગવતીસૂત્ર	ગણધરપ્રણીત
૨.	શ્રી સમવાયાંગ સૂત્ર	ગણધરપ્રણીત
૩.	શ્રી વિશેષાવશ્યક ભાષ્ય	જિનભદ્રગણિ ક્ષમાશ્રમણ રચિત
૪.	શ્રી તત્ત્વાર્થ સૂત્ર	ઉમાસ્વાતિજી રચિત
૫.	શ્રી પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર	વાદિદેવસૂરિ રચિત
૬.	શ્રી સમ્મતિતર્ક ગ્રંથ	સિદ્ધસેનદિવાકરસૂરિ વિરચિત
૭.	શ્રી અન્યયોગ વ્યવચ્છેદ દ્વાત્રિંશિકા	કલિકાલસર્વજ્ઞ હેમચંદ્રાચાર્ય વિરચિત
૮.	શ્રી પ્રવચનસારોદ્ધાર	નેમિચંદ્રસૂરિ વિરચિત
૯.	સમ્મતિતર્ક વૃત્તિ	શ્રી અભયદેવસૂરિ રચિત
૧૦.	રત્નાકરાવતારિકા	શ્રી રત્નપ્રભસૂરિ રચિત
૧૧.	સ્યાદ્વાદમંજરી	શ્રી મલ્લિષેણાચાર્ય રચિત
૧૨.	આવશ્યકનિર્યુક્તિવૃત્તિ	શ્રી મલયગિરિસૂરિ રચિત
૧૩.	નયોપદેશ	મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી મ.સા. વિરચિત
૧૪.	નયામૃત તરંગિણી	મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી મ.સા. વિરચિત
૧૫.	અનેકાન્ત વ્યવસ્થા	મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી મ.સા. વિરચિત
૧૬.	ગુરુતત્ત્વ વિનિશ્ચય	મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી મ.સા. વિરચિત
૧૭.	નયરહસ્ય	મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી મ.સા. વિરચિત
૧૮.	દ્રવ્યગુણપર્યાયનો રાસ	મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી મ.સા. વિરચિત
૧૯.	સપ્તભંગી તરંગિણી	શ્રી વિમલદાસ રચિત

સપ્તભંગી-પ્રકાશ રચતાં પૂર્વે નિમ્નોક્ત ગ્રંથોનું અવગાહન થયું

આપ્તમીમાંસા, અષ્ટસહસ્રીતાત્પર્ય વિવરણ, ન્યાયાવતાર, સપ્તભંગીનયપ્રદીપ, જૈન તર્કભાષા, સ્યાદ્વાદ કલ્પલતા, સપ્તભંગી વિંશિકા

अभिप्राय

श्रीवीरप्रभुपर्जन्यात्, सप्तभङ्ग्यम्बु सुन्दरम् ।
विश्वविश्वोपकाराय, वृष्टं परमशर्मदम् ॥१॥

विना जलं यथा जीवा, नाप्नुवन्ति कदापि शम् ।
तथैव मुक्तिसौख्यं नो, सप्तभङ्गीजलं विना ॥२॥

मुनिप्रवर-विद्वर्य-श्रीतीर्थबोधिभिर्यहो! ।
विषये सप्तभङ्ग्याख्ये, स्वनुप्रेक्षाऽद्भुता कृता ॥३॥

लघुवयसि पर्याये, लघौ च चिन्तनं महत् ।
अदायि सर्वसङ्घाय, स्व-परहितकाङ्क्षिभिः ॥४॥
(युग्मम्)

मुनिश्रीतीर्थबोधीनां, सप्तभङ्गीप्रकाशकः ।
प्रकाशः सर्वजन्तुभ्य-स्तीर्थबोधिप्रदो भवेत् ॥५॥

– मुनि श्री राजसुन्दर विजयः ।

अनुक्रमणिका

अथ स्वोपज्ञटीकामङ्गलम् १
શ્રી ગુરુભ્યો નમઃ २
मङ्गलाभिधेयप्रयोजनानि ३
सप्तभङ्गीमहिमगानम् ३
મંગલ, અભિધેય, પ્રયોજન ४
સપ્તભંગીનું મહિમાગાન ४
सप्तभङ्गीज्ञानस्यावश्यकत्वम् ५
सप्तभङ्ग्याः शास्त्रीयं लक्षणम् ५
સપ્તભંગીના જ્ઞાનની આવશ્યકતા ६
સપ્તભંગીનું શાસ્ત્રીય લક્ષણ ६
सप्तभङ्गीविरचना ७
સપ્તભંગીની રચના ८
सदादिवस्तुनः पर्याप्तो बोधः सप्तभङ्ग्या जायते ९
व्यञ्जनपर्यायत्वार्थपर्यायत्वयोः स्पष्टीकरणम् ९
સદ્ વગેરે વસ્તુનો પર્યાપ્ત બોધ સપ્તભંગીથી થાય ૧૦
વ્યંજનપર્યાયત્વ, અર્થપર્યાયત્વની સ્પષ્ટતા ૧૦
सप्तभङ्ग्यैव पर्याप्तो बोध इत्यत्रानेकान्तता १७
छद्मस्थानां वस्तुविषयकपर्याप्तबोधाऽसम्भवः १७
भावाऽभावनयवक्तव्यतानिर्मितत्वं सप्तभङ्ग्याः १९
સપ્તભંગીથી જ પર્યાપ્ત બોધ - આ બાબતે અનેકાન્ત ૨૦
છદ્મસ્થને વસ્તુને વિષે પર્યાપ્તબોધ થવો અસંભવ ૨૦
समस्तस्यापि वस्तुनो भावाभावात्मकत्वम् २१
સપ્તભંગી એ ભાવનય- અભાવનયની વક્તવ્યતા રૂપ છે ૨૨
सप्तभङ्गीप्रयोजिका परिपाटिः २३

પૂર્ણ વસ્તુ એ ભાવાભાવાત્મક છે ૨૪
સપ્તભંગી પ્રયોજક ક્રમ ૨૪
प्रथमभङ्गविवेचना २७
प्रथमभङ्गस्य वाक्यार्थमहावाक्यार्थादिकम् २७
પ્રથમ ભંગનું વિવેચન ૨૮
स्यात्पदस्यार्थः २९
પ્રથમ વાક્યનાં વાચ્યાર્થ-મહાવાક્યાર્થ વગેરે.. .... ૩૦
प्रसङ्गतो वस्तुस्वरूपदर्शनम् ३१
સ્યાત્ પદનો અર્થ ૩૨
પ્રસંગથી વસ્તુના સ્વરૂપનું નિરૂપણ ૩૨
एवकारस्यार्थः ३५
द्वितीयभङ्गविवेचना ३७
'એવ' કારનો અર્થ ૩૮
દ્વિતીય ભંગનું વિવેચન ૪૦
तृतीयस्याद्यद्वयातिरिक्ततासाधनम् ४१
तृतीयस्य तुर्यातिरिक्ततासाधनम् ४१
तृतीयभङ्गजज्ञानाकारान्वीक्षा ४१
अथ अवक्तव्यपदस्यार्थसमीक्षात्मको दीर्घः प्रमेयः ४३
छाद्मस्थिकज्ञानस्य युगपदनेकार्थप्रत्यक्षेऽसामर्थ्यम् ४३
ત્રીજો ભાંગો પ્રથમ-દ્વિતીયથી ભિન્ન છે ૪૪
ત્રીજો ભાંગો ચોથા ભાંગા કરતાં અલગ છે ૪૪
ત્રીજા ભાંગાથી જન્ય જ્ઞાનનાં આકારની વિચારણા ૪૪
અવક્તવ્ય પદાર્થની વિચારણા રૂપ દીર્ઘ નિબંધ ૪૬
वैकल्पिकार्थस्योपलब्धौ भजना ४७
अवक्तव्यत्वानभिलाप्यत्वयोर्विशेषः ४७

वक्तव्यत्वसप्तभङ्ग्यां द्वितीयचतुर्थयोरतिरिक्ततासाधनम् ४७
છાદ્મસ્થિક જ્ઞાનમાં યુગપદ્ અનેક અર્થોનું પ્રત્યક્ષ ન થાય ૪૮
अवक्तव्यपदस्थाने उभयपदप्रयोगः किं न स्यात्? ४९
વૈકલ્પિક અર્થની ઉપલબ્ધિમાં ભજના ૫૦
અવક્તવ્ય એ અનભિલાપ્ય નથી ૫૨
વક્તવ્યત્વ પર્યાયની સપ્તભંગીમાં દ્વિતીય-ચતુર્થ ભંગ સમાન છે? ૫૨
स्थितपक्षः ५३
અવક્તવ્ય પદની જગ્યાએ 'ઉભય' પદ કેમ નહીં? ૫૪
अवक्तव्यत्वस्य व्यञ्जनपर्यायत्वसाधनम् ५५
तृतीयतुर्ययोर्वैलक्षण्यसाधनम् ५७
સ્થિતપક્ષ ૫૮
तृतीयचतुर्थयोः क्रमव्यत्यये निदानम् ५९
અવક્તવ્યત્વ પણ વ્યંજન પર્યાય છે ૬૦
તૃતીય ચતુર્થ વાક્ય ભિન્નાર્થક છે ૬૨
ત્રીજા-ચોથા ભાંગાના ક્રમમાં ફરક કેમ? ૬૨
भङ्गसप्तत्वसङ्ख्यानियमनम् ६३
प्रथमचतुर्थयोः पुनरुक्तताशङ्काव्युदासः ६५
ભાંગા સાત જ હોય, એ નિયમ ૬૬
પ્રથમ-ચતુર્થનાં મિશ્રણમાં પુનરુક્તિ નથી ૬૮
सम्मतितर्कोक्तः सप्तभङ्ग्यां सप्तनयसमवतारः ६९
अत्र महोपाध्यायानां समीक्षा ६९
સમ્મતિતર્કમાં કથિત સપ્તભંગીમાં સાત નયોનો સમવતાર ૭૨
महोपाध्यायवचसां तात्पर्यगवेषणा ७१
અહીં મહોપાધ્યાયજીની સમીક્ષા ૭૪
મહોપાધ્યાયજીનાં વચનોની તાત્પર્યગવેષણા ૭૪

व्याख्यान्तराश्रयणे शब्दनयेन सप्तभङ्ग्यभावाशङ्कनं तुद्व्युदासश्च ७९
रत्नाकरावतारिकाऽनुसारेण सकलादेशस्वरूपम् ८१
रत्नाकरावतारिकाऽनुसारेण विकलादेशस्वरूपम् ८३
બીજી વ્યાખ્યા મુજબ શબ્દનયથી સપ્તભંગીનાં અભાવની શંકા અને તેનો નિરાસ ૮૪
तर्कपञ्चाननाभयदेवसूरिनिरूपितं सकलादेशविकलादेशस्वरूपम् ८५
રત્નાકરાવતારિકા મુજબ સકલાદેશનું સ્વરૂપ ૮૬
वृत्तिकृतां वचनानां किं तात्पर्यम्? ८७
રત્નાકરાવતારિકા મુજબ વિકલાદેશનું સ્વરૂપ ૮૮
सम्मतिगाथातात्पर्यगवेषणा ९१
તર્ક પંચાનન શ્રી અભયદેવસૂરિજીએ નિરૂપેલું
સકલાદેશ-વિકલાદેશનું સ્વરૂપ ૯૨
વૃત્તિકારના પ્રતિપાદનનું તાત્પર્ય શું? ૯૪
सम्मतिगाथाप्रतिपादितसकलादेशत्वविकलादेशत्वयोरनुप्रेक्षितं निदानम्............... ९५
सकलविकलादेशप्रयोजनम् ९५
સમ્મતિ ગાથાની તાત્પર્યગવેષણા ૯૬
प्रामाणिकवस्तुज्ञानं प्रतिपादनञ्चार्वाग्दर्शिनां भवेन्न वा? ९७
प्रसङ्गाद् वस्तुलक्षणविचारणा ९९
સમ્મતિની ગાથામાં જણાવેલાં સકલાદેશત્વ અને વિકલાદેશત્વનું
અનુપ્રેક્ષિત નિદાન ૧૦૦
સકલાદેશ - વિકલાદેશનું પ્રયોજન ૧૦૦
एकवाक्यस्य प्रमाणवाक्यत्वं स्यान्न त्वेकभङ्गस्य १०१
પ્રામાણિક વસ્તુનું જ્ઞાન કે પ્રતિપાદન છદ્મસ્થથી શક્ય છે ખરું? ૧૦૨
प्रसङ्गात्प्रमाणनयतत्त्वालोकप्रतिपादितसकलादेश-
विकलादेशतात्पर्यगवेषणा १०३
પ્રસંગથી વસ્તુનાં લક્ષણની વિચારણા ૧૦૪

पूज्यमलयगिरिपादानां वचसां तात्पर्यगवेषणा १०५
प्रमाणवाक्ये स्यात्कारैवकारयोरप्रयोग एव तन्त्रम् १०९
પ્રસંગવશાત્ પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકમાં જણાવેલી સકલાદેશ-વિકલાદેશની
પરિકલ્પનાનાં તાત્પર્યની ગવેષણા ૧૧૦
सप्तभङ्गी प्रमाणवाक्यमिति महोपाध्यायाः १११
अर्थाविसंवादिज्ञानत्वं प्रमाणज्ञानत्वमिति न १११
स्वसमयपरसमयनयवाक्ययोः प्रदेशपरमाणुभ्यामौपमित्यम् १११
મલયગિરિ સૂરિજીના કથનનું તાત્પર્ય શું? ૧૧૨
પ્રમાણવાક્યમાં સ્યાત્ એવ નો પ્રયોગ ન હોય ૧૧૪
दुर्नयत्वपरिभाषास्पष्टीकरणम् ११५
સપ્તભંગી એ પ્રમાણવાક્ય છે ૧૧૬
नयत्वविलोपशङ्कनं तद्व्युदासश्च ११७
અવિસંવાદિ જ્ઞાન એ પ્રમાણજ્ઞાન? ૧૧૮
સ્વસમય અને પરસમયનાં નયવાક્યોની પ્રદેશ-પરમાણુનાં દ્રષ્ટાન્ત
સાથે તુલના ૧૧૮
नयस्वरूपविचारणा निष्कर्षश्च ११९
प्रसङ्गाद् उपसर्जनापदार्थस्पष्टीकरणम् ११९
દુર્નયત્વની પરિભાષાની સ્પષ્ટતા ૧૨૦
સુનયના સ્વરૂપની વિચારણા અને નિષ્કર્ષ ૧૨૨
પ્રસંગથી ઉપસર્જનતા પદાર્થનું સ્પષ્ટીકરણ ૧૨૪
दुर्नयनययोर्निष्कृष्टं स्वरूपम् १२५
दुर्नयत्वमिति नेतरप्रतिक्षेपित्वं, किन्तु मिथ्यैकान्तत्वमेवेति १२५
वक्ता प्रमाणवाक्यं नयवाक्यं वोपयुक्ततयोपयुञ्जानः शुद्धदेशकः १२७
દુર્નય અને નયનું નિષ્કૃષ્ટ સ્વરૂપ ૧૨૮
દુર્નયત્વ એ બીજાનાં વિરોધથી ન આવે પરંતુ મિથ્યા એકાન્તરૂપ હોવાથી
જ આવે ૧૨૮

प्रमाणनयदेशनायामुत्सर्गापवादत्वाभावः १२९
ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः १३१
પ્રમાણવાક્ય અને નયવાક્યનો યોગ્ય રીતે ઉપયોગ કરે તે
શુદ્ધપ્રરૂપક કહેવાય ૧૩૨
પ્રમાણદેશના અને નયદેશનામાં ઉત્સર્ગ અને અપવાદભાવ ન
માની શકાય ૧૩૩
પ્રશસ્તિ... ૧૩૪

।। सप्तभङ्गी-प्रकाश:।।

।। अथ स्वोपज्ञटीकामङ्गलम्- ।।

ऐं स्मृत्वा किञ्चिदभ्यस्त-माप्तपरम्पराऽऽगतम् ।
अनुप्रेक्षेक्षितं किञ्चि-दत्र सङ्कलयिष्यते ।।

टीका - अथास्माकं गुरवो वदन्ति-यदुतेदानीन्तनकाले ग्रन्थरचनायै विशेषिततरं प्रयोजनं मृग्यम्। यदि शास्त्रसमाजे तत्र तत्र यद्यल्लिखितं, यच्चाभ्यस्तं भवता, तदेव केवलं भवतो वक्तव्यम्, तर्हि मा ग्रन्थरचना क्रियताम्, सृतं तेन पिष्टपेषणेन, सृतं समयव्ययमात्रफलनिरर्थकप्रयासेन। यदि केवलमाप्तपरम्परात: श्रुतं, प्रचलितं, अद्य यावदग्रथितं तदेव कथनीयं भवता केवलं, सृतं ग्रन्थप्रणयनक्लेशेन, स्वस्वाध्यायार्थं ता: टीप्पणी: सङ्कलयतु भवान्, मा करोतु ग्रन्थरचनाम्। यदि चाभ्यासाहितव्युत्पत्त्या शास्त्रवचसां आप्तपरम्पराणां वा पूर्वापरसन्तुलनया च किञ्चिन्नवीनमेव नवनीतमुत्प्रेक्षितं भवता शास्त्रसिद्धान्तानुपाति सिद्धान्ताभिप्रायिकं शास्त्रकृदैदम्पर्यं तर्हि कामं प्रणीयतां शास्त्रमित्यधुनातनकालस्यापेक्षा।

ततो ग्रन्थकृताऽत्र ग्रन्थे सप्तभङ्गीविषये पूज्यगुरुवरेभ्यो यदभ्यस्तं, यच्चाप्तसकाशाच्छ्रुतं, अनुप्रेक्षितं च यद्विद्वत्सभापरीक्षितं, तत्तादृक्सर्वं सङ्कलय्य ग्रन्थरचनायै यतितमिति सप्रसन्ना गुरवस्तं प्रति। न च गुरुमन:प्रसत्ते: परतरं विघ्नविघातदक्षं समाप्तिसक्षमं किञ्चिन्मङ्गलं वा शकुनं वा समुत्प्रेक्ष्येत, तथापि शिष्यमतिग्राहणाय प्रज्ञावत्समयानुपालनाय चेदं ग्रन्थारम्भे मङ्गलरचनं, तत एव प्रयोजनाच्चाभिधेयकथनं कुर्वन्नाह-

नत्वा प्रभाभासुरपूर्णबोध-मादीश्वरं सिद्धनृपात्मजं च ।
सत्साध्वभिप्रेतवच:प्रणालीं, तां सप्तभङ्गीं विशदीकरोमि ।।१।।

।। સપ્તભંગી-રાસ ।।

શ્રી ગુરુભ્યો નમઃ

વાર્તિક. ગુરુભગવંતો એમ કહે છે, કે વર્તમાનકાળે કોઇ ખાસ પ્રયોજન વગર ગ્રંથરચના-છપાવવું વગેરે કરવું નહીં. જેમ કે-જે વાતો પુસ્તકોમાં છપાઇ જ ચૂકી હોય, તેને કહેવી હોય, તો સામાન્યથી પુસ્તક ન છપાવવું. સંયમની સાધના માટે મળેલો અમૂલ્ય સમય એમાં વ્યર્થ જાય છે. આપ્ત પરંપરાથી જે સાંભળ્યું છે, અને જે પ્રચલિત છે, તે જ તમારે કહેવું હોય, તો પણ એનાં માટે પુસ્તક છપાવવાની જરૂર નથી. તમારાં સ્વાધ્યાય માટે તેની નોંધ રાખી લો, એટલું પૂરતું છે. પરંતુ, જે ગ્રંથોનો અભ્યાસ કર્યો છે, તથા જે વાતો પરંપરાથી સાંભળી છે, તે બધાંના પૂર્વાપર સંતુલનાથી, સમીક્ષાથી, ઊહાપોહથી જો કાંઇ નૂતન અનુપ્રેક્ષાઓ પણ થઇ હોય, જેથી અભ્યાસુ વર્ગને લાભ થાય એમ હોય, તો જરૂરથી ગ્રંથ છપાવવો. સામે બહુ લાભ થતો હોય તો રોકેલો સમય લેખે લાગે છે.

ગ્રંથકારે આ ગ્રંથમાં સપ્તભંગી વિશે પૂજ્ય ગુરુદેવોની પાસેથી જે શાસ્ત્રો દ્વારા શીખ્યું, આપ્તજનો પાસેથી જે સાંભળ્યું, અને વિદ્વાનોની પરીક્ષામાં ઉતરેલું એવું જે અનુપ્રેક્ષિત કર્યું તે બધાંનાં સંગ્રહ માટે પુસ્તક લેખનમાં પ્રવૃત્તિ કરાઇ છે. માટે ગુરુભગવંતો ગ્રંથકાર પર પ્રસન્ન છે. અને તેમની પ્રસન્નતા એ જ મોટું મંગલ છે. આમ, કોઇ મંગલ કરવાની જરૂર ન હોવા છતાં શિષ્યને ખબર પડે એટલા માટે અને પ્રેક્ષાવંતોનાં શિષ્ટાચારનું અનુસરણ કરવા માટે ગ્રંથની શરૂઆતમાં મંગલ રચના, અભિધેય કથન કહેતાં પ્રથમ કાવ્ય રચે છે.

નમું પ્રભાભાસિત પૂર્ણબોધથી, શોભે સદા આદિ જિણંદ વીરજી;
સત્સાધુને માન્ય જ વાક્યપદ્ધતિ, જે સપ્તભંગી પર વર્ણના કરું ।।૧।।

।। मङ्गलाभिधेयप्रयोजनानि ।।

टीका – नत्वा, नमस्कृत्य। प्रभाभासुरः कैवल्याख्यः पूर्णो बोधो यस्यासौ प्रभाभासुरपूर्णबोधः, तम्। सूर्यचन्द्रप्रभा तु सीमितं भूभागं भासयति, कैवल्यन्तु लोकालोकं प्रकाशयति इत्यतस्तत्प्रभा सूर्यचन्द्राभाजित्वरी। आदीश्वरं-प्रथमतीर्थकृतम्, सिद्धनृपात्मजं भामा-सत्यभामेति न्यायात् सिद्धः सिद्धार्थः। सिद्धार्थनृपतनयं वर्द्धमानस्वामिनं चरमतीर्थकृतम्। प्रथमचरमयोर्नतेरुपलक्षणान् मध्यमद्वाविंशतितीर्थकृतां सङ्ग्रहाद् आप्रथमादन्तिमं समस्तं ऋषिमण्डलं परिस्तुतं भवति। इत्थं मङ्गलं रचयित्वाऽथ ग्रन्थाभिधेयं प्रकटयति सत्साध्वि. ति। सन्तः सज्जनाः श्रावकाः, साधवः श्रमणाः। तैरभिप्रेता तेषां परीक्षोत्तीर्णा वचःप्रणाली वाक्यपरिपाटी। तादृशीं तां सप्तभङ्गीं विशदीकुर्वे इति ग्रन्थकर्तुः प्रतिज्ञा। इत्थं सप्तभङ्ग्यास्तीर्थकृन्मतत्वं गणधरप्रणीतत्वं सत्साध्वभिप्रेतत्वेन हेतुना अर्थतः ख्यातमिति प्रेक्षावत्समुपादेयमिदं प्रकरणं अपवर्गफलकत्वात्।।१।।

अर्हद्गिरो धर्मसभासु सार्वा–स्तत्सङ्गृहीता हि सदा स्रवन्ति।
स्याद्वादिनां सर्ववचोभरोऽपि, श्रीसप्तभङ्गीमनुधावतीति ।।२।।

।। सप्तभङ्गीमहिमगानम् ।।

टीका – सार्वाः, सर्वजगद्धितकारिण्यः। सम्प्रदायवचनमेतद् यदुत समवसरणमध्ये तीर्थकृतां जगज्जन्तुनिस्तारिण्यो वाचः सर्वदा सप्तभङ्गीसंवलिततयैव स्रवन्ति पद्मसरसो पावित्र्ययुतानि गङ्गाजलानीव, नैतावदेवापितु प्राज्ञानां सुज्ञाततत्त्वानां स्याद्वादिनामपि वाचः सप्तभङ्गीमनुसरन्ति। स्याद्वादिनः स्याद्वादमननशीलाः, स्यादिति वदनशीलाः, सकलदर्शनबीजभूतस्याद्वादनामजैनदर्शनस्थिता वेति। ततश्च ये स्याद्वादिनस्ते न सप्तभङ्ग्या वियुक्तं किञ्चिद् भाषन्ते। अत एवाऽविज्ञातसप्तभङ्गी-प्रणालीनामास्तां श्रमणोपासकानां, साधूनामपि नोपदेशस्याधिकारिता ख्याता **दशवैकालिकादौ**। अगीतार्थानामज्ञातसम्यक्सप्तभङ्गीयुतवाक्प्रयोगाणां मौनमेव श्रेयः। ये च गीतार्था अधिकारिणो वदन्ति, तन्न कदाचिदपि सप्तभङ्गीवियुक्तं

।। મંગલ, અભિધેય, પ્રયોજન ।।

વાર્તિક. સૂર્ય-ચંદ્રનો પ્રકાશ તો અમુક સીમિત ભાગને જ પ્રકાશિત કરે છે. કૈવલ્યનો પ્રકાશ લોક-અલોકને અજવાળે છે. માટે તે પ્રકાશ સૂર્ય-ચંદ્રના પ્રકાશને જીતનારો છે.

પ્રથમ તીર્થંકરને અને ચરમ તીર્થંકરને સાક્ષાત્ નમસ્કાર કર્યા છે. ઉપલક્ષણથી મધ્યમ બાવીસ તીર્થંકરને'ય નમન થાય છે. માટે, ચોવીસે'ય ભગવાનને નમન કર્યા.

સત્ એટલે સજ્જન, શ્રાવક. સાધુ એટલે શ્રમણો. તેમની પરીક્ષામાં ખરી ઉતરેલી વચન પદ્ધતિ સ્વરૂપ સપ્તભંગીને આ ગ્રંથમાં કહેવાશે.

સત્ અને સાધુને માન્ય હોવાથી આ સપ્તભંગી તીર્થંકરે દર્શાવેલી છે, ને ગણધરોએ રચેલી છે. એવું અર્થાપત્તિથી નિશ્ચિત થયું. અને તેથી જ તેવી તે સપ્તભંગી પર લખાયેલું આ પ્રકરણ મોક્ષ આપનારું છે, માટે સુજ્ઞજનોને ઉપાદેય છે, આમ સિદ્ધ થવાથી પ્રયોજન પણ દેખાડ્યું.

અર્હંતદેવો પણ પર્ષદા મહીં, વાણી વદે સાત જ ભંગ સંયુત;
સ્યાદ્વાદવેદીજનની સરસ્વતી, જે સપ્તભંગીમય હોય સર્વદા ।।૨।।

।। સપ્તભંગીનું મહિમાગાન ।।

વાર્તિક. જેમ પદ્મસરોવરમાંથી પવિત્રતામય ગંગાનદીનું પાણી ઝરે છે, તેમ તીર્થંકરમુખેથી સપ્તભંગીમય વાણી સમવસરણમાં નીકળે છે, આવું સમ્પ્રદાયવચન છે. અર્થાત્ ભગવાનની વાણી સપ્તભંગીમય હોય છે. તથા જેઓ સ્યાદ્વાદને માને છે, 'સ્યાત્' પદને બોલે છે અથવા સકલ અન્ય દર્શનોનાં ઉદ્ગમ સ્થાન રૂપ જૈન દર્શનમાં-સ્યાદ્વાદ દર્શનમાં શ્રદ્ધાથી રહ્યાં છે. તેઓ સપ્તભંગી રહિતનું કશું જ બોલતાં નથી. આથી જ **દશવૈકાલિકાદિ** આગમોમાં કહ્યું છે, જેઓ સપ્તભંગી આદિને જાણતાં નથી, તેઓને ઉપદેશનો અધિકાર નથી તેવાં અગીતાર્થો મૌન રહે એ જ સારું. જે અધિકારી ગીતાર્થો બોલે છે તે સપ્તભંગીપૂર્વક જ બોલે છે. તેમનાં વચનોમાં સાક્ષાત્ કે પરંપરાએ સપ્તભંગી

स्यात्साक्षात्परम्परया वाऽस्य सप्तभङ्गीमत्त्वादिति महिमवतीयं सप्तभङ्गी।।२।।

अव. **ननु** स्यान्महिमवतीयम्, किन्त्वस्या ज्ञानेन को लाभः, का वा हानिरज्ञाततायामिति प्रश्ने सत्याह-

यया नाऽज्ञातया सम्य-ग्वाक्प्रयोगोऽपि साधुभिः ।
पार्यते कर्तुमित्यस्याः, स्वरूपं विवरीष्यते ।।३।।

।। सप्तभङ्गीज्ञानस्यावश्यकत्वम् ।।

टीका – यये. ति। सप्तभङ्गीरहितं हितमपि वाक्यं विहितमपि वाक्यमहितकृत् स्यात्। ततश्च परिणामतोऽसत्यतया परिवर्तेत। ततश्च सम्यग्वाक्प्रयोगप्रयोजकत्वं सप्तभङ्गीपरिज्ञानस्येति सिद्धम्। सप्तभङ्गीप्रविशदस्वरूपपरिज्ञानं साधनं, सम्यग्वाक्प्रयोगश्च साध्यः; सम्यग्वाक्प्रयोगश्च हेतुः, स्वपरहितं कार्यं, स्वपरहित-श्चोपायः मोक्षस्तूपेयः। इति मोक्षं मनश्चक्षुषि निधायास्याः स्वरूपं विवरीष्यते-यथार्हप्रपञ्चेन कथयिष्यते। अनेन ग्रन्थप्रणयनप्रयोजनमाविष्कृतम् ।।३।।

अव. अथास्या लक्षणमाह-

द्रव्याधीनैकपर्याया-श्रयणात्तत्र कल्पना ।
द्वाभ्यां विधिनिषेधाभ्यां, सप्तभङ्गसमुत्थितिः ।।४।।

।। सप्तभङ्ग्याः शास्त्रीयं लक्षणम्।।

टीका – ***वस्तुनि प्रतिपर्यायं विधिनिषेधकल्पनया सप्तविधधर्मकथनं सप्तभङ्गी***त्येषः पद्यभावार्थः। एवमेव सप्तभङ्ग्या लक्षणं पठितं **सम्मतितर्कवृत्ति-स्याद्वादमञ्जरी-जैनतर्कभाषा**प्रमुखेषु तर्कग्रन्थेषु। **प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारे** च सविस्तरं दर्शितमिदमेव लक्षणम्। तल्लक्षणश्चाग्रे स्फुटीकरिष्यते । प्रथमं तावदत्राभिसन्धिर्दर्श्यते।

રહી જ હોય છે. આમ, સપ્તભંગી મહા મહિમાવાળી છે. ।।૨।।

અવતરણિકા : શંકા : સપ્તભંગી મહિમાવાળી છે એ બરાબર પણ આનું જ્ઞાન મેળવીને અમને શું લાભ? અને ન જાણો, તો શું નુકસાન? જેથી અમારે આને જાણવી જ જોઇએ? આના **સમાધાન**માં કહે છે -

વાક્ય અસમ્યક્ શંકતા, સપ્તભંગી અણજાણ;
સાધુ પણ બોલે નહીં, તેથી તેહને જાણ ।।૩।।

।। સપ્તભંગીના જ્ઞાનની આવશ્યકતા ।।

વાર્તિક. હિતકારી અને શાસ્ત્રવચનરૂપ પણ વાક્ય જો સપ્તભંગીથી વિયુક્ત બોલાય, તો અહિતકારી બને. એટલે પરિણામે અનુબંધ-અસત્ય રૂપે પરિણમે. જ્યાં સુધી સપ્તભંગીને જાણતાં ન હોય, ત્યાં સુધી 'કદાચ અમારાથી અસમ્યક્ બોલાઇ જશે.' આવી શંકાથી સાધુભગવંત પણ બોલતા નથી માટે તેને જાણવી જરૂરી છે, સપ્તભંગીના સ્વરૂપનાં જ્ઞાનથી સમ્યગ્ વચનપ્રયોગ કરાય, તેનાથી સ્વપરનું હિત થાય, એનાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય. આ રીતે અહીં પ્રસ્તુત પ્રકરણનું પ્રયોજન સ્પષ્ટ કર્યું.

અવ. હવે સપ્તભંગીનું લક્ષણ કહે છે.

દ્રવ્યાશ્રિત પર્યાયનાં, વિધિ-નિષેધ કરતાં;
સાત વચન સંદોહથી, સપ્તભંગી રચના ।।૪।।

।। સપ્તભંગીનું શાસ્ત્રીય લક્ષણ ।।

વાર્તિક. વસ્તુગત પ્રત્યેક પર્યાયનાં વિધિ અને નિષેધની રચના દ્વારા સાત સ્વરૂપોનું કથન એ સપ્તભંગી છે. **સમ્મતિતર્ક વૃત્તિ-સ્યાદ્વાદમંજરી-જૈનતર્કભાષા** વગેરે ગ્રંથોમાં આ લક્ષણ જ દર્શાવ્યું છે. **પ્રમાણનય તત્ત્વાલોકાલંકાર** ગ્રંથમાં આ લક્ષણ વિસ્તારથી કહ્યું છે તે લક્ષણ આગળ સ્પષ્ટ કરાશે. પ્રથમ તો સપ્તભંગની રચના પાછળનો ક્રમ બતાવાય છે.

।। सप्तभङ्गीविरचना ।।

यत्र पदत्रितयं स्यात्तत्र सांयोगिकासांयोगिकभङ्गाः सर्वे सप्तैव स्यादन्यूनाधिकतया। अत्र धर्ममाश्रित्य त्रयोऽवस्थाः भावः, तदभावः, युगपद्भावाभावौ। घटादिवस्तुनि सत्त्वपर्यायमाश्रित्य यदा तस्य भाव ऊह्यते तदा स्यादस्त्येवेति, यदा तदभावः कल्प्यते तदा स्यान्नास्त्येवेति, यदा च भावाऽभावौ युगपद्विचार्येते तदा स्यादवक्तव्यमेवेति, तदेवं त्रयो भङ्गा असंयोगजा जाताः। अथ प्रथम-द्वितीयभङ्गमिश्रणेन स्यादस्तिनास्त्येवेति, प्रथम-तृतीयमिश्रणेन स्यादस्ति चावक्तव्यमेव चेति, द्वितीय-तृतीयमिश्रणेन च स्यान्नास्ति चावक्तव्यमेव चेति द्विकसंयोगजानां त्रयाणां भङ्गानामाविर्भूतिः, प्रथम-द्वितीय-तृतीयसम्मिश्रणे तु स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यमेव चेति त्रिकसांयोगिकैकभङ्गोत्पत्तिः। सर्वे सम्भूय सप्त भङ्गा इति सप्तभङ्गीसारः।

अत्रैवं भङ्गरचनायामयं समयः, यदुत प्रथमं सर्वे असंयोगिनो भङ्गा रचनीयाः, तदनु क्रमशः सर्वे द्विकादिसंयोगिनः। इति अत्रापि सप्तभङ्गीनिर्माणे तृतीयः अवक्तव्यभङ्गः स्यात् चतुर्थस्तु अस्तिनास्तिद्विकसंयोगी भङ्गो भवेत्। तथापि निरूपणसौकर्यार्थं शिष्यमतिग्राहणसुलभताप्रयोजनार्थं तृतीय-चतुर्थयोर्व्यत्ययोऽपि नैकग्रन्थान्तरेषु दृश्यते, अस्माभिरपि ततः स एव क्रमः समादृतः, तत एव कारणात्। तच्च कारणमग्रे स्फुटीभविष्यति ।।४।।

अव. अथैतल्लक्षणं स्पष्टीकुर्वन्नाह-

द्रव्ये जिज्ञासितो मौलः, पर्यायः शब्दपर्यवः ।
विधिनिषेधरूपत्वा-त्सप्तभङ्गसमुत्थितिः ।।५।।

टीका – यदा वस्तुगतधर्मस्य कस्यचनापि जिज्ञासा भवति, तदा तं प्रश्नितुं जिज्ञासुः, तं प्रतिपादयितुं वा प्रज्ञापकः तदैव प्रभवति, यदा तस्मिन्धर्मे शब्दस्यावतारः स्यात्। यदि स जिज्ञासितो धर्मः शब्दसङ्केतानर्हो भवेत्, तदा स प्रज्ञापकाय प्रष्टुं, प्रज्ञापकेन प्रतिपादयितुं वा न शक्यते ।

।। સપ્તભંગીની રચના ।।

જ્યાં ત્રણ પદ હોય, તો તેનાં અસાંયોગિક અને સાંયોગિક ભાંગા કુલ સાત જ થાય. પ્રસ્તુતમાં વસ્તુગત ધર્મની મૂળભૂત ત્રણ અવસ્થાઓ રૂપ ત્રણ પદો છે. ભાવ, અભાવ અને યુગપદ્ ભાવાભાવ. ભાવ સ્વરૂપને કહો, તો પ્રથમ ભાંગો, અભાવ સ્વરૂપને કહો તો દ્વિતીય ભાંગો, યુગપદ્ભાવાભાવ સ્વરૂપને કહો, તો તૃતીય ભાંગો. આ ત્રણ અસાંયોગિક ભાંગા બન્યા. પ્રથમ અને દ્વિતીયના સંયોગથી, પ્રથમ-તૃતીયનાં સંયોગથી, અને દ્વિતીય-તૃતીયના સંયોગથી ત્રણ દ્વિકસંયોગી ભાંગા બન્યા અને પ્રથમ-દ્વિતીય-તૃતીયનાં સંયોગથી એક ત્રિકસંયોગી ભાંગો બન્યો. આમ, કુલ ૭ ભાંગા થયા. આ સપ્તભંગીનો સાર છે.

અહીં ભંગરચના કરતી વખતે નિયમ મુજબ પહેલાં બધા અસંયોગી ભાંગા કહેવાય, પછી દ્વિકસંયોગી, ત્રિકસંયોગી વગેરે ક્રમથી રચાય-એટલે તૃતીય ભાંગો 'અવક્તવ્ય' હોવો જોઈએ. પરંતુ, અમુક કારણોથી કેટલાક ગ્રંથોમાં તૃતીય ભાંગો 'અસ્તિ-નાસ્તિ' એવો દ્વિક સંયોગી અને ચતુર્થ ભાંગો 'અવક્તવ્ય' દર્શાવાયો છે. તેથી અમે પણ તે જ ક્રમ અપનાવ્યો છે. તેનાં કારણો આગળ સ્પષ્ટ થશે.

તે સાત ભાંગા સત્ત્વપર્યાયને આશ્રયીને આ રીતે છે -

'સ્યાદસ્ત્યેવ', 'સ્યાન્નાસ્ત્યેવ', 'સ્યાદસ્ત્યેવ સ્યાન્નાસ્ત્યેવ', 'સ્યાદવક્તવ્યમેવ', 'સ્યાદસ્ત્યેવ સ્યાદવક્તવ્યમેવ', 'સ્યાન્નાસ્ત્યેવ સ્યાદવક્તવ્યમેવ', 'સ્યાદસ્ત્યેવ સ્યાન્નાસ્ત્યેવ સ્યાદવક્તવ્યમેવ'।

આમ, નિત્યત્વ વગેરે અનંતા પર્યાયોને આશ્રયીને આ રીતે જ અનંતી સપ્તભંગીઓ બને છે. ।।૪।।

અવ. સપ્તભંગીનું લક્ષણ સ્પષ્ટ કરતાં કહે છે -

દ્રવ્યે જેને પૂછીયો, તે વ્યંજન પર્યાય ।
સાત સ્વરૂપે જો કહો, સપ્તભંગી તો થાય ।।૫।।

વાર્તિક. કોઈપણ પર્યાય-વસ્તુ ૭ રીતે પૂછી શકાય. પણ એ માટે એનામાં પૂછવા યોગ્યપણું રહેવું જરૂરી છે. અર્થાત્ એ કોઈક શબ્દથી વાચ્ય બનવો જ જોઈએ. જો તે શબ્દ વાચ્ય ન હોય, તો શિષ્ય તેને સાતમાંથી એક પણ રીતે પૂછી ન શકે, અને ગુરુ બતાવી ન શકે.

।। सदादिवस्तुनः पर्याप्तो बोधः सप्तभङ्ग्या जायते ।।

वस्तुगतपृच्छितधर्ममात्रस्यैव पर्याप्तबोधजनकप्रतिपादनं हि सप्तभङ्ग्या क्रियते। वस्त्वंशभूतः स पर्यायः सप्तधा पृच्छ्यते, अतः सप्तधा तत्प्रतिपादनं सुशक्यम्। तथाहि–घटादिगतसत्त्वाभिन्नोंऽशः सत्त्वविशिष्टो वा किं सत्? किं न सत्? किं सत् चासत् च? इत्यादिरीत्या सप्तधैव पृच्छ्यते नाधिकतया। एतत्सप्तप्रकारैर्ज्ञाते च सति तद्विषयकः, सद्विषयकः, पर्याप्तो बोधो भवति ।

अयं भावः– यथा कुत्रचित्पुरुषे यज्ञदत्तत्वाशङ्कायां कदाचिज्जिज्ञासुः "किं स यज्ञदत्तो न?" इत्यपि पृच्छति, तन्नामाभावमुख्यतया–निषेधमुख्यतया–यज्ञदत्तविषयकाशङ्काप्रयुक्तमेवैतद्वचः। प्रत्युत्तरदाता च 'स्याद् यज्ञदत्तो नैवे'ति वदन्नन्ततो गत्वा निषेधमुख्यतया यज्ञदत्तमेव प्रतिपादयति, इत्यत्र यज्ञदत्तस्याऽभावात्मकं स्वरूपमेव स्पष्टीकृतमास्ते, तस्मादन्ततो गत्वा यज्ञदत्त एव प्रतिपादितो वर्तते । तथा किं सत्? किं न सत्? इत्यादौ किं नित्यं? किं न नित्यम्? इत्यादौ च सर्वत्रैव पृच्छायां स्यात्सदेव, स्यान्न सदेव, स्यान्नित्यमेव, स्यान्न नित्यमेवेत्यादौ सर्वत्र प्रतिपादने च स एव सत्त्वात्मको नित्यत्वात्मको वा पर्यायो वस्त्वंशो मुख्यविषयीक्रियते इति प्रतिसन्धेयम्। तस्य पिप्रक्षितस्य प्रतिपिपादयिषितस्य वा पर्यायस्य व्यञ्जनपर्यायत्वमेव । तद्विशिष्टं वस्तु, तदात्मकं वा वस्तु सदादि सप्तभङ्ग्या समग्रतया प्रतिपाद्यते ।

।। व्यञ्जनपर्यायत्वार्थपर्यायत्वयोः स्पष्टीकरणम् ।।

अत्र व्यञ्जनपर्यायत्वमर्थपर्यायत्वञ्चेति किमिति चेत्? **श्रीमत्सम्मतितर्कश्री–द्रव्यगुणपर्यायनोरासश्रीविशेषावश्यकभाष्ये**त्यादिषु ग्रन्थेषु यत्पठितं, तदुपरि च यदनुप्रेक्षितं, यच्च विद्वद्भिः संशोधितं तदत्र किञ्चित्सङ्क्षेपेण लिख्यते–यत्र व्यञ्जनं, शब्दः प्रभवति स तादृशो वस्तुपर्यायो व्यञ्जनपर्यायः, स च त्रिकालवर्ती, अवान्तरपर्यायाश्रयीभूतः, यतस्तादृश एव वचनोल्लेखार्हत्वं प्रचलितम्। एतच्च व्यावहारिकव्यञ्जनपर्यायस्वरूपम्। वस्तुतस्तु अभिलाप्यभावानामेव व्यञ्जनपर्यायरूपत्वम्। अनभिलाप्यानां चार्थपर्यायत्वमिति। एवं द्रव्य–

।। સદ્ વગેરે વસ્તુનો પર્યાપ્ત બોધ સપ્તભંગીથી થાય ।।

વસ્તુગત તે પર્યાય સાત રીતે પૂછાય છે, માટે તેનું પ્રતિપાદન પણ સાતરૂપે થાય છે.

તથાહિ-ઘટાદિગત અનન્ત પર્યાયોમાંથી સત્ત્વપર્યાયની મુખ્યતાએ 'સત્' વસ્તુને 'શું તે સત્ છે?' 'શું તે સત્ નથી?' 'શું તે સત્ છે અને નથી?' ઇત્યાદિ રીતે સાત પ્રકારે જ પૂછાય છે. અને એ સાત રીતે જાણી લો, એટલે તે સદાદિ વસ્તુ વિષયક પૂર્ણબોધ થાય છે.

અયં ભાવ : જેમ કોઇ મેળામાં કોઇ પુરુષ યજ્ઞદત્ત જેવો લાગતો હોય; ત્યારે જિજ્ઞાસુ એમ પણ પૂછે, કે 'તે યજ્ઞદત્ત નથી?' અને પ્રજ્ઞાપક જવાબ આપે 'ના, યજ્ઞદત્ત નથી'. આવું કહેનાર કે પૂછનારે હકીકતમાં તો યજ્ઞદત્ત વિશે જ પૂછ્યું કે કહ્યું છે. માત્ર નિષેધ મુખ્યતયા પૂછ્યું-કહ્યું છે. અર્થાત્ અભાવ સ્વરૂપની મુખ્યતાએ યજ્ઞદત્ત વિશે પૂછ્યું-કહ્યું છે. આમ, સપ્તભંગી પણ એક જ પર્યાયને ભાવની મુખ્યતાએ, અભાવની મુખ્યતાએ ઇત્યાદિ રીતે સાત રીતે જણાવે છે. એ જણાતો પર્યાય એ વ્યંજન પર્યાય છે. આમ, વ્યંજન પર્યાય રૂપ સત્ત્વાદિથી વિશિષ્ટ ઘટાદિ વસ્તુ અથવા 'સત્' રૂપ વસ્તુનું સંપૂર્ણ પ્રતિપાદન સપ્તભંગી કરે છે.

।। વ્યંજનપર્યાયત્વ, અર્થપર્યાયત્વની સ્પષ્ટતા ।।

શંકા : વ્યંજનપર્યાય અર્થપર્યાય કોને કહેવાય?

સમાધાન : સમ્મતિતર્ક, દ્રવ્યગુણપર્યાયનો રાસ, વિશેષાવશ્યકભાષ્ય ઇત્યાદિ ગ્રંથોનાં આધારે જે જણાયું, જે વિચારાયું, અને જે વિદ્વાનોએ સંશોધિત કર્યું તે સંક્ષેપમાં જણાવાય છે. .

જ્યાં વ્યંજન=શબ્દ લાગુ પડે, તે વસ્તુગત પર્યાયને વ્યંજન પર્યાય કહેવાય. અર્થાત્ શબ્દથી વાચ્ય પર્યાય, તે વ્યંજન પર્યાય-વ્યવહારમાં ત્રિકાલવર્તી 'પુરુષ' વગેરે પર્યાયો શબ્દવાચ્ય બનતા હોય છે. આન્તરાલિક પર્યાયો શબ્દવાચ્ય

पर्यायग्राहिणो- द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोरिव व्यञ्जनपर्यायार्थपर्यायग्राहिणोः शब्दनयार्थनययोरपि स्वान्यविरोधिविषयकत्वं सिध्यति।

ननु–शास्त्रे यो यो धर्मः प्रतिपादनं भजति, स स सर्व एव व्यञ्जनपर्याय एवेति **चेत्?** सत्यमुक्तं युक्तियुक्तम्। व्यञ्जनपर्यायश्च प्राधान्येन शब्दनयप्रभुत्वे वर्तते। इत्यतः सर्वं श्रुतमपि शब्दनयप्रभुत्वे मुख्यतया वर्तते, इत्यत एव च तस्यागमप्रमाणत्वं, शब्दप्रमाणत्वं वोक्तमिति। **नचैवं** सति 'द्रव्यार्थिकनयेन नित्यता' इत्यागमप्रतिपादनं मिथ्या, न नित्यत्वं द्रव्यार्थिकनयेन, किन्तु शब्दनयेनैवेति **वाच्यम्** यद्यत्प्रतिपादनमर्हति, तत्तत्सर्वं व्यञ्जनपर्यायरूपमेवेति नियमात् आस्तां नित्यता द्रव्यार्थिकनयोऽपि च व्यञ्जनपर्याय एव, प्रतिपादनपूर्वकतया ज्ञायमानत्वादिति सुसूक्ष्ममवधार्यम्। यत्र शब्दः प्रभवेत् स व्यञ्जनपर्यायः, द्रव्यार्थिकनयस्य नित्यत्वस्य च शब्दवत्त्वात् व्यञ्जनपर्यायत्वमेव। अत्र पर्यायत्वमिति द्रव्यविरोधित्वमिति न, किन्तु वस्त्वंशभूतत्वमेवेति ध्येयम्। सर्वेषु च अभिलाप्यभावेषु व्यञ्जनपर्यायत्वात् सप्तभङ्गी स्यात्।

अत्र त्रिकालवर्तिनो व्यक्तस्य पर्यायस्य व्यञ्जनपर्यायता, अतादृशस्य चार्थपर्यायता **सम्मतितर्के द्रव्यगुणपर्यायरासग्रन्थे** च परिभाषिता, अन्ततो गत्वा शब्दोल्लेखार्हत्वं व्यञ्जनपर्यायत्वम्, अतथात्वं चेतरत्, शब्दसङ्केतार्हश्च अभिलाप्यो भाव एव, संव्यवहारे च त्रिकालवर्ती भाव एव वा तथा।[१]

परन्त्विदमत्र ध्येयं यदुतैतद् व्यञ्जनपर्यायत्वार्थपर्यायत्वस्वरूपं जात्या प्रतिपादितम्। न चात्रैकान्तः। तथाहि–न सर्वदैवैषः व्यञ्जनपर्याय इति ज्ञानं जायते, किन्तु यदा स पर्यायः शब्दनयेनावगाह्यते, तदैव एष व्यञ्जनपर्याय इति बुद्धिः।

---

१. तुलना

येऽपि शब्दपर्यायास्तेऽपि सद्द्रव्यपृथिव्यादिवचनप्रतिपाद्या एव व्यञ्जनपर्यायाः, न तु ऋजुसूत्राभिमता अर्थपर्यायाः

– अनेकान्त व्यवस्था प्रकरणम्

બનતા નથી. માટે પુરુષત્વ વગેરે વ્યંજન પર્યાય તરીકે **સમ્મતિતર્ક**માં દર્શાવ્યાં છે. અને આન્તરાલિક બાલત્વ વગેરેને અર્થપર્યાય કહ્યાં છે. પણ ત્યાં આ જ વ્યંજન પર્યાય કેમ? તો અહીં એમ આશય જણાય છે, કે આમાં શબ્દ લાગુ પડે છે, આ શબ્દવાચ્ય છે, માટે. એટલે એ જ આશય પકડો, તો ત્રિકાલવર્તી પર્યાયને ભલે વ્યવહારથી વ્યંજનપર્યાય કહેવાય, પણ હકીકતમાં તો અભિલાપ્ય ભાવોને જ વ્યંજનપર્યાય કહેવાં જોઇએ. અનભિલાપ્ય ભાવોને અર્થપર્યાય કહેવા જોઇએ. આ રીતે જેમ દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક નયો દ્રવ્ય અને પર્યાય વિષયક હોય છે, તેમ વ્યંજનપર્યાય અને અર્થપર્યાયગ્રાહી વયંજનનય અને અર્થનય વ્યંજનપર્યાય અને અર્થપર્યાય વિષયક હોય છે. બન્ને સ્વાન્ય-વિરોધી બન્યાં, વસ્તુ અંશ ગ્રાહી બન્યા માટે નય કહેવાય.

શંકા : શાસ્ત્ર દ્વારા જે પર્યાયનું પ્રતિપાદન કરાય, તે વ્યંજન પર્યાય જ હોય?

સમાધાન : હા. વળી, વ્યંજનપર્યાય મુખ્યત્વે શબ્દનયનો વિષય બને છે. તેથી સમગ્ર શ્રુતજ્ઞાન પણ શબ્દનયનાં પ્રભુત્વમાં છે. અર્થાત્, શ્રુતથી પ્રતિપાદિત પર્યાય શબ્દનયનો વિષય હોય જ. અને શબ્દનયનો વિષય ન બને, તે શ્રુતપ્રતિપાદ્ય પણ ન બને. આથી જ શ્રુતને શબ્દપ્રમાણ કહેવામાં આવે છે. શ્રુતજ્ઞાન શબ્દનય છે.

શંકા : શ્રુતમાં પ્રતિપાદિત થવાથી તે પર્યાયમાં જો શબ્દનયની જ વિષયતા આવતી હોય, તો "દ્રવ્યાર્થિક નયથી નિત્યતા છે." આવું આગમ પ્રતિપાદન મિથ્યારૂપ થઇ જાય. કારણ કે, શ્રુતમાં પ્રતિપાદિત હોવાને કારણે નિત્યતા દ્રવ્યાર્થિક નયનો નહીં. પણ શબ્દનયનો જ વિષય બને છે.

સમાધાન : જેનું જેનું પ્રતિપાદન થઇ શકે તે બધાં જ વ્યંજન પર્યાય હોય આ ન્યાયે નિત્યતાનું અને દ્રવ્યાર્થિકનયનું પણ પ્રતિપાદન થયું હોવાથી તે બન્ને'યને વ્યંજનપર્યાય રૂપ માનવાં જોઇએ. નિત્યતા જેમ વસ્તુનો અંશ છે, તેમ દ્રવ્યાર્થિક નય પણ પ્રમાણજ્ઞાનનો એક દેશ છે. માટે બન્ને પર્યાયરૂપ તો બને છે. સાથે અભિલાપ્ય હોવાથી વ્યંજન પર્યાયરૂપ બન્યાં...

अर्थनयेनावगाह्यतायां तु अर्थपर्यायत्वं तस्यैव स्यात्। स एव यदा सङ्ग्रहादिसामान्यग्राहिणा नयेनाऽवगाह्यते, तदा सामान्यत्वेन, व्यवहारादिविशेषावगाहकनयेनाऽवगाह्यमानः सन्विशेषतयाऽवगाह्यते।

अतोऽभिलाप्यत्वं तु व्यञ्जनपर्यायस्य स्वरूपयोग्यता भवेत्। न त्वभिलाप्यभावानां अश्रुतनिश्रितमतिज्ञानादिविषयीभूतानामपि व्यञ्जनपर्यायत्वं तदा। अभिलाप्यभावानां शब्दनयेनावगाह्यमानतायां, श्रुतानुसरणपूर्वकं शब्दसङ्केतपूर्वकं वा ग्राह्यमानानां, श्रुतज्ञानविषयीभूतानां व्यञ्जनपर्यायत्वम्, अन्यथा तु अर्थपर्यायत्वम्। शब्दपूर्वकत्वेन विषयीक्रियमाणत्वं व्यञ्जनपर्यायत्वमिति परिभाषया व्यञ्जनपर्यायत्वम्। शब्दपूर्वकत्वं च साक्षाच्छब्दा-ऽन्तर्जल्प-श्रुतोपदेशानुसरणादिपूर्वकत्वम्। अशब्दपूर्वकज्ञानत्वञ्चाऽश्रुतानुसारिमत्यादिरूपस्यैवेति। एतच्च **विशेषावश्यक-भाष्य-वृत्त्य**नुरोधेनानुप्रेक्षितमिति दिक्।

अथैवं व्यञ्जनपर्यायस्यापि वस्तुपर्यायत्वादशब्दपूर्वकत्वेनावगाह्यतायामर्थपर्यायत्वमेवेति, सांव्यावहारिकार्थपर्यायस्य अवक्तव्यत्वादेरपि अवक्तव्यशब्दवाच्यत्वात् शब्दपूर्वकत्वेनावगाह्यमानत्वे व्यञ्जनपर्यायत्वमागतमिति त्वन्मते व्यञ्जनपर्यायत्वार्थपर्यायत्वयोः साङ्कर्यमिति **चेत्? सत्यम्,** इष्टश्च तत्। द्रव्यार्थिकनयेन यथा घटादेर्द्रव्यत्वेन पर्यायार्थिकनयेन च तस्यैव पर्यायत्वेन भानम्, तथा शब्दनयेन घटादीनां व्यञ्जनपर्यायविधया, अर्थनयेन च तेषामेवार्थपर्यायत्वेन भानम्। अधिकं **नयोपदेशादिभ्यः सम्मतितर्कादेश्च** समवलोक्यम्।

अतो यः कोऽपि भावो यदा शब्दवत्त्वेन गृह्यते, प्रतिपाद्यते, तदा तस्य व्यञ्जनपर्यायत्वम्। स एव च यदा अशब्दपूर्वकतया अवगाह्यते तदा तस्यार्थपर्यायत्वम्। अनभिलाप्यभावेष्वपि ''एतेऽनभिलाप्या'' इति भवत्येव सामान्यशब्दस्योल्लेखः, तथा शब्दपूर्वकं प्रतिपादनपूर्वकं ज्ञाप्यमानानां व्यञ्जनपर्यायता तेषाम्। शब्दनयेन वा तदसत्त्वमेव। शब्दविशेषाप्रतिपादनात्। एवं अभिलाप्यभावेषु च विना शब्दोल्लेखं ज्ञायमानेषु तदानीमर्थपर्यायतेति। अर्थनयेन वा तदसत्त्वमेव। शब्दप्रतिपाद्यार्थस्य तन्मतेऽसत्त्वात् । एवं जात्या परिभाषया वा

શંકા : તો પછી 'શબ્દનયના વિષયભૂત દ્રવ્યાર્થિકનયથી શબ્દનયનાં વિષયભૂત નિત્યતા' આવું પ્રતિપાદન થાઓ.

સમાધાન : આમ કહેવામાં લગીરે દોષ નથી. પણ કાયમ આમ કહેવું ઉચિત નથી. જે વ્યંજન પર્યાય હોય, તે જ શ્રુતપ્રતિપાદ્ય બને આવું કહેવાનો મતલબ એમ નથી, કે જે જે ભાવ શ્રુત પ્રતિપાદિત હોય, તે કાયમ શબ્દનયના વિષય તરીકે જ અવગાહિત કે પ્રતિપાદિત થવો જોઇએ.

જેમ કે, ઘટ એ પર્યાય ને મૃત્ દ્રવ્ય એ દ્રવ્ય છે. આવું કહેતાં એમ ન મનાય કે ઘટનું અવગાહન કે પ્રતિપાદન કાયમ માત્ર પર્યાયાર્થિકનયથી જ થશે. સંગ્રહનયથી એ સામાન્ય તરીકે જણાશે, પર્યાયાર્થિકનયથી પર્યાય તરીકે અને વ્યંજનનયથી વ્યંજનપર્યાય તરીકે જણાશે.

આથી અભિલાપ્યત્વ કે શબ્દસંકેતયોગ્યત્વ એ વ્યંજનપર્યાયનું સ્વરૂપ છે. અને જ્યારે તે શબ્દનયના વિષય તરીકે અવગાહિત થાય, ત્યારે તે વ્યંજનપર્યાય બને. આ પરિભાષિત વ્યંજનપર્યાયત્વ છે. **જેમ કે** – આ જ ભાવ કેમ શબ્દનયનો વિષય બને? એવા પ્રશ્નના જવાબમાં કહેવું પડે, તેમાં અભિલાપ્યતા છે માટે. આ અભિલાપ્યતાને કારણે જો વ્યંજનપર્યાયિતા તેમાં આવે છે એમ કહો, તો તે જાતિથી વ્યંજનપર્યાયિતા કહેવાય. એટલે શબ્દનયથી અવગાહન ન કરો, તો'ય તે વ્યંજન પર્યાય કહેવાય. પરંતુ, જો એવું કહો, કે અભિલાપ્ય ભાવમાં જ્યારે શબ્દનયની વિષયતા આવે, ત્યારે તે વ્યંજન પર્યાય કહેવાય. અર્થાત્ તેમાં શબ્દનયવિષયતા છે. તેને કારણે વ્યંજનપર્યાયિતા તેમાં આવે છે. આમ કહેતાં આ પરિભાષાથી વ્યંજન પર્યાયિતા કહેવાય. એટલે જ્યારે શબ્દનયથી અવગાહન કરો, ત્યારે જ વ્યંજન પર્યાય બને. એ સિવાય ન બને.

જ્યારે શબ્દપૂર્વક જ્ઞાન કરાય, ત્યારે શબ્દનયથી અવગાહન કર્યું કહેવાય. શબ્દપૂર્વક જાણવું એટલે-સાક્ષાત્ શબ્દ-અન્તર્જલ્પ-શ્રુતોપદેશ-શાસ્ત્રાદિને યાદ કરવાપૂર્વક જાણવું અને શબ્દ કે શ્રુતનો જ્યાં વપરાશ ન થાય, તેવાં અશ્રુતનિશ્રિત મતિજ્ઞાનાદિ દ્વારા જાણવું, તે અશબ્દપૂર્વકત્વેન જાણવું કહેવાય. અશબ્દપૂર્વક જણાય, ત્યારે અર્થનયથી અવગાહન કર્યું કહેવાય. ત્યારે તે જ્ઞાનનાં વિષયને

व्यञ्जनपर्यायत्वार्थपर्यायत्वे बोध्ये **इति दिक्** ।

अथ यदि व्यञ्जनपर्यायत्वं वस्त्वंशानामेव, तदा तत्र शब्दस्य किमायातम्?[१] **तन्न,** शब्दे तस्मिन्प्रभवति सति स शब्द: तस्य धर्म:, यद्वा शब्दवाच्यत्वात् तस्य शब्दवाच्यता काचित्तस्य धर्म:, स वा शब्दस्य धर्म:, शब्दोल्लिखित: स एव वा स्वस्य धर्म:, तैलस्य तैलधारावत्। आद्यद्वयौ भेदकल्पौ, ताभ्यां शब्दस्य, शब्दवाच्यताया वा व्यञ्जनपर्यायत्वेन सिद्धेरपि, तृतीयेन भेदकल्पेन अभेदकल्पेन चतुर्थेन च स्वयं तस्य भावस्यैव व्यञ्जनपर्यायत्वे न कश्चिद्विरोध:, प्रथमे कल्पे व्यञ्जनमेव पर्याय इति विग्रह:, अन्त्येषु तु व्यञ्जनस्य पर्याय:, धर्मो वा वाच्यार्थो वेति। इति सङ्क्षेप:। **अत्र बहुश्रुता एव प्रमाणम्।**

अथ प्रकृतम्। अत: सिद्धं यत् 'स्यादस्त्येवे'त्यादि सप्तभङ्गैर्यत्सत्त्वस्य सप्तस्वरूपाणां प्रतिपादने शक्तं, तत्सप्तस्वरूपात्मकसत्त्वस्य तदीयसप्तस्वरूपाणां वा व्यञ्जनपर्यायरूपत्वादेव । अतो यो भावो शब्दपूर्वकगृहीतत्वेन यद्वा शब्दप्रतिपाद्यत्वेन व्यञ्जनपर्यायरूपो न, तस्यानभिलाप्यत्वाच्छब्दसङ्केताऽनर्हत्वा-त्प्रतिपाद्यत्वाभावात्तत्र सप्तभङ्गी न प्रवर्तते।

---

१. तुलना

उभयात्मकं (सामान्यविशेषात्मकं) वस्तु गुणप्रधानभावेन शब्दवाच्यं, तच्चार्थपर्यायरूपमेवेति कुतस्तद्विलक्षणव्यञ्जनपर्यायसिद्धि:... इति शङ्कनीयम्, केषुचिदेवार्थधर्मेषु शब्दवाच्यतापरिणत्यभ्युपगमादाख्यातुमशक्यत्वेऽपि प्रत्याख्यातुमशक्यानां माधुर्यविशेषादीनां बहूनामर्थधर्मा (अर्थपर्याया) णामनुभवसिद्धत्वात्, अत एव 'प्रज्ञापनीया भावा अप्रज्ञापनीयानामनन्तभाग एव' इति सिद्धान्तव्यवस्था, तेनार्थपर्यायवैलक्षण्यं व्यञ्जनपर्यायेषु नाप्रामाणिकम्, अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यम्, अन्यथाऽदृष्टदशरथादीनामिदानीन्तनानां तदीयार्थपर्यायापरिज्ञानाद्दशरथादिपदाच्छाब्दबोधो न स्याद्...।

– अनेकान्त व्यवस्था प्रकरणम्

અર્થપર્યાય કહેવાય. આ અનુપ્રેક્ષાનો આધાર વિશેષાવશ્યક ભાષ્યની વૃત્તિ છે.

શંકા : જો આમ વ્યંજન પર્યાય અને અર્થ પર્યાયને પરિભાષાથી માનતા હો, તો શબ્દવાચ્ય એવાં પર્યાયનું પણ જ્યારે અશબ્દપૂર્વકત્વેન અવગાહન કરાય, ત્યારે તે અર્થપર્યાય બની જાય અને શબ્દપૂર્વક અવગાહન થતાં તે જ વ્યંજન પર્યાય બની જાય તથા એ જ રીતે (વ્યાવહારિક) શબ્દ અવાચ્ય એવાં 'અવક્તવ્યત્વ' વગેરે પર્યાયનું પણ (વ્યુત્પન્ન દશામાં) 'અવક્તવ્ય' શબ્દથી અવગાહન કરાય, ત્યારે તે વ્યંજન પર્યાય બને અને શબ્દ અવાચ્યતા તેમાં હોવાથી તે અર્થપર્યાય બને. એટલે વ્યંજન પર્યાયત્વ અને અર્થપર્યાયત્વનું સાંકર્ય થવાની આપત્તિ છે.

સમાધાન : આ અમને ઇષ્ટાપત્તિ છે. **શ્રીસમ્મતિતર્ક** અને તદનુસારી **શ્રી નયોપદેશ** ગ્રંથમાં એક જ ઘટમાં દ્રવ્યાર્થતા અને પર્યાયાર્થતા બન્નેય ઘટાડ્યાં છે. તે રીતે અહીં પણ એક જ ભાવમાં વ્યંજનપર્યાયત્વ અને અર્થપર્યાયત્વ ઘટી શકવામાં કોઇ દોષ નથી.

આમ, પરિભાષાથી જોવાં જઇએ તો અનભિલાપ્ય ભાવો પણ 'અનભિલાપ્ય' એવા શબ્દથી જાણી શકાય છે જ. તે રીતે તે પણ વ્યંજન પર્યાય બની શકે. જાતિથી તો શબ્દનયના મતે તે અસત્ છે. અનભિલાપ્ય ભાવો-અર્થપર્યાયો તે શબ્દનયના મતે હોય નહીં. એ જ રીતે પરિભાષાથી જોતાં અભિલાપ્યભાવોને જો શબ્દોલ્લેખ વિના જાણો, તો તે'ય અર્થપર્યાય બની શકે. જાતિથી તો અર્થનયનાં મતે તે અસત્ છે. અભિલાપ્ય ભાવો-વ્યંજનપર્યાયો તે અર્થનયના મતે હોય નહીં. ટૂંકમાં, તે અર્થપર્યાય છે, માટે અર્થનયે એનું ગ્રહણ કર્યું. આવું પણ કહેવાય અને અર્થનયે જેનું ગ્રહણ કર્યું તે અર્થપર્યાય છે. આવું પણ કહી શકાય.

શંકા : વ્યંજન પર્યાય તરીકે જો વસ્તુનાં પર્યાયોને જ ગ્રહણ કરવાનાં હોય, તો તેને અર્થપર્યાય જ કહેવાય. વ્યંજન પર્યાય કેમ?

સમાધાન : જે પર્યાયો પર શબ્દ લાગુ પડે, તે વ્યંજનપર્યાય કહેવાય. આવો **સમ્મતિતર્ક-દ્રવ્યગુણપર્યાયનો રાસ** વગેરે ગ્રંથોનો આશય છે એની

।। सप्तभङ्ग्यैव पर्याप्तो बोध इत्यत्रानेकान्तता ।।

अन्यच्च स भाव: सप्तभङ्ग्यैव पर्याप्ततया ज्ञायते इत्यपि न चतुरस्रम्। अयं भाव: यथा सप्तप्रकारेण तस्मिन्भावे विज्ञाते-शब्देन प्रतिपादिते-पर्याप्तबोध: प्रमाणात्मको भवति तद्भावविषय:। तथाऽन्यैरपि प्रकारैस्तस्य पर्याप्तबोधो भवति। तथा हि-"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" इति अभियुक्तवचनात्, स कश्चिदपि भावो नास्ति, य उत्पत्ति-च्युति-ध्रौव्यालिङ्गितो न भवेत्। तावदेव तस्य समग्रत्वम्। तच्च-'उत्पत्ति-व्यय-स्थैर्ययुक्तं सदि'त्येकेनापि वाक्येन ज्ञायत एव सुतराम्, इत्येकस्याप्यस्य पर्याप्तबोधकत्वम्।

सप्तभङ्गी तु भावनयाभावनयमुख्यतायां प्रवृत्ता विवक्षापद्धति: काचित्। तस्या अपि न सप्तवाक्यवत्त्वे एव पूर्णबोधकत्वम्, अन्यतरभङ्गेनापि पदार्थ-वाक्यार्थैदम्पर्यार्थविधया स्यात्पदमहिम्ना अवच्छेदकस्य वचनात् साक्षात्सम्यगे-कान्तस्य साधनात्, अनेकान्तस्य द्योतनाच्च परम्परयेतरार्थस्याप्याक्षेपकत्वात्, फलत: भावात्मकाऽस्तित्वरूपतदर्थाऽस्तित्वाभावरूपाऽभावात्मकास्तित्वरूप-तदितरांशद्योत्यार्थालिङ्गिततयैव अस्तिवस्तुवदनात्, तन्नाम यावदंशवत एव 'अस्ति' वस्तुनो भानात् अन्यतरभङ्गस्यापि प्रमाणवाक्यत्वमपि सूपपन्नम्। अभियुक्तैस्तु तन्निषेधो य: क्रियते, स साक्षादनन्तधर्मात्मकपरिपूर्णसदादिवस्त्ववाचकत्वाद्धेतोरेव। एकेन भङ्गेन साक्षात्, द्योत्यार्थाऽमिश्रितवाच्यार्थविधया, ऐदम्पर्यार्थमुक्तपदार्थ-वाक्यार्थविधया वा नैव परिपूर्णं वस्तु वक्तुं पार्यते। ऐदम्पर्यतस्तु व्युत्पन्नदशायां परिपूर्णवस्तु उच्यते एव। दृष्टेष्टचरे तत्र च नाभियुक्तानां विरोधलेशोऽपि । इति स्थितं-यद् व्युत्पन्नदशायां सप्तभङ्गीयेन एकेनापि भङ्गेन परिपूर्णवस्तु बोधयितुं शक्यते इति। तथा **श्रीमत्स्थानाङ्गसूत्रे** "१. सियअत्थि, २. सियनत्थि, ३. सियअत्थिनत्थि, ४. सियअवत्तव्वं." इति चतुर्भङ्ग्येव प्रतिपादिता।

।। छद्मस्थानां वस्तुविषयकपर्याप्तबोधाऽसम्भव: ।।

एतदपि ध्येयं, यत्सप्तधा तत्पर्याये प्रतिपादिते शब्देन यावज्ज्ञाप्यमासीत्तावज्ज्ञापितम्, अतस्स वाक्यसमाहार: प्रमाणमित्युच्यते।

પાછળ આવું તાત્પર્ય છે કે તે પર્યાયમાં શબ્દ લાગુ પડે, ત્યારે તે પર્યાયનો ધર્મ તે શબ્દ બને. અથવા તે પર્યાયમાં જે શબ્દવાચ્યતા આવી તે પર્યાયનો ધર્મ બને, તે પર્યાય જ શબ્દનો ધર્મ બને, અથવા શબ્દથી વાચ્ય એવો તે પર્યાય સ્વયં જ સ્વયંનો ધર્મ બને. આ દરેક પરિભાષાઓમાં વચ્ચે શબ્દ આવે છે. આમાં પ્રથમ કલ્પમાં શબ્દને, બીજા કલ્પમાં શબ્દવાચ્યતાને વ્યંજન પર્યાય તરીકે માની શકાય. અને ત્રીજા ભેદકલ્પ દ્વારા તથા ચોથા અભેદ કલ્પ દ્વારા શબ્દવાચ્ય એવાં તે ભાવને જ વ્યંજનપર્યાય તરીકે માની શકવામાં કોઇ દોષ નથી. પ્રથમ કલ્પમાં કર્મધારય સમાસ થશે, બાકીનાં ત્રણમાં ષષ્ઠી તત્પુરુષ સમાસ. આ વિચારણા **સન્મતિતર્કની વૃત્તિ**ને આધારે કરી છે. **અનેકાન્તવ્યવસ્થા**માં પણ આ વિચારણા કરાઇ છે.

ટૂંકમાં, આ સઘળી'ય વ્યંજન પર્યાયત્વ અને અર્થપર્યાયત્વની અનુપ્રેક્ષામાં અંતે તો **બહુશ્રુતો જ પ્રમાણ છે.**

અથ પ્રકૃતમ્, સપ્તભંગી દ્વારા જ્યારે કોઇપણ પર્યાય કહેવાય, ત્યારે તે અભિલાપ્ય હોવાથી જાતિથી વ્યંજન પર્યાય કહેવાય. અને તે શબ્દપૂર્વક જણાયો, જણાવાયો હોવાથી પરિભાષાથી પણ વ્યંજન પર્યાય જ છે.

આથી જ **નયરહસ્ય**માં આખી સપ્તભંગી શબ્દનયની અંતર્ગત દર્શાવી છે. કારણ કે તે શબ્દાત્મક છે. માટે તજ્જન્યજ્ઞાન શબ્દનય રૂપ કહેવાય. શબ્દનયની વક્તવ્યતાની અંતર્ગત સપ્તભંગીના સાતેય ભાંગા રચાયા છે.

શંકા : જે જાતિથી જ અર્થપર્યાય જ છે અથવા જાતિથી જે વ્યંજનપર્યાયને અશ્રુતનિશ્રિત મત્યાદિજ્ઞાનનાં વિષય તરીકે અવગાહિત કરો, ત્યારે તેની ઉપર માનસિક સપ્તભંગી શું ન બની શકે?

સમાધાન : શબ્દનો વપરાશ ન થયો હોવાથી તેને 'ભંગ' ન કહેવાય. એને 'સાત સ્વરૂપની વિચારણા' વગેરે નામ આપી શકાય, પણ 'સપ્તભંગી' ન કહેવાય. પરિભાષા વિશેષથી જ્યાં શબ્દ વપરાયો હોય, તેને જ 'ભંગ' કહેવાય. સપ્તભંગીની વ્યાખ્યામાં પણ 'સાત વાક્યોનો સમુદાય' આવી વ્યાખ્યા કરી છે.

આમ, જાતિથી કે પરિભાષાથી જે વ્યંજન પર્યાય હોય, તેની પર જ

पर्याप्तबोधकत्वं शब्दप्रमाणत्वमिति। परन्तु तत्पर्यायविषयकं यत्पर्याप्तं ज्ञानमस्ति, तच्छद्मस्थानां नैव भविष्यति। एकस्यापि पर्यायस्य विना केवलज्ञानं सर्वांशेन ज्ञातुमशक्यत्वात्। सप्तभङ्गी पूर्णबोधयोग्यवाक्यसमाहाररूपा। न तु तयाऽपि छद्मस्थस्य यज्ज्ञानं जायते, तत्पूर्णबोधरूपं भविष्यति, एकपर्यायस्यापि तत्पर्यायरूपवस्तु-नोऽपीति यावत् सर्वांशैर्ज्ञाने छद्मस्थत्वव्याहतेः, 'जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ' इति वचनप्रामाण्याच्च सर्वज्ञत्वापत्तेरिति। **नन्वेवं** छद्मस्थज्ञानं किञ्चिदपि प्रमाणज्ञानं न भविष्यति-**इति चेत्?** अग्रे प्रमाणज्ञाननिरूपणावसरे एतत्सुस्पष्टीकरिष्यते।

।। भावाऽभावनयवक्तव्यतानिर्मितत्वं सप्तभङ्ग्याः ।।

सत्त्वासत्त्वात्मकं वस्तुस्वभावमादाय सप्तभङ्गी प्रवर्तते। यथा सर्वस्यापि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकता, तथैव सर्वस्यापि भावाभावात्मकता। यदा घटादिगतसत्त्वं तन्नाम-सत्त्वविशिष्टस्तदभिन्नो वा घटादिः विधिमुख्यतया प्रतिपाद्यते तदा 'स्यात्सदेवे' ति भङ्गः, अस्तित्वसम्बन्धेन स्वपर्यायवति (स्वपर्यायावच्छेदेनेति) घटे भावांशप्रधानतया सत्त्वं वर्तते इति भेदेन बोधः। अभेदेन तु-स्वपर्यायात्मकं भावांशात्मकं सत्, परपर्यायात्मकं च अभावांशात्मकं सत् इत्यादिकम्।

एतेन-प्रथमं वस्तुनि सत्त्वपर्यायस्य सद्वस्तुनो भावो जिज्ञासितः, ततस्तदभाव इत्यतः स्यात्सदेव, स्यान्न सदेवेत्यादयो भङ्गाः सञ्जाताः। तथा वस्तुगत-सत्त्वपर्यायस्य तन्नाम सत्त्वमुख्यवस्तुन एव, सद्वस्तुन एवेति यावदुत्पत्तौ जिज्ञासितायां 'स्यादुत्पन्नसदेव' तथैव तद्गतध्रौव्यविनाशाद्याशङ्कायां स्याद्ध्रुवसदेव, स्याद्विनष्टसदेवेत्याद्यपि किमिति नोच्यते-**इति निरस्तम्।**

अविज्ञातपरमार्थानां वच इदम्। न हि वस्तुगतसत्त्वस्य (सद्वस्तुनः) भावो जिज्ञासितव्यः, परन्तु वस्तुगतास्तित्वमेव सदेवेति। पर्यायमात्रस्य च भावाभाव-मात्रात्मकत्वात्तत्र जिज्ञासाऽपि भावप्राधान्येन अभावप्राधान्येन वा क्रियते। अतो न तत्र पर्याये वस्तुनि भावो जिज्ञास्यते, किन्तु भावमुख्यतया पर्यायो वस्तु जिज्ञास्यते प्रतिपाद्यतेऽपि वा।

સપ્તભંગી બને છે. ઇતિ સ્થિતમ્.

।। સપ્તભંગીથી જ પર્યાપ્ત બોધ - આ બાબતે અનેકાન્ત ।।

વળી, તે ભાવ સપ્તભંગીથી જ પર્યાપ્ત રીતે જણાય છે. આ વાત પણ યોગ્ય નથી. અર્થાત્ સપ્તભંગીની જેમ અન્ય પણ અનેક પ્રકારો છે. જેના દ્વારા તે ભાવ પર્યાપ્ત રીતે જાણી શકાય. જેમ કે-કોઇપણ ભાવ એવો નથી, જે ઉત્પત્તિ, વિનાશ અને સ્થિરતાથી યુક્ત ન હોય અને ઉત્પત્તિ વગેરે તે ત્રણને જાણો, એટલે આખો ભાવ=પર્યાપ્ત ભાવ=સમગ્ર વસ્તુ-પ્રમાણાત્મક વસ્તુ જાણી જ લીધી કહેવાય. અને તે તો 'ઉત્પત્તિ-વ્યય-સ્થિરતાથી યુક્ત વસ્તુ' આટલાં માત્ર એક વાક્યથી જ જણાઇ જાય છે. એટલે એક વાક્ય પણ પર્યાપ્ત વસ્તુને જણાવી શકે.

સપ્તભંગીના પણ એક ભાંગાથી ભલે સાક્ષાત્ સંપૂર્ણ વસ્તુ ન જણાય, પણ વક્ષ્યમાણ રીતે 'સ્યાત્' પદના સંનિધાનથી સાક્ષાત્ અવચ્છેદકનું ભાન થાય, સમ્યગેકાન્ત સિદ્ધ થાય, એના કારણે અનેકાન્તનું દ્યોતન થાય, તેથી જે-તે ભંગથી કહેવાયેલાં સ્વરૂપ કરતાં અન્ય સ્વરૂપનું પણ અવગાહન થાય, એટલે તે ભંગથી વાચ્ય અર્થ, અને તે ભંગથી દ્યોત્ય અર્થ બન્નેનું ભાન થાય, તો યાવદ્ અંશમય પર્યાપ્ત વસ્તુનું જ ભાન થાય, એટલે વ્યુત્પન્ન દશામાં તો સપ્તભંગીના એક ભાંગા દ્વારા પણ સમગ્ર વસ્તુનો બોધ થઇ જાય. એટલે પર્યાપ્ત વસ્તુના બોધ માટે સપ્તભંગી જ જરૂરી નથી. માટે જ **શ્રી સ્થાનાંગ સૂત્રમાં** ૧. સિય અત્થિ, ૨. સિય નત્થિ, ૩. સિય અત્થિ નત્થિ, ૪. સિય અવત્તવ્વં. આવી ચતુર્ભંગી જ દર્શાવી છે.

।। છદ્મસ્થને વસ્તુને વિષે પર્યાપ્તબોધ થવો અસંભવ ।।

વળી, એ પણ ખ્યાલમાં રાખવું, કે જે-તે ભાવને સપ્તભંગી પૂર્વક બતાવ્યો, એટલે શબ્દથી પર્યાપ્ત રીતે કહ્યો. માટે જ તે સપ્તભંગી રૂપ વાક્ય સમૂહને પ્રમાણવાક્ય કહેવાય. પરંતુ જે-તે ભાવવિષયક પર્યાપ્ત જ્ઞાન તો છદ્મસ્થોને થતું જ નથી. કોઇપણ વસ્તુનું સર્વાંગિક જ્ઞાન કેવલજ્ઞાન વિના શક્ય નથી. સપ્તભંગી એ પૂર્ણબોધ યોગ્ય વાક્ય સમૂહ રૂપ છે. પણ તેનાથી પણ છદ્મસ્થને 'પૂર્ણબોધ'

न च तथाऽपि भावमुख्यतया सत्त्वपर्याये जिज्ञासिते यथा स्यादस्त्येवेति भङ्गो भवति, तथोत्पत्तिमुख्यतया सत्त्वे जिज्ञासिते 'सदुत्पन्नं नवेति' प्रश्ने कथं 'स्यादुत्पन्नमेव सदि' ति भङ्गो न स्यात्? न चेष्टापत्तिः, तथा सति भङ्ग-सप्तत्वसङ्ख्याव्याहतेः, भङ्गाधिक्यप्रसङ्गादिति **वाच्यम्**, उत्पत्तिविनाशादीनां सत्त्वपर्यायस्य पृथगवस्थीभूतत्वात्पर्यायपर्यायीभूतत्वमेव, ततः सत्त्वपर्याया-त्तदुत्पत्त्यादयः कथञ्चित्पृथग्भूता एव, अतस्तेषु प्रत्येकेषूपरि पार्थक्येन सप्तभङ्गी प्रवर्तते, तथाहि-सत्त्वादिपर्यायात्मकसदादिवस्तुनि उत्पत्तौ जिज्ञासितायां स्यादुत्पन्नमेव सत्, स्यादनुत्पन्नमेवेत्यादि, विनाशे जिज्ञासिते च स्याद्विनष्टमेव सदित्यादि, एवं ध्रौव्येऽपि। न च भावाभावौ सर्वथैव पर्यायात्पृथक्पर्यायान्तरभूतौ, न च ता अत्र पर्यायात्पृथग्भूतौ पर्यायावस्थीभूतौ गृहीतौ किन्तु पर्यायस्वरूपतयैव नयविशेष-वक्तव्यतावशात्। भावमुख्यतयाऽभावमुख्यतया वा स एव पर्याय एव गृहीत इति। जिज्ञासुर्नयविशेषमालम्ब्य तौ भिन्नौ कल्पयित्वा सप्तभङ्गीं तत्रापि कुर्याच्चेदिष्टापत्तिः, वस्तुनस्तथैव स्वरूपाच्च नानवस्थादयः। तत्र च सप्तभङ्गी एवं स्यात्-स्याद् भावात्मकमेव सत्, स्यान्न भावात्मकमेव सत्। तथा स्यादभावात्मकमेव सत्, स्यान्नाभावात्मकमेव सत् इत्यादिः ।

।। समस्तस्यापि वस्तुनो भावाभावात्मकत्वम् ।।

अयं भावः-यथा स कोऽपि शब्दो नास्ति, यो विभक्तिं विना प्रयुक्तः स्यात्, तथैव स कोऽपि पर्याय एव नास्ति यो भावाभावौ विनोपलब्धो भवेत्। ***भावाभावात्मकमेव सदिति सप्तभङ्ग्याकूतम्।*** अतः पर्यायस्य जिज्ञासेति, पर्यायस्वरूपभावाभावजिज्ञासैवेति। भावाभावमुख्यतया पर्यायजिज्ञासैवेति यावत्। अत एव विधिनिषेधमुख्यतया प्रतिपादिते पर्याये भावमुख्यतया अभावमुख्यतया चाऽवगते सर्वथैव, सर्वस्वरूपेणैव, सर्वांशतयैवेति यावत्, पर्यायस्य वैकल्पिकं ज्ञानं भावि इति। **न च**-तर्हि द्वाभ्यां भङ्गाभ्यामेव पर्याप्तबोधसम्भवे सृतमन्यैरिति **वाच्यम्**, भङ्गसप्तत्वसङ्ख्यापरिमाणनियमस्त्वग्रे चतुर्दशपद्यविवरणे स्पष्टीकरिष्यते ।।५।।

તો થવો ન સંભવે. કારણ કે **શ્રી આચારાંગ સૂત્ર**માં લખ્યું છે કે 'જે એક ભાવને પૂર્ણ રીતે જાણે છે, તે સર્વભાવને જાણે છે-અર્થાત્ તે સર્વજ્ઞ-કેવલી છે.' માટે, જો જે-તે ભાવનો સપ્તભંગીના શ્રવણથી પણ છદ્મસ્થને પૂર્ણ બોધ થઇ જાય, તો તેનામાં કેવલીપણું માનવાની આપત્તિ આવે.

શંકા : તો શું છદ્મસ્થનું જ્ઞાન એ પ્રમાણ જ્ઞાન કહેવાય જ નહી?

સમાધાન : પ્રમાણ જ્ઞાનનાં નિરૂપણ વખતે આ વાત સ્પષ્ટ કરાશે.

।। સપ્તભંગી એ ભાવનય- અભાવનયની વક્તવ્યતા રૂપ છે ।।

સપ્તભંગીની વક્તવ્યતા ભાવાભાવાત્મક વસ્તુસ્વરૂપની મુખ્યતાએ છે. અર્થાત્ જેમ સર્વ વસ્તુ ઉત્પત્તિ-વ્યય-ધ્રૌવ્યરૂપ છે, તેમ સર્વ વસ્તુ ભાવાભાવાત્મક પણ છે. જ્યારે 'સત્' વસ્તુ તેના ભાવની મુખ્યતાએ પ્રતિપાદિત કરાય, ત્યારે 'સ્યાત્ સદ્ એવ' આ પ્રથમ ભાંગો રચાય. તે જ વસ્તુ જ્યારે અભાવ સ્વરૂપની મુખ્યતાએ દર્શાવાય, ત્યારે 'સ્યાન્ન સદ્ એવ' આ બીજો ભાંગો રચાય. આ વાત **વિશેષાવશ્યક ભાષ્ય**માં જણાવી છે.

શંકા : જો સદ્ વસ્તુનાં ભાવની કે અભાવની જિજ્ઞાસા કરી અને તેના પ્રતિપાદન દ્વારા 'સ્યાત્ સદ્ એવ', 'સ્યાદ્ ન સદ્ એવ' ઇત્યાદિ ભાંગા બનતા હોય, તો સદ્ વસ્તુની જ ઉત્પત્તિની, વિનાશની કે સ્થિરતાની જિજ્ઞાસા ને પ્રતિપાદન દ્વારા 'સ્યાદુત્પન્નં સદ્ એવ', 'સ્યાદ્વિનષ્ટં સદ્ એવ' ઇત્યાદિ ભાંગા કેમ ન બને?

સમાધાન : સદ્ વસ્તુનાં ભાવની જિજ્ઞાસા નથી કરતા, પણ સદ્વસ્તુની જ જિજ્ઞાસા કરે છે. પરંતુ, વસ્તુમાત્ર ભાવાભાવાત્મક હોવાથી વસ્તુની જિજ્ઞાસા એટલે વસ્તુના ભાવાભાવની જિજ્ઞાસા આવો જ ભાવ નીકળે. એટલે વસ્તુમાં ભાવનું પ્રતિપાદન નથી કરાતું. પણ ભાવની મુખ્યતાએ વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરાય છે એમ સમજવું. કારણ કે, સપ્તભંગીવક્તવ્યતા વસ્તુને ભાવાભાવાત્મક માને છે.

શંકા : જેમ ભાવની મુખ્યતાએ વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરતાં 'સ્યાત્ સદ્ એવ' ભાંગો બન્યો. તેમ ઉત્પત્તિની મુખ્યતાએ વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરતાં 'સ્યાદ્ ઉત્પન્નં

अव. अथ किमेषैवमेवाविर्भवति यदुतास्ति काचन परिपाटिर-प्येतत्सप्तत्वनियामिकेत्याह -

शङ्का-जिज्ञासिति-प्रश्नो-त्तराणीति प्रणालिका।
संशयानां च सप्तत्वं, धर्मेयत्तासुनिश्चितम् ॥६॥

॥ सप्तभङ्गीप्रयोजिका परिपाटिः ॥

टीका - प्रत्येकमपि वस्तु स्वरूपतोऽनन्तधर्मात्मकमेव। तत्रैकः कश्चनापि धर्मो मनसि स्थाप्यः, तमाश्रित्य-तमालम्ब्य तदात्मके वस्तुनि सप्तधैव संशयाः सम्भवन्ति। यदाह **नयोपदेशे श्रीमान्न्यायविशारदः** "एते च विधिनिषेध-प्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुनि सप्तैव भङ्गाः, धर्मभेदेनानन्तसप्तभङ्गीसम्भवेऽपि प्रतिधर्मं सप्तानामेव (भङ्गानां) भावात्।" (**नयोपदेश-षष्ठगाथाविवरणम्**)

इत्थं ये वदन्ति परस्परविरुद्धधर्मद्वयनिष्पाद्या सा सप्तभङ्गीति तदेतत्तेषां वचनं **निरस्तम्**, एकस्मिन्नेव धर्मे मनसि स्थिते तमाश्रित्यैव तदात्मकवस्तुन्येव सप्तभङ्गीप्रवृत्तेः, स एव पर्यायो विधिप्रधानतया, निषेधप्रधानतया, उभयप्रधानतया, युगपदुभयप्रधानतया, विधि-युगपदुभयप्रधानतया, निषेध-युगपदुभयप्रधानतया, विधि-निषेध-युगपदुभयप्रधानतया प्रतिपाद्यते, तदा सप्तभङ्ग्याविर्भवति।

प्रत्येकस्यापि वस्तुस्थितपर्यायस्य भावाभावात्मकत्वात्सप्तप्रकारत्वमेव, अतस्तस्य संशया अपि सप्तैव भवन्ति,ताननु जिज्ञासा अपि सप्तधैव, जिज्ञासानुधाविनः प्रश्ना अपि सप्तैव, प्रश्नोत्तरभावीनि चोत्तराण्यपि सप्तैव, तान्युत्तराण्येव सप्तभङ्ग्याः सप्तवाक्यानीति।

वस्त्वाश्रिते सत्त्वपर्याये भावप्रधानतया संशये किं सत्त्वमस्ति नवेति, किं सन्न वेति वा जिज्ञासयाऽभियुक्तं प्रति किं सत्त्ववान्न वेति, किमस्ति न वेति इत्यादि स्वरूपः प्रश्नः, तदा तदनु "स्यात्सत्त्ववानेवे"ति "स्यादस्त्येवे"ति इत्याद्याकारं प्रज्ञापकस्योत्तरमेव सप्तभङ्ग्याः प्रथमो भङ्गः। इत्येवं सर्वभङ्गानामुत्पत्तिर्वाच्या।

સદ્ એવ' આવો ભાંગો પણ બને. આને ઇષ્ટાપત્તિ ન કહી શકો. નહીં તો ભાંગાની સંખ્યા સાતથી અધિક થઇ જાય.

સમાધાન : ઉત્પત્તિ-વિનાશ વગેરે સદ્ વસ્તુથી કથંચિદ્ ભિન્ન હોવાથી તેમાં રહેલા પર્યાયો-ધર્મો છે. આથી તે પ્રત્યેકની ઉપર તો અલગ અલગ સપ્તભંગીઓ બને. જેમ કે, સદ્‌વસ્તુમાં ઉત્પત્તિને આશ્રયીને 'સ્યાદ્ ઉત્પન્નમેવ સદ્', 'સ્યાદ્ અનુત્પન્નમેવ સદ્' એ રીતે સપ્તભંગી થાય. એમ વિનાશ અને ધ્રૌવ્યને આશ્રયીને પણ સમજવું.

પરંતુ, ભાવાભાવ એ સપ્તભંગી રચતી વખતે વસ્તુથી ભિન્ન નથી કલ્પવાના, કિંતુ વસ્તુસ્વરૂપ જ લેવાનાં છે. હા, જો કોઇ જિજ્ઞાસુ સદ્‌વસ્તુનાં ભાવ અને અભાવને ભિન્ન કરીને તેને વિશે સપ્તભંગી કરે, જેમ કે 'સ્યાદ્ ભાવાત્મકં સદ્', 'સ્યાન્ન ભાવાત્મકં સદ્' ઇત્યાદિ... તો ત્યાં પણ ઇષ્ટાપત્તિ જ છે. વસ્તુનું તેવું જ સ્વરૂપ હોવાથી અનવસ્થા વગેરે પણ નથી. કિન્તુ ત્યાં પણ સપ્તભંગી તો ભાવાભાવાત્મકતાની મુખ્યતાએ જ થશે.

।। પૂર્ણ વસ્તુ એ ભાવાભાવાત્મક છે ।।

આમ, વસ્તુ ભાવાભાવાત્મક હોવાથી અને સપ્તભંગી દ્વારા ભાવાંશ અને અભાવાંશનું જ્ઞાન થવાથી સમગ્ર વસ્તુનો બોધ થાય છે.

શંકા : તો બે જ ભાંગાથી પર્યાપ્ત બોધ થઇ શકે, અને એવું હોય તો બાકીનાં ભાંગા વ્યર્થ છે.

સમાધાન : ભાંગાની સંખ્યા સાત જ કેમ છે એ વાત આગળ ૧૪મા કાવ્યનાં વિવરણમાં સ્પષ્ટ કરાશે. ।।૫।।

અવ. શું સપ્તભંગી એમ જ બની જાય છે કે કોઇક ખાસ નિયામક ક્રમ પણ છે? આ પ્રશ્નનાં જવાબમાં કહે છે.

શંકા-જિજ્ઞાસા-પૃચ્છા, ઉત્તર એ છે ક્રમ;
સાત શંકા જે કારણે, સાત પ્રકારે ધર્મ ।।૬।।

।। સપ્તભંગી પ્રયોજક ક્રમ ।।

વાર્તિક. પ્રત્યેક દ્રવ્ય અનન્ત પર્યાયાત્મક છે. તેમાંથી કોઇપણ એક (વ્યંજન)

तदाह **नयोपदेशे श्रीमान्** —> अयं च नियमः प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव सम्भवात्, तेषामपि सप्तत्वं सप्तविधतज्जिज्ञासानियमात्, तस्या अपि सप्तविधत्वं सप्तधैव तत्सन्देहसमुत्पादात्, तस्याऽपि सप्तप्रकारत्वनियमः स्वगोचरवस्तुधर्माणां सप्तविधत्वस्यैवोपपत्तेरिति। <— कथञ्चात्र सप्तैव भङ्गा न न्यूना वा नाऽधिका वेत्यत्र योपपत्तिः साऽग्रे कथयिष्यते।

ननु – यदि प्रथमेनैव भङ्गेन पूर्वपद्योक्तरीत्या शब्दार्थैदम्पर्यार्थविधया पर्याप्तो बोधो जातः, तदा इतरभङ्गानां वाच्यार्थस्य जिज्ञासाया एवासम्भवात्। तद्द्योतकाः प्रश्नास्तदनुकूलोत्तररूपाणि चान्यानि षड् उत्तराण्यपि न भविष्यन्ति, ततः सप्तभङ्गी न पूरिष्यते इति **चेत्?**

न – प्रथमेन भङ्गेन ऐदम्पर्यार्थतया ज्ञातेऽपि तस्मिन्वाच्यार्थे प्रातिस्विकशब्दार्थतया ज्ञानस्य जिज्ञासा सम्भवत्येव। यथा प्रत्यक्षेण ज्ञातेऽपि सिसाधयिषाबलात्पुनरनुमानेन साधनम्, तथा एकभङ्गेन ज्ञानेऽपि प्रातिस्विकशब्देन जिज्ञासया प्रश्नः प्रतिपादनं च भवेदेव। प्रत्यक्षेण ज्ञातेऽप्यनुमानपूर्वकत्वेन ज्ञानाभावात्तादृग्ज्ञानेच्छारूपसिसाधयिषा यथा, तथा तेन भङ्गेन ज्ञातेऽपि प्रातिस्विकभङ्गपूर्वकत्वेन ज्ञानाभावात्तादृग्ज्ञानेच्छारूपजिज्ञासा ज्ञातस्य ज्ञाने वा प्रश्ने प्रतिपादने च वा नियामिकेति कथनसारः।[१]

किञ्च न सर्वथा प्रतिपादनं प्रश्नपूर्वकमेवेत्यपि ध्येयम्। एतत्परिपाट्या त्वेतावदेवोच्यते, यदुत– यदि सप्तत्वातिक्रमेण प्रश्ना भवेयुस्तदा तदुत्तररूपा भङ्गा

---

१. तुलना

तथाऽपि 'स्वद्रव्यादिना सन्नेव' इत्यत एव समानसंवित्संवेद्यतया परद्रव्यादिनाऽसत्त्वलाभसम्भवात्तद् बोधनाय द्वितीयभङ्गप्रयोगोऽनर्थक इति चेत्, न, समानसंवित्संवेद्यताया मानसबोध एव तन्त्रत्वात्, "शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव पूर्यते" इति न्यायात्परद्रव्यादिनाऽसत्त्वं शब्देन बोधयितुं द्वितीयभङ्गोपन्यासस्सार्थक्यात्।

– अनेकान्त व्यवस्था प्रकरणम्

પર્યાય પર સાત પ્રકારે સંશયો થાય છે. તે રીતે શંકા થયા પછી ૭ પ્રકારે જિજ્ઞાસા થાય છે, ૭ પ્રકારે પૂછવામાં આવે છે અને તેને જ સાત પ્રકારે કહેવાય છે. આ સાત કહેવાયેલા વાક્યો એ જ સપ્તભંગી છે.

શંકા : સપ્તભંગી બે વિરુદ્ધ ધર્મોથી બને છે. પરંતુ, એક ધર્મને આશ્રયીને નહીં.

સમાધાન : નયોપદેશ વગેરે અનેક ગ્રંથોમાં સ્પષ્ટ લખ્યું છે, કે પ્રત્યેક પર્યાય પર સાત ભાંગા થાય છે. માટે બે વિરુદ્ધ ધર્મો પર નહીં, પણ એક જ પર્યાય પર સપ્તભંગી બને છે આવું માનવું જોઇએ. માટે પૂર્વોક્ત માન્યતા ઉચિત નથી. હા, જે-તે ધર્મના ભાવ અને અભાવ પર સપ્તભંગી બને છે. આવું કહેવામાં દોષ નથી.

વસ્તુતઃ સપ્તભંગી ભાવ અને અભાવ પર પણ નહીં, પરંતુ, વસ્તુગત તે ધર્મનાં (અથવા તે વસ્તુનાં) સાત સ્વરૂપો પર બને છે. કારણ કે વસ્તુસ્થિત તે ધર્મ સાત સ્વરૂપે હોય છે. ભાવાત્મક, અભાવાત્મક, ભાવાભાવાત્મક... ઇત્યાદિ. તે સ્વરૂપો સાત હોવાથી સંશયો પણ સાત જ થાય, જેમ કે વસ્તુ સ્થિત સત્ત્વ પર્યાયનો ભાવ પ્રધાનતાએ સંશય થાય, એટલે ભાવ પ્રધાનતયા જિજ્ઞાસા, પ્રશ્ન અને પ્રતિપાદન થાય. આ ભાવ-પ્રધાનતયા પ્રતિપાદન એ જ સપ્તભંગીનો પ્રથમ ભંગ સમજવો.

શંકા : જો પૂર્વોક્ત રીતે પ્રથમ ભંગથી જ શબ્દાર્થ-ઐદમ્પર્યાર્થ રીતે સંપૂર્ણ વસ્તુનો બોધ થઇ જાય, તો બાકીના ભાંગા રચાશે જ નહીં. કારણ કે જે અર્થ જણાયો હોય, તેને વિશે શંકા જ ન થાય, તેથી જિજ્ઞાસા ન થાય, તેથી પ્રશ્ન ન પૂછાય, ને તેથી ઉત્તર રૂપ ભંગ પણ ન રચાય.

સમાધાન : ના, પ્રથમ ભંગ દ્વારા ઐદંપર્યાર્થ રીતે તે ધર્મ જણાઇ ચૂક્યો હોવા છતાં, પ્રત્યેક શબ્દ દ્વારા તે અર્થ તો નથી જ જણાયો ને? તેથી જેમ પ્રત્યક્ષથી જણાઇ ગયેલ વસ્તુને સિસાધયિષાનાં બળે ફરીથી અનુમાનથી જાણવામાં કોઇ દોષ નથી. કારણ કે પ્રત્યક્ષથી જાણવા છતાંય અનુમાનથી જણાયું નથી. તે જ રીતે એક ભંગથી ઐદંપર્યાર્થ રીતે જણાઇ ગયેલ વસ્તુને સાક્ષાત્ વાચ્યાર્થ

अपि सप्तत्वसङ्ख्यामतिक्रमेरन्, प्रश्नसङ्ख्या भङ्गसङ्ख्याया नियामिका, न तु प्रश्नोत्पत्तिर्भङ्गोत्पादनियामिकेति सुसूक्ष्ममवधार्यम् ।।६।।

अव. अथ प्रथमं वाक्यं व्याख्यानयन्नाह–

भावनयाश्रयादत्र, स्यादस्तीति वचोविधिः ।
विधिकल्पनयाऽऽद्योऽयं, भङ्गस्तीर्थकृदुक्तवान् ।।७।।

।। प्रथमभङ्गविवेचना ।।

टीका– तदेवं वस्तुनि यदा सत्त्वपर्यायो विचार्यते, तदा सप्तभङ्ग्याः प्रथमो भङ्ग आविर्भवति–'स्यादस्त्येव'। यदा च नित्यत्वपर्यायो विचार्यते तदा–"स्यान्नित्य एव" इत्याद्यूह्यम्। वयमत्र दृष्टान्ततया सत्त्वपर्यायस्य भङ्गान्विचारयिष्यामः।

शिष्येण भावनयाश्रयाद् भावप्राधान्येन 'अस्ति न वा' इति पर्यनुयुक्तो गुरुर्वदति "स्यादस्त्येव" तदर्थश्च स्वपर्यायवत्त्वेन भावनयाश्रयाद् भावमुख्यतयाऽस्तित्ववानेवेति। अत्र शिष्योऽव्युत्पन्नदशायां जिज्ञासति 'अस्ति' इत्येतावदेवानुक्त्वा किमिति भवता 'स्यादस्त्येवे' त्युक्तम्? नित्यमनुक्त्वा किमिति 'स्यान्नित्य एव' इत्युक्तम्? तत्र गुरुर्वदेत् सर्वनयवचनं स्यात्कारैवकारयुक्तमेव भवतीति। ततो मयोक्तं स्यादस्ति एव, स्यान्नित्य एव–इति।

।। प्रथमभङ्गस्य वाक्यार्थमहावाक्यार्थादिकम् ।।

अथ 'स्याद् अस्ति एव' इति वाक्यस्य पदार्थ–वाक्यार्थ–महावाक्यार्थादिकं ज्ञातव्यम्।

तत्र–"स्यात्पदप्रयोगो हि विवक्षितवस्त्वनुयायिधर्मान्तरसङ्ग्रहशीलः स्यात्पदप्रयोगात्साधारणासाधारणधर्मपरिग्रहः" **इत्यावश्यकवृत्तौ श्रीमन्मलयगिरिपूज्याः।**

"स्यादित्यव्ययमनेकान्तावद्योतकं, स्यात् कथञ्चित् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणास्त्येव सर्वं कुम्भादि, न पुनः परद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण।" इति

તરીકે ન જણાવાથી તે રીતે જાણવાનો સંશય થાય, અને જિજ્ઞાસા થાય, તો બાકીનાં છ ભાંગાની રચના પણ થઇ શકે છે. વળી, શબ્દજન્ય બોધ-શાબ્દબોધ એ પ્રાયઃ નિશ્ચાયક જ હોય છે. માટે અધ્યાહારથી કે ઐદંપર્યથી જાણેલાં અર્થનો નિઃસંશય બોધ કરવા પણ પ્રશ્ન પૂછાય છે અને પ્રતિપાદન થાય છે.

વળી, પ્રતિપાદન એ પ્રશ્નપૂર્વક જ થાય છે એવું નથી હોતું. પ્રસ્તુત પરિપાટી-ક્રમ દ્વારા એવું નિશ્ચિત નથી થતું કે "જો પ્રશ્ન પૂછે, તો જ ઉત્તર રૂપે ભંગ અસ્તિત્વમાં આવે." પણ, આ ક્રમ બતાવીને એટલું જ સાબિત કર્યું છે, કે "જો પ્રશ્નો સાતથી વધારે હોત, તો ભાંગા સાતથી વધારે હોત. પણ પ્રશ્નો જ જ્યારે વધારે પૂછી શકાતાં જ નથી. ત્યારે ભાંગા પણ વધારે રચી શકાય જ નહીં." આમ, ક્યારેક સામેથી પ્રશ્ન ન પૂછાય, ત્યારે પણ ભાંગો અસ્તિત્વમાં આવી શકે છે. પ્રજ્ઞાપકને સપ્તભંગી કહેવા માટે, સાત પ્રશ્નો પૂછાય એવી રાહ જોવાની જરૂર નથી. ॥૬॥

અવ. હવે પ્રથમ ભંગ બતાવે છે -

ભાવનયનાં આલંબને, સ્યાદ્ અસ્તિ એ વાક્ ।
વિધિપ્રધાન પણે કહ્યો, પ્રથમ ભંગ ભગવાન ॥૭॥

॥ પ્રથમ ભંગનું વિવેચન ॥

વાર્તિક. જ્યારે દ્રવ્યગત 'સત્ત્વ' પર્યાયની વિચારણા કરાય, ત્યારે 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' આવો પ્રથમ ભંગ બને. અને 'નિત્યત્વ' પર્યાયની વિચારણા કરાય ત્યારે 'સ્યાદ્ નિત્ય એવ' આવો ભાંગો બને. અહીં દૃષ્ટાન્ત તરીકે સત્ત્વ પર્યાયનાં ભાંગા વિચારીશું.

જ્યારે 'સદ્' વસ્તુના ભાવાંશની મુખ્યતાએ શિષ્યે પ્રશ્ન કર્યો કે 'અસ્તિ ન વા?' ત્યારે સપ્તભંગીનો પહેલો ભાંગો એવો રચાય કે 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' એનો અર્થ સ્વદ્રવ્યગુણપર્યાયની અપેક્ષાએ સદ્વસ્તુ ભાવસ્વરૂપની મુખ્યતાએ છે.

અહીં શિષ્ય પ્રશ્ન કરે, કે આપે 'અસ્તિ' આટલું જ નહીં કહેતાં 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' આવું કેમ કહ્યું? તો ગુરુ કહે, કે દરેક સાંવ્યવહારિક નયવાક્ય

"स्यात्पदप्रयोगेण सप्रतिपक्षनयद्वयविषयावच्छेदकस्यैव लाभात्, तेनानन्तधर्मकत्वापरामर्शः न चेदेवं तदाऽनेकान्ते सम्यगेकान्तप्रवेशानुपपत्तिरवच्छेदकभेदं विना सप्रतिपक्षविषयसमावेशस्य दुर्वचत्वात्, इष्यते चायम्, यदाह महामतिः-

भयणा विहु भइयव्वा, जह भयणा भयइ सव्वदव्वाइं ।
एवं भयणानियमो, वि होइ समयाविराहणया ।।इति।

समन्तभद्रोऽप्याह-

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः, प्रमाणनयसाधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते, तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ।।इति।

पारमर्षेऽपि-"इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया? गोयमा! सिय सासया सिअ असासया। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा! दव्वट्ठयाए सासया पज्जवट्ठयाए असासया।" इति प्रदेशे स्यात्पदमवच्छेदकभेदप्रदर्शकतयैव विवृतम्, अत एव स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकमेव तान्त्रिकैरुच्यते, सम्यगेकान्तसाधकस्यानेकान्ताक्षेपकत्वात्, न त्वनन्तधर्मपरामर्शकम्,.. मलयगिरिपादवचनं त्वप्रतिपक्षधर्माभिधानस्थलेऽवच्छेदकभेदाभिधानानुपयुक्तेन स्यात्पदेन साक्षादनन्तधर्मात्मकत्वाभिधानात्... अधिकं तु बहुश्रुता विदन्ति।।५२।।" **इति गुरुतत्त्वविनिश्चये न्यायाचार्यमहोपाध्याययशोविजयाः।**

।। स्यात्पदस्यार्थः ।।

एतेन सिद्धं यदत्र स्यादिति पदस्य कथञ्चिदर्थकत्वं बोध्यम्। अस्तित्वपर्यायभावोऽपि घटादौ न सर्वथा, किन्तु कथञ्चिदेव, किञ्चिदवच्छेदेनैवेति यावत्। न तु यावदवच्छेदकैरिति। स्वपरपर्यायात्मकघटस्य यत्स्वपर्यायरूपः अंशः पृथुबुध्नोदराद्याकारवत्त्वं, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावभावित्वं, स्वनामस्थापनाद्रव्यभाववत्त्वमित्यादिकं तेनैव स्वरूपेण स्वपर्यायरूपांशेन घटेऽस्तित्वपर्यायभावो वर्तते। यच्च घटस्यैव पररूपं, यच्च निषेधात्मना घटे स्थितं, तादृशेन तेन पररूपेण

હંમેશા સ્યાત્કાર અને એવકારથી યુક્ત જ હોય છે. માટે મેં એવું પ્રતિપાદન કર્યું.

|| પ્રથમ વાક્યનાં વાચ્યાર્થ-મહાવાક્યાર્થ વગેરે.. ||

'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' આ વાક્યમાં 'સ્યાત્' પદ દ્વારા વિવક્ષિત ઘટાદિ વસ્તુમાં રહેલા અન્ય અનંત ધર્મોનો સંગ્રહ કરવાનો. આથી સ્યાત્ પદનો અર્થ અનંતધર્મો થાય છે. આવું **આવશ્યકવૃત્તિમાં શ્રી મલયગિરિ મહારાજા** કહે છે.

'સ્યાત્' અવ્યય એ અનેકાન્તદ્યોતક છે. સ્યાત્=કોઇક રીતે જ -સ્વદ્રવ્યક્ષેત્ર-કાલભાવરૂપે જ બધું-ઘટપટાદિ છે. પરંતુ પરદ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવરૂપે નથી જ. આવું **રત્નાકરાવતારિકા**માં જણાવ્યું છે.

'સ્યાત્' પદના પ્રયોગથી બે વિરોધી નયોની વક્તવ્યતાનાં અવચ્છેદકનો જ બોધ થાય છે. માટે તેના દ્વારા અનંત ધર્માત્મકતાનો બોધ થતો નથી. અવચ્છેદકના ભેદ વિના એક જ વસ્તુમાં સપ્રતિપક્ષ નયોનાં વિષયોનો સમાવેશ થવો શક્ય નથી અને જો સ્યાત્પદથી અવચ્છેદકનો બોધ ન થાય, તો અનેકાન્તમાં સમ્યગ્એકાન્તનો પ્રવેશ ન થઇ શકે. પરંતુ **સિદ્ધસેનદિવાકરસૂરિજી**ના તથા **સમન્તભદ્રસૂરિ**ના વચનથી અનેકાન્તમય પદાર્થમાં સમ્યગ્એકાન્ત પણ હોય જ છે.

વળી, આગમમાં પણ 'રત્નપ્રભા પૃથ્વી શું શાશ્વત છે કે અશાશ્વત છે?' આ પ્રશ્નના જવાબમાં લખ્યું, કે 'સ્યાત્ શાશ્વત છે. સ્યાત્ અશાશ્વત છે.' અર્થાત્ દ્રવ્યાર્થતાથી શાશ્વત છે. પર્યાયાર્થતાથી અશાશ્વત છે. આવું વિવરણ કરવાથી 'સ્યાત્' પદનો અર્થ 'દ્રવ્યાર્થતા' કે 'પર્યાયાર્થતા' રૂપ અવચ્છેદક ભેદ જ સમજાય છે. માટે તે સમ્યગ્એકાન્તનું સાધક છે અને અનેકાન્તનું દ્યોતક છે. પરંતુ, અનંત ધર્મોનું બોધક નથી. **પૂજ્ય મલયગિરિ સૂ.મ.**ના મતે 'સ્યાત્' પદનો અર્થ અનંતધર્માત્મકતા કહેવાયો હોય, તો તે 'સ્યાત્' પદ સપ્રતિપક્ષ ધર્મને કહેવામાં વપરાયું ન હોય, ત્યારે તેવો અર્થ થાય... વધુ તો બહુશ્રુતો જ જાણે ||૫૨|| આવું **ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય વિવરણમાં પૂજ્યપાદ મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી** જણાવે છે.

घटेऽस्तित्वपर्यायाभावो विद्यते। एतच्च घटे इव सर्वत्रैव, इत्यतः स्वपर्यायेण सत्, परपर्यायेणासत् सर्वम्।

अत्र प्रसङ्गत **आह**– यदि पररूपमेव घटादौ न स्यात्तदा तत्र तेनास्तित्वमपि तदभावोऽपि वा कथं स्यादिति, **उच्यते**–अभावात्मना पररूपस्यापि घटे सत्त्वात्। तथा हि–यत्पटीयं स्वरूपं आतानवितानवत्त्वादिकं, तद् घटे न विद्यते इत्यतो घटः पटरूपाभाववान् इत्यतोऽभावसम्बन्धेन घटः पटरूपवान्। एवं निषेधसम्बन्धेन पटरूपस्यापि घटे सत्त्वात्, तदर्पणायाञ्च अस्तित्वस्य घटे अभावात्, सुष्ठूक्तं-पररूपाऽपेक्षायामस्तित्वाभाववान्घट इति। एवं च भेदेनोक्तं, शिष्यमतिग्राहणाय, वस्तुतस्तु न घटादेः घटत्वादिना ग्रहणं, किन्तु सत्त्वादिनैव, तथा च वक्तव्यमेवं 'स्वरूपात्मकं भावात्मकं सत्', 'पररूपात्मकं चाभावात्मकं सत्' इत्यादिः। एतच्चाग्रेऽपि सर्वत्र समवधेयम्।

।। प्रसङ्गतो वस्तुस्वरूपदर्शनम् ।।

उत्पद्यमानमेव वस्तु अनन्तभिन्नावच्छेदकापेक्षाविज्ञेयानन्तपर्यायालिङ्गितत्वेनैवोत्पद्यते। द्रव्येऽनन्ताः पर्याया,: तेषामेकद्रव्याश्रितत्वेऽपि भिन्नावच्छेदकाश्रितत्वमेव विभिन्नतायां नियामकम्। अवच्छेदकः च तत्तद्धर्ममात्रजनको द्योतको व्यञ्जको ज्ञापको वा द्रव्यावस्थित एवोपाधिविशेषः। सर्वपर्यायाणां प्रातिस्विक एव। अतो यदपेक्षयैकः पर्यायोऽस्ति, ततो भिन्नावच्छेदकापेक्षया (भिन्नः पर्यायोऽपरः कश्चिदपि स्यान्नाम) न स एव पर्यायो भविष्यतीतीत्थं प्रसिद्धमिदं यदुत कथञ्चिदेव तन्नाम किञ्चिदेवावच्छेदकमाश्रित्य सत्त्वादिपर्यायो वस्तुन्यवस्थितः, इति सत्यमेवोक्तं-स्यादस्त्येव कथञ्चिदस्त्येवेति।

अथापेक्षाऽऽपादकोपाधेः अपेक्षाऽऽपादितपर्यायाणां च द्वयोरविशेषः, **सत्यम्**, उपाधेरपि द्रव्यावस्थितत्वात्, वस्तुपर्यायस्वरूपत्वात्, अत एवापरपर्यायापत्तावुपाधिकोटिं प्रविशन् धर्मः स्वयमप्यन्ययाऽपेक्षयैवोपाधिकोटिप्रविष्टया द्रव्ये संस्थितो वर्तते। न चैवं अनवस्था–ऽन्योन्याश्रय–चक्रकादयो दोषाः, द्रव्यस्य तथैव स्वस्वाभाव्यादिति **दिक्**।

।। સ્યાત્ પદનો અર્થ ।।

ઉપરોક્ત શાસ્ત્રોથી સિદ્ધ થાય છે કે 'સ્યાત્' પદનો અર્થ 'કોઇક રીતે' એવો નીકળે છે. અર્થાત્ સત્ત્વપર્યાયનો સદ્‌વસ્તુનો ભાવ પણ ઘટાદિમાં કોઇક અવચ્છેદકની અપેક્ષાએ જ છે, સર્વથા નથી અર્થાત્ સર્વ અવચ્છેદકોથી નથી.

તથા હિ-ઘટાદિ સદ્‌વસ્તુ સ્વ-પર પર્યાયાત્મક છે. એમાંથી તેનો સ્વપર્યાયરૂપ જે એક અંશ છે, તેનાં આલંબને-તદવચ્છેદેન-ઘટમાં અસ્તિત્વનો ભાવ રહે છે અને ઘટમાં જ નાસ્તિત્વ સંબંધથી રહેલો જે પરપર્યાય છે, તે રૂપ ઘટના અંશના આલંબને-તદવચ્છેદેન-ઘટમાં અસ્તિત્વનો અભાવ રહે છે. આ વાત ઘટની જેમ સર્વવસ્તુમાં લાગુ પડે. માટે 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ'નો મતલબ સ્વપર્યાયેણ સત્ એવ. અને 'સ્યાદ્ નાસ્તિ એવ' એટલે પરપર્યાયેણ અસત્ એવ સર્વમ્।

શંકા : જો ઘટાદિમાં પરરૂપ જ ન હોય, તો તેના આલંબનથી અસ્તિત્વનો ભાવ કે અભાવ પણ શી રીતે હોય?

સમાધાન : પરરૂપ પણ અભાવ સંબંધથી ઘટાદિમાં હોય છે. જેમ કે-પટનું રૂપ તાણાવાણા રૂપ છે. તે ઘટાદિમાં નથી, આથી ઘટમાં પટરૂપનો અભાવ છે.. આથી ઘટ એ પટરૂપ-અભાવવાન્ છે. આથી, અભાવ સંબંધથી ઘટ એ પટરૂપવાન્ છે. માટે કહ્યું-"પરરૂપની અપેક્ષાએ ઘટાદિ એ અસ્તિત્વાભાવવાળા છે." આમ કહેવું ઉચિત જ છે.

આવું પણ સ્થૂલનયથી કહેવાયું છે. હકીકતમાં ઘટાદિનો તો અધ્યાહારથી જ બોધ થાય છે અને તેનું ગ્રહણ ઘટત્વેન નહીં, પણ સત્ત્વેન જ થાય છે. તેથી આમ કહેવું જોઇએ કે સ્વરૂપાવચ્છિન્નભાવાંશવત્ સત્, પરરૂપાવચ્છિન્ન-અભાવાંશવત્ સત્ અથવા "સ્વરૂપાત્મક સત્ એ ભાવાંશાત્મક છે" અને "પરરૂપાત્મક સત્ એ અભાવાંશાત્મક છે." આમ, સત્ વસ્તુનાં ભાવાંશ અને અભાવાંશનો બોધ કરાય છે, તે સત્ વસ્તુ ઘટ પટાદિ કોઇપણ હોય...

।। પ્રસંગથી વસ્તુના સ્વરૂપનું નિરૂપણ ।।

ઉત્પન્ન થતી કોઇપણ વસ્તુ અનન્ત ભિન્ન ભિન્ન અવચ્છેદકોની અપેક્ષાથી જાણવા યોગ્ય એવા અનન્ત પર્યાયોથી યુક્ત જ ઉત્પન્ન થાય છે. એક દ્રવ્યમાં

नन्वेवमपि धर्मापादकोपाधेरुपाध्यापादितपर्यायस्य चाभेद एव। न हि सत्त्वापादकोपाधेः स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभावित्वतो भिन्नं सत्त्वं किञ्चन कथ्यते, इति, **तन्न** यद्यपि सत्त्वत्वेनापि तदेव स्वरूपमवगाह्यते, स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावभावित्वत्वेनापि तदेव, तथापि द्वयोर्मध्ये कथञ्चिद्भेदस्यैव सत्त्वाद् यदा तदेव स्वरूपं सत्त्वत्वेनावगाह्यते, तदा कथञ्चिद्भिन्नतयैव, स्वद्रव्य क्षेत्रकालभावभावित्व-त्वेन च कथञ्चिद् भिन्नतयैव, एवमेव लक्ष्यलक्षणावच्छेदकावच्छेद्यादिव्यवहारः प्रसिध्यतीति **दिक्**।

अथ प्रकृतं प्रस्तूयते-स्यादिति पदस्य कथञ्चिदित्यर्थो दर्शित एव, तेन परम्परया वस्तुनोऽनेकान्तत्वं द्योत्यते, साक्षात्तु सम्यगेकान्तत्वमेव साध्यते; तथाहि-कथञ्चित्-स्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्ववानेवेत्युक्तौ कथञ्चिदेव स घटोऽस्तित्ववान् न तु सर्वथेति फलतो ज्ञापनेऽनेकान्तता द्योत्यते स्यात्कारेण, अनेकान्तेनैव (अनेकेषु अन्तेषु केनचिदन्तेनैव) भावात्मकास्तित्वमत्रेति तदितरांशस्यापि प्रतिसन्धानात्। तथाहि-यथैकोऽन्तः, एकोऽंशो भावात्मकं सदित्युच्यते, तथा तदितरोऽप्यंशो भवेदेव। इत्यनेकान्तता प्रतिसन्धीयते। तथा कथञ्चित्तु स्वद्रव्याद्यपेक्षया त्वस्तित्ववानेवेत्युक्तौ कथञ्चित्तु स घटोऽस्तित्ववानेव न नास्तित्ववानिति ज्ञापने एवकारार्थमुख्यतायां स्यात्कारेण सम्यगेकान्तता साध्यते, सम्यक्स्वरूपाद्यपेक्षायां घटेस्तित्व-मात्रस्यैकान्तस्यैव वचनात् तदितरांशानवगाहनात्तत्प्रतिक्षेपात्। अतएव **महोपाध्यायै**रुक्तं-स्यात्कारस्य सम्यगेकान्तसाधकत्वं, अनेकान्तावद्योतकत्वं च। अत एव सप्तभङ्गीयप्रत्येकवाक्यानां सम्यगेकान्तरूपत्वान्नयवाक्यत्वमेव। अत एव स्यात्पदानुपरक्तस्य 'घटोऽस्त्येवे' ति वाक्यस्य मिथ्यैकान्तरूपत्वाद्दुर्नयत्वम्। अन्त इति अंशः। एकान्त इति एक एवांशः इतरांशविकल्पाभाव इति यावत्। घटे (निरवच्छिन्ने) अस्तित्वभावेतरांशोऽस्तित्वाभावांशो न विद्यते इति कथने मिथ्यैकान्तत्वाद्दुर्नयत्वम्। किन्तु स्वपर्यायावच्छिन्ने घटे अस्तित्वस्येतरांशो न विद्यते इति कथने न मिथ्यात्वम्, सम्यगेकान्तत्वात्प्रत्युत सुनयत्वम्। तेन च तदितरैर्वस्तुस्वरूपैस्तदभावस्यापि द्योत्यमानत्वादेवं ज्ञाप्यते, यदुत घटेऽस्तित्वमेव विद्यते इति न, अपरविकल्पस्यापि विद्यमानत्वात्। अपरविकल्पस्यापि

અનંત પર્યાયો છે. એ બધાં જ એક જ દ્રવ્યમાં રહ્યાં હોવા છતાં'ય અન્યાન્ય અવચ્છેદકોથી રહ્યા હોય છે. અને તે તેઓની પરસ્પરની ભિન્નતાનું નિયામક છે. આ અવચ્છેદક એ માત્ર તે જ ધર્મનો જનક, દ્યોતક, વ્યંજક કે જ્ઞાપક એવો દ્રવ્યમાં જ રહેલો ધર્મ વિશેષ સમજવો. અને તે ધર્મ વિશેષ સર્વ પર્યાયોનો અલગ અલગ જ હોય છે. માટે જેટલાં પર્યાયો, તેટલા જ અવચ્છેદકો સમજવાં. તે અવચ્છેદક-ઉપાધિને ધર્મવિશેષને 'સ્યાત્' પદથી વાચ્ય કરાય છે. એટલે જે-તે પર્યાયને જણાવવાં તેની સાથે 'આ પર્યાય અમુક નિયત અપેક્ષાએ જ છે.' આવો બોધ કરાવવા માટે 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' એમ કહેવાય...

આમ, એકધર્મની આપાદક ઉપાધિ અને એનાથી આપાદિત ધર્મ આ બન્ને તે દ્રવ્યમાં જ આશ્રિત હોય છે. માટે જ એકાદ પર્યાયનું આપાદન કરવા માટે જે ધર્મ અવચ્છેદક તરીકે વપરાયો હોય, તે ખુદ પણ તે દ્રવ્યમાં કોઇ પ્રતિનિયત અવચ્છેદકની અપેક્ષાથી રહ્યો હોય છે. કોઇપણ વસ્તુનું આવું જ સ્વરૂપ હોવાથી આમાં અનવસ્થા, અન્યોન્યાશ્રય કે ચક્રક વગેરે દોષ રહ્યાં નથી. **ઇતિ સંક્ષેપ.**

શંકા : પર્યાયનો આપાદક અવચ્છેદક રૂપ ધર્મ અને તેનાથી આપાદિત પર્યાય આ બન્ને વચ્ચે અભેદ જ છે. જેમ કે-સદ્વસ્તુનાં ભાવ અંશનો આપાદક ધર્મ છે - સ્વદ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભાવિત્વ. હવે સદ્ વસ્તુનો ભાવ, અથવા ઘટાદિ વસ્તુનું સત્ત્વ એ સ્વદ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભાવિત્વથી ભિન્ન તો નથી જ. માટે આપાદક ઉપાધિ અને આપાદિત પર્યાય બન્ને વચ્ચે અભેદ છે.

સમાધાન : જો કે, એક જ સ્વરૂપ સત્ત્વત્વેન અવગાહિત કરો, અથવા સ્વદ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવિત્વત્વેન અવગાહિત કરો. એ સ્વરૂપમાં કોઇ ભેદ નથી. જે સદ્વસ્તુનું ભાવ સ્વરૂપ છે, તે સ્વદ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભાવિત્વ જ છે. પરંતુ તે ભાવસ્વરૂપને જ્યારે 'સત્' શબ્દ દ્વારા સત્ત્વત્વેન અવગાહિત કરાય, ત્યારે તે કથંચિત્ ભિન્ન રીતે જણાય છે. પણ તેને જ જ્યારે સ્વદ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભાવિત્વેન અવગાહિત કરાય, ત્યારે તે કથંચિત્ ભિન્ન રીતે જણાય છે. આ જ્ઞાનનો ભેદ થવાથી (જ્ઞાનનાં આકારનો ભેદ થવાથી) વિષયનો પણ ભેદ થાય. એમાંથી એક વિષય એ અવચ્છેદ્ય બને, અને બીજો અવચ્છેદક બને. 'સાસ્નાદિમત્ત્વ' એ

विद्यमानत्वान्नैकान्तः विकल्पाभावः किन्तु सविकल्पतेति। अत एव **महोपाध्यायैरुक्तं** स्यात्कारस्यानेकान्तावद्योतकत्वम्।

।। एवकारस्यार्थः ।।

अथैवकारस्य कोऽर्थः? उच्यते → अवधारणं चात्र भङ्गेऽनभिमतार्थव्यावृत्त्यर्थमुपात्तम्। इतरथाऽनभिहिततुल्यतैवास्य वाक्यस्य प्रसज्येत, प्रतिनियतस्वार्थानभिधानात्। तदुक्तम्-

वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये।

कर्तव्यमन्यथाऽनुक्तसमत्वात् तस्य कुत्रचित् ।।१।। ← इति **रत्नाकरावतारिका।**

एवमत्रैवकारोऽनिष्टार्थनिवर्तकः। किमत्रानिष्टमिति चेत्? सर्वथाऽस्तित्वं, सर्वथाऽस्तित्वाभावः, कथञ्चित्स्वरूपादिना नास्तित्वम्, कथञ्चित्स्वरूपादिनाऽस्तित्वाभावः, कथञ्चित्पररूपादिनाऽस्तित्वं कथञ्चित्स्वरूपादिना पटीयास्तित्वम्, इत्यादिकमत्र घटे नापेक्षितम्।

अपेक्षितोऽर्थः स्वरूपादिना घटेऽस्तित्वम्। स चैवकारः स्याद् अयोगव्यवच्छेदकः, स्याद् अन्ययोगव्यवच्छेदकः, स्याद् अत्यन्तायोगव्यवच्छेदकश्च। विशेषणोत्तरस्यैवकारस्यायोगव्यवच्छेदकत्वं, यथा शङ्खः पाण्डुर एव, अत्र विशेष्यो व्याप्यः विशेषणं च व्यापकम्। विशेष्योत्तरस्यैवकारस्यान्ययोगव्यवच्छेदकत्वं, यथाऽर्जुन एव धनुर्धरः, अत्र विशेष्यस्य व्यापकत्वं, विशेषणस्य च व्याप्यत्वम्। क्रियापदोत्तरभाविनस्तु अत्यन्तायोगव्यवच्छेदः फलम्, यथा नीलं कमलं भवत्येव, अत्र विशेष्यविशेषणयोः सामानाधिकरण्यम्।

अत्रैवकारे स्यात्पदाव्यवहितोत्तरे कथञ्चिदेव घटेऽस्तित्वम्, न सर्वथा इत्यर्थो लभ्येत, घटपदोत्तरे स्वरूपादिना घट एवास्तित्वम्, न पटे इत्यर्थो लभ्येत, परन्तु प्रस्तुतभङ्गवाक्ये एवकारस्य अस्तिपदोत्तरप्रयोग एव शास्त्रीयः। तस्य च विशेषणोत्तरत्वादस्तित्वस्याभावांशव्यवच्छेदकत्वादयोगव्यवच्छेदकत्वम्।

લક્ષણ છે. અને 'ગોત્વ' એ લક્ષ્ય (ન્યાયશૈલીથી લક્ષ્યતા અવચ્છેદક) છે. બન્નેમાં આમ તો કોઇ જ ફરક નથી. જે સાસ્નાદિમત્ત્વ છે, તે જ ગોત્વ છે. પરંતુ, ભિન્ન જ્ઞાનોનાં વિષયો તરીકે, ભિન્ન ભિન્ન રીતે તે એક જ સ્વરૂપનું અવગાહન કરાય છે. એમાંથી એક લક્ષ્ય બને છે, એક લક્ષણ બને છે. અથવા, લક્ષ્ય દ્વારા તે સ્વરૂપનો સામાન્યથી બોધ થાય છે. લક્ષણ દ્વારા તે જ સ્વરૂપનો વિશેષથી બોધ થાય છે. આ રીતે કોઇક ભેદક સમજવું. **ઈતિ દિક્.**

અથ પ્રકૃતં પ્રસ્તૂયતે – 'સ્યાત્' પદનો અર્થ તો ધર્માપાદક-અવચ્છેદક-ઉપાધિ જ થાય છે, તે જણાયું. તેના દ્વારા સમ્યગ્ એકાન્ત સિદ્ધ થાય છે. અને પરંપરાએ તેનાં દ્વારા વસ્તુગત અનેકાન્તતાનું દ્યોતન થાય છે.

તથા હિ–સ્યાત્–કથંચિત્–કોઇક અપેક્ષાએ સ્વદ્રવ્યાદિવત્ત્વ રૂપ ઉપાધિની અપેક્ષાએ તેમાં ભાવાત્મકતા જ છે. આવો અર્થ થવાથી તે ઉપાધિની અપેક્ષાએ તો તે ઘટાદિમાં સત્ત્વનો ભાવ જ માત્ર અવગાહિત થાય. પરંતુ, તેનાથી અન્ય સ્વરૂપનું અવગાહન ન જ થાય. માટે તેમાં સમ્યગ્ રીતે, સાપેક્ષ રીતે, અપેક્ષાપૂર્વક એક અન્તનું ગ્રહણ થાય છે, તેથી સમ્યગ્ એકાન્તની સિદ્ધિ થઇ કહેવાય.

તથા કોઇક અપેક્ષાએ એ ભાવમય જ છે. આવું કહેતાં અર્થાપત્તિથી એવો પણ બોધ થાય કે કોઇક અપેક્ષાએ તો ભાવમય ન પણ હોય, અભાવમય પણ હોય. આ રીતે તેમાં એક અંશ જ છે, એવું નથી. બીજાં અંશો પણ છે. આમ દ્યોતન થવાથી અનેકાન્તનું દ્યોતન થાય છે.

આથી જ **મહોપાધ્યાયજી** એ સ્યાત્કારને કથંચિદ્અર્થક, સમ્યગેકાન્ત સાધક અને અનેકાન્તાવદ્યોતક કહ્યો છે. આથી જ સપ્તભંગીના પ્રત્યેક વાક્યો સમ્યગેકાન્તરૂપ હોવાથી નયવાક્ય રૂપ જ છે. આથી જ 'સ્યાત્' પદ વગરનાં 'ઘટોઽસ્તિ એવ' વગેરે વાક્યો એ મિથ્યા એકાન્તરૂપ હોવાથી દુર્નય છે. અન્ત એટલે અંશ. એકાન્ત એટલે ઇતર અંશ રૂપ વિકલ્પનો અભાવ, એક જ અન્ત. નિરવચ્છિન્ન ઘટમાં અસ્તિત્વનાં ભાવથી અન્ય અંશ અથવા અસ્તિત્વાભાવ રૂપ અંશ નથી. આવું કહેતાં તે મિથ્યા એકાન્તરૂપ હોવાથી દુર્નય વાક્ય. પરંતુ, સ્વપર્યાયાવચ્છિન્ન ઘટમાં અસ્તિત્વનાં ભાવથી અન્ય અંશ વિદ્યમાન નથી. આવું

स्याद्घटत्वस्य व्याप्यत्वम्, अस्तित्वस्य च व्यापकत्वम्। यत्र यत्र स्याद्घटत्वं, तत्र तत्रास्तित्वमित्युक्तेः सम्भवत्वेऽपि यत्र यत्रास्तित्वं, तत्र तत्र स्याद्घटत्वमित्युक्त्यसम्भवात्। अस्तित्वस्य पटे सत्त्वेऽपि तत्र स्याद्घटत्वस्यासम्भवात्। एतदपि स्थौल्येन, वस्तुतः सद्वस्तुनि स्वपर्यायात्मकताया व्याप्यत्वं, भावात्मकताया व्यापकत्वमिति बोधः।

इत एव महत्सुगभीरार्थं 'स्यादस्त्येवे'ति वाक्यम्। तच्च सम्यगेकान्तेनैव वस्तुनः प्रतिपादकं, अत एवैवमुच्यते यदुतानेकान्तेऽप्यनेकान्तः। अत एवाहुर्**महातार्किकाः 'भयणा वि हु भइयव्वा'**–इति। जिनप्रवचने यदि सर्वत्रैवानेकान्त उपयुज्यते, तर्हि अनेकान्तस्य प्रयोगेऽप्यनेकान्त एव, सामान्यतोऽनेकान्तः प्रयुज्यते, कुत्रचन तु सम्यगेकान्तस्यापि प्रवृत्तिर्भवति दृष्टचरा च। एतच्चाग्रे स्फुटीकरिष्यते। नैतत्स्वभ्यस्त**सम्मत्य–ऽनेकान्तजयपताका–स्याद्वादकल्पलता**प्रभृतितर्कग्रन्थपदार्थसार्थानां गीतार्थकोविदानामज्ञातम्। तदिदं रहस्यमजानानाः स्वरचितग्रन्थेषु "जाल्मेन गुम्फितोऽयं स्याद्वादः न सम्यग्ज्ञायते" इत्येवमर्दवितर्दवितण्डाप्रलापं कुर्वाणास्तेऽहो देवानांप्रियाः करुणास्पदाः, अधीतशास्त्रत्वेऽपि स्याद्वादरहस्याप्राप्तेरिति कृतं पल्लवितेन ॥७॥

अव. अथ द्वितीयं भङ्गं स्पष्टयति–

अभावाश्रयणादस्ति–वस्तु स्यान्नैव गीरिति।
निषेधकल्पनाद् भङ्गो, द्वितीयोऽयमुदाहृतः ॥८॥

॥ द्वितीयभङ्गविवेचना ॥

टीका – 'स्यादस्तित्वाभाववानेवे'ति "स्यान्न सदेवे"तिरूपो वा द्वितीयो भङ्गः। पटत्ववद्घटग्राहिणाऽऽहार्यात्मकनयेन पटत्वस्य घटे विकल्पं कृत्वा 'घटो नास्ती'ति साध्यते। यथा घटः स्यान्नित्य एव, स्यादनित्य एवेत्यादौ नित्यत्वानित्यत्वे घटे द्रव्य–पर्यायालम्बनतया भवतः। घटो द्रव्यत्ववानपि पर्यायत्ववानपि च, द्रव्यत्ववान्घटो नित्यत्ववान्, पर्यायत्ववान्घटो नित्यत्वाभाववानिति च

કહેતાં કાંઇ ખોટું નથી પણ સમ્યગ્ એકાન્તરૂપ હોવાથી આ તો સુનય જ છે.

॥ 'એવ' કારનો અર્થ ॥

હવે, 'એવ' કારનો અર્થ શું થાય? તો **રત્નાકરાવતારિકા**નાં વચન પ્રામાણ્યથી એવકાર એ અનિષ્ટઅર્થવ્યાવર્તક છે એમ સમજાય છે.

શંકા : પ્રસ્તુતમાં શું અનિષ્ટ છે?

સમાધાન : સર્વથા અસ્તિત્વ, (અહીં પ્રજ્ઞાપના-સૌકર્ય પ્રયોજનથી જો વિશેષ્ય તરીકે ઘટ લો, તો સર્વથા અસ્તિત્વ વગેરે... અને વિશેષ્ય તરીકે 'સત્' વસ્તુ લો, તો સર્વથા ભાવાત્મકતા વગેરે સમજવાં જોઇએ. ઇતિ સર્વત્ર વિવેક કરવો). સર્વથા અસ્તિત્વનો અભાવ, સ્યાત્ સ્વરૂપાદિથી નાસ્તિત્વ, સ્યાત્ પરરૂપાદિથી અસ્તિત્વ, સ્યાત્ સ્વરૂપાદિથી પટીય અસ્તિત્વ... ઇત્યાદિ અમને અનિષ્ટ છે. ઇષ્ટ અર્થ છે - સ્વરૂપાવચ્છિન્ન ઘટીય અસ્તિત્વ.

'એવ'કાર ત્રણ પ્રકારે છે.

૧) **અયોગ વ્યવચ્છેદક :** જે 'એવ'કાર વિશેષણ પછી મૂકાયો હોય, તે. જેમ કે 'શંખ સફેદ જ છે'. અહીં, વિશેષણ એ વ્યાપક છે. અને વિશેષ્ય (ન્યાયશૈલીથી વિશેષ્યતા અવચ્છેદક) એ વ્યાપ્ય છે.

૨) **અન્યયોગ વ્યવચ્છેદક :** જે વિશેષ્ય પછી મૂકાયો હોય તે. જેમ કે 'અર્જુન જ ધનુર્ધર છે.' અહીં વિશેષણ વ્યાપ્ય છે અને વિશેષ્ય એ વ્યાપક છે.

૩) **અત્યન્તાયોગ વ્યવચ્છેદક :** જે ક્રિયાપદ પછી મૂકાયો હોય તે. જેમ કે "કમલ લીલું હોય છે જ" અહીં વિશેષણ-વિશેષ્ય વચ્ચે માત્ર સામાનાધિકરણ્ય જ છે.

અહીં, જો 'એવ'કાર 'સ્યાત્'પદ પછી રખાયો હોત, તો ઘટમાં કથંચિદ્ જ સત્ત્વ છે, સર્વથા નહીં. આવો બોધ થાત. અને સર્વથા અસ્તિત્વનો વ્યવચ્છેદ થાત. 'સ્યાદ્ ઘટ એવ અસ્તિ' આવો પ્રયોગ હોત, તો કથંચિદ્ (ઘટના) સ્વરૂપાદિથી અસ્તિત્વવાળો ઘટ જ છે, પટ નથી, આવો બોધ થાત. ઇત્યાદિ અન્ય પણ વિચારણા કરવી. પરંતુ, પ્રસ્તુતમાં પ્રત્યેક ભંગમાં 'એવ' કારનો પ્રયોગ 'અસ્તિ' પદ પછી જ કરવો શાસ્ત્રીય છે. 'અસ્તિ' પદ એ ક્રિયાવાચક પદ

तयोर्वाक्ययोरर्थः । तथा स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेत्यादावपि अस्तित्वनास्तित्वे घटे घटत्वपटत्वालम्बनतया भवतः घटो घटत्ववानपि पटत्ववानपि च, घटत्ववान्घटोऽस्तित्ववान्, पटत्ववान् घटोऽस्तित्वाभाववान् एवं तयोर्वाक्य-योरर्थसङ्क्षेपः।

न च पटत्वस्य घटे विद्यमानता नैवोपलभ्यते, ततः 'स्याद् घटो नास्त्येव' इति वचनमसिद्धं पटत्ववद्घटस्यानुपलब्धेरिति **वाच्यम्**, अन्यथा 'खपुष्पं नास्ती'-ति वचनस्याप्यसिद्धताऽऽपत्तेः। यथाऽऽकाशोत्पन्नं पुष्पं नोपलभ्यते, किन्तु विकल्प्यते, विकल्पसाधितस्य च प्रतिषेधः क्रियते, तथा पटत्ववद्घटो मोपलभ्यतां, विकल्पेन तु सिद्ध एव, विकल्पसाधितेन च तेन अस्तित्वस्याभावात्मकता साध्यते। इत्यत एव तत्र घटे सद्भूतं व्यवहारविषयीभूतं वा पटत्वं न वर्तते, वैकल्पिकं तु भवत्येवेत्यतो जिज्ञासुर्यदि पृच्छेत् प्रज्ञापकं 'घटः पटत्ववान्न वा?' तत्रापि सप्तभङ्गी सम्पनीपद्यते इति **दिक्**।

एतेन समानाधिकरणधर्मस्यैवावच्छेदकत्वं न व्यधिकरणस्येति नैयायिकमतं **व्युदस्तम्**, 'स्यान्नास्ति घट' इति वाक्यस्य पटत्वावच्छिन्नघटानुयोगिकास्तित्व-स्याभाव इत्यर्थकत्वे पटनिष्ठस्य व्यधिकरणस्यापि पटत्वधर्मस्य घटनिष्ठा-स्तित्वावच्छेदकत्वादिति । भवति हि तेषामपि शुक्तौ रजतत्वभ्रमदशायां रजतत्वप्रकारकशुक्तिविशेष्यकबोधे सति शुक्तिविशेष्यतायां व्यधिकरणस्यापि रजतत्वस्यावच्छेदकत्वमिति। यथा भ्रमज्ञाने तथा वैकल्पिकाहार्यादिज्ञानेष्वपि भवति व्यधिकरणधर्मस्यावच्छेदकतेति व्यधिकरणधर्मस्यापि सर्वथा वैयधिकरण्याभाव एवेति **दिक्** ।।८।।

अव. अथ तृतीयभङ्गनिरूपणमाह-

तथा स्यादस्तिनास्त्येवे-त्येवं वचनपद्धतिः ।
विधिनिषेधसंयोगी, भङ्गो जातस्तृतीयकः ।।९।।

टीका – तृतीयो भङ्ग आद्यद्वयसंयोजनया संजातः। 'स्यादस्तिनास्ति चैव' इति तस्य आकारः।

નથી. પરંતુ, ક્રિયાપદને સમાન લાગતું અવ્યય પદ છે. તેને વિશેષણ તરીકે વાપર્યું છે. તેનો અર્થ અસ્તિત્વ, અસ્તિત્વ પર્યાયનો ભાવાંશ, કે સદ્ વસ્તુનો ભાવાંશ આવો (નય વિશેષથી) લેવાનો છે. એનો અન્વય યથાર્હ ઘટમાં, ઘટીય અસ્તિત્વ પર્યાયમાં, કે સદ્ વસ્તુમાં કરવો. આમ, વિશેષણોત્તર વપરાયો હોવાથી પ્રસ્તુતમાં એવકાર અયોગ વ્યવચ્છેદક સમજવો. તે નાસ્તિત્વ, નાસ્તિત્વનાં અભાવાંશ કે સદ્ વસ્તુના અભાવાંશનો વ્યવચ્છેદ કરે છે. જ્યાં જ્યાં સ્વરૂપાવચ્છિન્ન ઘટત્વ છે. ત્યાં ત્યાં અસ્તિત્વ છે, આવું કહી શકાય છે, પણ જ્યાં જ્યાં અસ્તિત્વ છે. ત્યાં ત્યાં સ્વરૂપાવચ્છિન્ન ઘટત્વ છે. આવું કહી શકાતું નથી. માટે અહીં સ્યાદ્ ઘટત્વ રૂપ વિશેષ્ય (કે વિશેષ્યતા અવચ્છેદક) એ વ્યાપ્ય છે. અને અસ્તિત્વરૂપ વિશેષણ એ વ્યાપક છે. આથી આમાં અયોગ્યવચ્છેદકત્વની વ્યાખ્યા ઘટે છે.

આમ, આ એક વાક્ય પણ અતિશય અર્થ ગંભીર છે. એકાન્તાનેકાન્તમય વસ્તુનું બોધક છે. આથી જ આના દ્વારા અનેકાન્તમાં પણ અનેકાન્ત છે, આવું સિદ્ધ થાય છે, જે આગળ સ્પષ્ટ કરાશે.

આવો આનો ખરો ભાવ ન જાણનારાં અને પોતે રચેલાં ગ્રંથોમાં ''આ સ્યાદ્વાદ તો કોઇ ઠગ-પુરુષે બતાવ્યો છે, જે બરાબર જણાતો નથી'' આવું કહેનારા **આદ્યશંકરાચાર્ય** વગેરે ખરેખર શાસ્ત્રો ભણવા છતાંય સ્યાદ્વાદના રહસ્યને નથી પામી શક્યા, તેથી કરૂણાસ્પદ કહેવાય.. **વધુ લખવાથી સર્યું.** ।।૭।।

અવ. હવે બીજા ભંગને કહે છે –

અભાવનયના આશ્રયે, 'સ્યાન્નાસ્તિ' એ વાક્ય;
નિષેધનાં પ્રાધાન્યથી, બીજો ભંગ કહેવાય ।।૮।।

।। દ્વિતીય ભંગનું વિવેચન ।।

વાર્તિક : પ્રસ્તુત વસ્તુમાં કોઇક ઉપાધિને આશ્રયીને જ સત્ત્વ છે અને અન્ય ઉપાધિને આશ્રયીને અસત્ત્વ પણ છે જ. 'સ્યાન્નાસ્તિ એવ' આ ભંગ દ્વારા ઘટમાં પટરૂપને આશ્રયીને અસત્ત્વ રહ્યું છે આવું જણાય છે. એ માટે પહેલા પટના રૂપને ઘટમાં રાખવું જોઇએ. જે આહાર્યજ્ઞાનથી રહે છે. આથી ઘટ સ્વપર્યાય-

।। तृतीयस्याद्यद्वयातिरिक्ततासाधनम् ।।

न चाद्यद्वयभङ्गाभ्यामस्यानतिरिक्ततेति वाच्यम्, प्रथमे विधिमुख्यविषयताको बोधः फलम्, द्वितीये निषेधमुख्यविषयताकः, तृतीये चोभयमुख्यविषयताको बोध एव फलमिति ध्येयम्। भवति हि पात्रजलप्रत्येकावगाहिज्ञानाभ्यां पात्रजलोभयावगाहि समूहालम्बनं ज्ञानं कथञ्चिदतिरिक्तमेव। तृषार्ततृषाऽपनोदनं न केवलपात्रज्ञानेन केवलजलज्ञानेन वा भवति, किन्तु पात्रजलोभयावगाहिना ज्ञानेन । तस्यैव जलपानप्रवर्तकत्वात्।

।। तृतीयस्य तुर्यातिरिक्ततासाधनम् ।।

ननु तथाऽपि चतुर्थभङ्गात्तृतीयस्यानतिरिक्ततैव। चतुर्थेऽपि अस्तित्वनास्तित्व-योरुभयोरवगाहनं, तृतीयेऽपि। इति **चेत्, न,** तृतीये भङ्गे क्रमादुभयमुख्यविषयताको बोधः, चतुर्थे च युगपदेवेत्यस्ति विवेकः।।

।। तृतीयभङ्गजज्ञानाकारान्वीक्षा ।।

अथ तृतीयेन भङ्गेन क्रमादुभयमुख्यविषयताको बोधो जायते, इति **प्रमाणनयतत्त्वालोक**कथने 'क्रमात्' पदं निरर्थकमेव। अर्थस्य विशिष्टस्यैकत्वादेव, क्रमाभावात्, सति क्रमे च आद्यद्वयभङ्गजज्ञानानतिरेकापत्तेः।

उच्यते, अत्रापि द्वयमेवावगाहनीयं, चतुर्थेनापि द्वयमेव, परन्तु अत्र क्रमादुभयं, चतुर्थेन च युगपदुभयम्, इत्यतश्चतुर्थादस्य भेदप्रदर्शनाय 'क्रमात्' पदमुपात्तम्। तदाह **नयोपदेशे श्रीमान्** → अस्तु वा 'क्रमाद्' इति वचनं ज्ञानाकार-विशेषोपलक्षकमेव। ← इति।

तृतीयभङ्गजज्ञानस्य समूहालम्बनात्मकत्वादेकानेकात्मकत्वमेव। नात्राद्यद्वय-भङ्गज्ञानवत्सर्वथा स्पष्टाऽनेकविषयावगाहकता, एकत्वात्। न च चतुर्थ-भङ्गजज्ञानवत्स्पष्टैकावगाहिता, अनेकविषयत्वात् इत्यत एव तद्विलक्षणम्, तद्वैलक्षण्यद्योतनायैव च 'क्रमात्' पदमुपात्तम्, इत्यतः तद्विषये या कथञ्चिदनेकात्मकता

વાળો પણ છે અને પરપર્યાયવાળો પણ છે જ. આમ, સ્વ-પરપર્યાયાત્મકત્વ એ એનું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ છે. તેમાંથી, સ્વપર્યાયને આશ્રયીને સત્ત્વ અને પરપર્યાયને આશ્રયીને અસત્ત્વ રહે છે આવું સંક્ષેપમાં સમજવું.

શંકા : પટત્વ ઘટમાં રહી જ ન શકે ને?

સમાધાન : જેમ 'ખપુષ્પ' જેવો પદાર્થ ક્યાંય મળતો નથી=ઉપલબ્ધ નથી. કિન્તુ, તેનો વિકલ્પ કરાય છે = આહાર્યજ્ઞાન કરાય છે. અને વિકલ્પથી સિદ્ધ થયેલા તે પદાર્થના પછી પ્રતિષેધાદિ કરાય છે. 'ખપુષ્પ નથી' આવું કહેવા માટે પણ પહેલાં તો ખપુષ્પનો બોધ કરવો જ પડે. એટલે એને જાણી તો શકાય જ છે. તેમ પટરૂપવાળો ઘટ ભલે મળતો ન હોય, પરંતુ તેનો વિકલ્પ કરી શકાય છે અને વિકલ્પ સાધિત એવાં તેનાં દ્વારા અસ્તિત્વનો અભાવાંશ સિદ્ધ કરાય છે. આથી, ઘટમાં પટત્વ છે પણ ખરું, અને નથી પણ.. **ઈતિ દિક્.**

આમ, સમાનાધિકરણ ધર્મ એજ અવચ્છેદક બની શકે, વ્યધિકરણ ધર્મ નહીં. આવો નૈયાયિકનો મત વ્યુદસ્ત થયો સમજવો. કેમ કે, ઘટમાં અસત્ત્વના અવચ્છેદક તરીકે પટત્વ રૂપ વ્યધિકરણ ધર્મ જ બને છે. જેમ કે શુક્તિમાં "રજતમ્" આ ભ્રમાત્મક જ્ઞાનમાં શુક્તિ વિશેષ્યતામાં અવચ્છેદક તરીકે રજતત્વનો બોધ થાય જ છે. શુક્તિમાં પ્રકાર તરીકે ભાસતો ધર્મ-શુક્તિનિષ્ઠ-વિશેષ્યતાનો અવચ્છેદક બને છે. પ્રસ્તુતમાં રજતત્વેન શુક્તિનો બોધ થયો છે. માટે પ્રકાર તરીકે રજતત્વ છે. જે વ્યધિકરણ ધર્મ જ છે. જેમ ભ્રમજ્ઞાનમાં, તેમ વૈકલ્પિક-આહાર્ય-વગેરે જ્ઞાનોમાં પણ વ્યધિકરણ ધર્મ અવચ્છેદક બની શકે. એટલે એ રીતે તો વ્યધિકરણ ધર્મ (પદાર્થમાં ન રહેનારો ધર્મ) પણ હંમેશા વ્યધિકરણ જ હોય છે એવું નથી. કથંચિત્ તો તે પણ સમાનાધિકરણ જ હોઈ જ શકે છે. **ઈતિ દિક્.** ।।૮।।

અવ. હવે ત્રીજા ભંગનું નિરૂપણ પ્રારંભે છે.

સ્યાદસ્તિ સ્યાન્નાસ્તિ એ, વાક્યપ્રયોગે જાણ;
વિધિનિષેધ સંયોગથી, તૃતીય ભંગ સુજાણ ।।૯ ।।

વાર્તિક. ત્રીજો ભંગ એ પ્રથમનાં બે ભાંગાનાં સંયોગથી બને છે. 'સ્યાદ્

सा 'क्रमात्' पदेन कीर्त्यते इति तात्पर्यम् ।।९।।

अव. अथ चतुर्थभङ्गमाह-

स्यादवक्तव्यमेवैत-दितिवाग्रचनां जगुः ।
द्व्यन्योन्यानुप्रवेशेन, भङ्गं तुरीयमार्हताः ।।१०।।

टीका – समूहालम्बनतयोभयमुख्यविषयताको बोधस्तृतीयभङ्गस्य फलम्, युगपदुभयमुख्यतायामवगाह्यमानायामवक्तव्यत्वमुख्यविषयताको बोधश्चतुर्थभङ्गस्य फलमिति ।

।। अथ अवक्तव्यपदस्यार्थसमीक्षात्मको दीर्घः प्रमेयः ।।

अथात्रावक्तव्यपदस्य कोऽर्थः? आह- प्रचलितशक्तिस्वीकारेऽवक्तव्यपदस्य वदितुमयोग्यमिति ह्यर्थः। शक्तिविशेषस्वीकारे च तस्य युगपदस्तित्वनास्तित्व-मित्येतदर्थकत्वम्। एतदर्थः किञ्चिद्विस्तरेणोच्यते...

।। छाद्मस्थिकज्ञानस्य युगपदनेकार्थप्रत्यक्षेऽसामर्थ्यम् ।।

छाद्मस्थिकं ज्ञानं न कदाचनापि युगपदनेकधर्ममवगाहमानमुपपद्यते, युगपदनेक-धर्मावगाहस्य केवलज्ञानेन विनाऽसम्भवात्। यच्च छाद्मस्थिकं प्रमाणज्ञानं अनन्तधर्ममात्रावगाहकमुपपद्यते, तदपि न प्रातिस्विकतयाऽनन्तधर्मानवगाहते, किन्तु सामान्यतया द्रव्यार्थादेशेनैवाऽवगाहते, प्रातिस्विकतया वा न प्रत्यक्षेण, किन्तु विकल्पेनैवावगाहते । एवं सिद्धमिदं यदुत छाद्मस्थिकं प्रत्यक्षज्ञानं विशेषतया युगपदनेकधर्मावगाहनेऽसमर्थमेव । अत एव 'स्याद् अवक्तव्यमेवे'त्येवं चतुर्थभङ्गस्यार्थो न प्रत्यक्षज्ञानेन ज्ञायते, वैकल्पिकज्ञानेन शाब्दबोधेन वा ज्ञायते। तर्केणावगाह्यते वा इति यावत्।

एवं प्रत्यक्षज्ञानाविषयीभूतस्तदा स अर्थः "अवक्तव्य" एव । यतो ह्यवक्तव्यत्वमिति वदितुमयोग्यत्वम्। किमर्थं? यतस्तत्र युगपदनेकधर्मावगाहनं क्रियते, ततो यः अर्थ एव न ज्ञातुं शक्यते, तत्र शब्दस्यापि शक्तिर्न भवति, सत्यां शक्तौ

અસ્તિ એવ સ્યાન્નાસ્તિ એવ' એવો તેનો આકાર છે. જે ભાવ-અભાવ ઉભયગ્રાહીનયની વક્તવ્યતા છે. આ રીતે આગળ ઉપર પણ યથાયોગ્ય સમજી લેવું.

।। ત્રીજો ભાંગો પ્રથમ-દ્વિતીયથી ભિન્ન છે ।।

શંકા : ત્રીજો ભાંગો પહેલા અને બીજા રૂપ તો છે. નવું શું છે?

સમાધાન : પરિણામે થતાં બોધમાં ફરક છે. પ્રથમ ભાંગાથી માત્ર ભાવાંશનો બોધ થાય છે, બીજાથી માત્ર અભાવાંશનો જ બોધ થાય છે. ત્રીજાથી ઉભયનો બોધ થાય છે. પ્રત્યેક વિષયક જ્ઞાનદ્વય કરતાં ઉભયવિષયક એક જ્ઞાન કથંચિત્ અતિરિક્ત છે. માત્ર પાણીનું જ્ઞાન થાય, અને માત્ર પ્યાલાનું જ્ઞાન થાય, તો પણ તૃષાર્તને જલપાનમાં પ્રવૃત્તિ થતી નથી. કિન્તુ, બન્નેનું ભેગું જ્ઞાન થાય ત્યારે જ પ્રવૃત્તિ થાય છે. માટે ઉભયવિષયક જ્ઞાન કથંચિત્ ભિન્ન છે.

।। ત્રીજો ભાંગો ચોથા ભાંગા કરતાં અલગ છે ।।

શંકા : ત્રીજો ભાંગો ચોથા ભાંગાથી તો અલગ નથી જ. કારણ કે બન્ને ભાંગામાં અસ્તિત્વ-નાસ્તિત્વ એ બેનું જ અવગાહન કરવાનું છે.

સમાધાન : ભલે બન્નેમાં ઉભયનું જ અવગાહન થાય, પણ તૃતીય ભાંગામાં 'ક્રમાત્' અવગાહન થાય છે અને ચતુર્થમાં 'યુગપત્.' માટે બન્નેનાં આકાર અલગ અલગ જ છે.

।। ત્રીજા ભાંગાથી જન્ય જ્ઞાનનાં આકારની વિચારણા ।।

શંકા : 'પ્રમાણનયતત્ત્વાલોક'માં કહ્યું છે કે ત્રીજા ભાંગાથી 'ક્રમાત્' ઉભયનો બોધ થાય છે. ત્યાં 'ક્રમાત્' પદને લખવાનો કોઇ અર્થ જ નથી. માત્ર એટલું લખો કે 'ઉભયનો બોધ છે' તો ચાલે. ક્રમાત્ પદ લખવા દ્વારા તો ઉલટાનું આદ્યદ્વય ભંગથી અતિરિક્તતા જ ન રહે. કારણ કે એ બન્નેમાં'ય ઉભયનું ક્રમથી જ જ્ઞાન છે...

સમાધાન : ત્રીજા ભાંગાથી પણ ઉભયનો બોધ થાય છે. અને ચોથા ભાંગાથી પણ. કિન્તુ, ત્રીજા દ્વારા ક્રમાત્ અને ચોથા દ્વારા યુગપત્ ઉભયનો બોધ થાય છે. આમ, ચોથા કરતાં આ ભાંગાથી જણાતાં વિષયમાં કાંઇક અતિરિક્તતા

अर्थज्ञानापत्तेः। इति न तत्र कोऽपि शब्दः प्रयुज्यते, ततः शब्दमात्रावक्तव्यत्वात्तस्य पदार्थस्याऽवक्तव्यत्वमेवोचितम्।

ननु–कश्चिदर्थः प्रात्यक्षिकज्ञानेन मा ज्ञायतामपि, वैकल्पिकेन तु ज्ञायत एव, न च तत्र शब्दप्रयोगो नैव भवति। 'खपुष्प'मिति शब्देन 'आकाशाधारकं पुष्प'-मित्यर्थो ज्ञायते। परन्तु न आकाशकुसुमं प्रत्यक्षज्ञानविषयम्। तथैव क्षणिकमिति नित्यमितीत्यादिभिः शब्दैः क्षणिकत्व-नित्यत्वादयः पर्याया वस्त्वंशा ज्ञायन्त एव, परन्तु न ते प्रत्यक्षज्ञानगोचरीभूताः, इति विकल्पसिद्धेऽपि भावे शब्दप्रवृत्तिर्भवत्येव। **इति चेत्?** तर्ह्यत्रापि 'अवक्तव्य'पदस्य युगपद्विधिनिषेधात्मनाऽस्तित्वनास्तित्वोभयवान् इत्यत्रार्थे शक्तिविशेष एव स्यात्। विचारज्ञानविषयीभूतेऽर्थे युगपदुभयरूपे तत्रावक्तव्यपदं प्रयुज्यते इति भावः। वैकल्पिकस्याप्यर्थस्य कस्यचन शब्दाभिलापयोग्यत्वसत्त्वात्।

अत्राव्युत्पन्नदशायाम् 'अवक्तव्य'पदस्य प्रचलितशक्तिना अनभिलाप्य इत्यर्थो ज्ञायते। तत्र कारणगवेषणायां च युगपद्विधिनिषेधात्मकत्वं परिज्ञायते, इत्येवं परम्परया युगपद्विधिनिषेधात्मकत्वं ज्ञायते। व्युत्पन्नदशायान्तु 'अवक्तव्य'पदश्रवणमात्रैणैव सोऽर्थः साक्षादेव ज्ञायते, अत आह **नयोपदेशे श्रीमान् "तादृशो बोधोऽवक्तव्यपदस्य खण्डशः शक्त्या कारितो विशेषशक्त्या वेत्यन्यदेतत्"** इति।[1]

अत्रेदमवधेयम्–नयोपदेशे श्रीमद्भिः प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारमतमनुरुध्य युगपद्विधिनिषेधात्मकस्यार्थस्य अवक्तव्यपदवाच्यत्वमुक्तम्। अनेकान्तव्यवस्थायामष्टसहस्रीतात्पर्यविवरणादौ तु सम्मतितर्कवृत्तिमतमनुसृत्य तादृगर्थस्य शब्दमात्रावाच्यत्वमेवोक्तम्-**तुलना**

किन्तु कथञ्चिदवक्तव्यत्वमिह 'एकपदजन्यप्रातिस्विकधर्मद्वयावच्छिन्नविषयकशाब्दबोधाविषयत्वम्' तद्बोधनं त्वर्थनये मानसोत्प्रेक्षोपस्थितखण्डशःप्रसिद्धपदार्थासंसर्गाग्रहमात्रात्कथञ्चित्संसर्गग्रहाद्वा सम्भवति, व्यञ्जननये तु तन्न सम्भवति, पदार्थमर्यादया वाक्यार्थमर्यादया वा बोधयितुमशक्यत्वात्। न च स्यात्पदसमभिव्याहृतावक्तव्यपदात्प्रकृते खण्डशः शक्त्या बोधः सम्भवति, एकपदार्थयोः परस्परमन्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वात्, अन्यथा हरिपदादुपस्थितयोः सिंहकृष्णयोराधाराधेयभावसम्बन्धेनान्वयबोधप्रसङ्गादितिसूक्ष्मेक्षिकामनुसरता व्यञ्जननयेन प्रकृते नञ्व्यत्यासादेकपदाजनितप्रातिस्विक धर्मद्वयावच्छिन्नविषयकशाब्दबोधविषयत्वं स्यादवक्तव्यत्वं वाच्यं,

– अनेकान्त व्यवस्था प्रकरणम्

બતાવવા માટે 'ક્રમાત્' શબ્દ લખ્યો છે. આથી જ **નયોપદેશ**માં લખ્યું છે કે 'ક્રમાત્' પદથી જ્ઞાનાકાર વિશેષની લક્ષણા કરવાની છે.

આ વાત આમ સમજવી–ત્રીજા ભાંગાથી થતું જ્ઞાન સમૂહાલંબન રૂપ હોવાથી એકાનેકાત્મક છે. પ્રથમ ભંગદ્વયની જેમ બે છૂટાં છૂટાં જ્ઞાન દ્વારા બે વિષયો ન જણાવાથી આ એક જ જ્ઞાન છે. અને ચતુર્થ ભંગની જેમ એક જ જ્ઞાનમાં એકાત્મક રીતે બે વિષયો ન જણાવાથી તે અનેકાત્મક પણ છે. આમ, તૃતીય-ભંગજન્યજ્ઞાન એ એકાનેકાત્મક સિદ્ધ થયું. આવું વૈશિષ્ટ્ય જે એમાં છે તેને દર્શાવવા માટે જ 'ક્રમાત્' એવું પદ લખ્યું છે. આવું તાત્પર્ય સમજવું. 'ક્રમ' પદનો યથાશ્રુતાર્થ ન લેવો. પ્રસ્તુત પારિભાષિક અર્થ લેવો. ।।૯।।

અવ. હવે ચતુર્થ ભંગને કહે છે.

સ્યાદ્ અવક્તવ્ય એવ એ, વચન રચન કહી એમ;
બે'યનાં સંમિશ્રણ થકી, ચોથા ભંગની નેમ ।।૧૦।।

વાર્તિક. સમૂહાલંબન જ્ઞાનાકારથી ઉભયનો બોધ થાય, તે ત્રીજા ભંગનું ફળ છે. યુગપદ્ ઉભયનો બોધ થાય, એ ચોથા ભંગનું ફળ સમજવું.

।। અવક્તવ્ય પદાર્થની વિચારણા રૂપ દીર્ઘ નિબંધ ।।

શંકા : 'અવક્તવ્ય' પદનો અર્થ શું?

સમાધાન : આ બાબતે બે વિચારણાઓ પ્રવર્તે છે. **શ્રી સમ્મતિતર્ક વૃત્તિકાર** ઇત્યાદિનાં મતે તેનો અર્થ 'ન બોલી શકાય' એવો કરવાનો છે અને **પ્રમાણનય તત્ત્વાલોક** ઇત્યાદિને આધારે તે પદનો અર્થ 'યુગપદ્ ઉભયાત્મક વસ્તુ' એવો કરવાનો છે.

શંકા : મહોપાધ્યાયજીનું શું મંતવ્ય છે?

સમાધાન : સન્મતિતર્કનાં વૃત્તિકારના મતને અનુસરીને મહોપાધ્યાયજી **અનેકાન્ત વ્યવસ્થા, અષ્ટસહસ્રી તાત્પર્ય વિવરણ** ઇત્યાદિમાં અવક્તવ્ય શબ્દનો અર્થ અવાચ્ય જ થાય, આવી વ્યાખ્યા કરે છે અને વાદીદેવ સૂ.મ.નાં મતને અનુસારે **નયોપદેશ** આદિમાં અવક્તવ્ય પદનો અર્થ ખંડશઃ શક્તિથી કે શક્તિ વિશેષથી 'યુગપત્ ઉભયાત્મક' એવો થાય એમ માને છે.

।। वैकल्पिकार्थस्योपलब्धौ भजना ।।

न च–विचारज्ञानविषयीभूत्वादस्यार्थस्य खपुष्पवदसिद्धता। विकल्पज्ञान-सिद्धत्वमिति प्रत्यक्षज्ञानाऽसिद्धत्वमेव, न सर्वथाऽसिद्धत्वमिति। विकल्पज्ञानमात्रसिद्धोऽर्थः कश्चिदनुपलब्ध एव, कश्चिदुपलब्ध एवेत्यन्यदेतत्। विकल्पज्ञानसिद्धः 'खपुष्प'मित्यर्थो नोपलभ्यते, अतस्स आहार्यज्ञानविषयः। परन्तु 'अवक्तव्य'पदार्थस्तूपलभ्यत एव, तर्कज्ञानेन च प्रसिध्यति। आकाशोत्पत्तिकं तदाधारकं वा पुष्पं नास्त्येव, किन्तु घटस्तु युगपद् अस्तित्वतदभावाभ्यामालिङ्गित एव, निरन्तरम्। न तत्र सान्तरतेति ध्येयम्। न च सान्तरत्वाभावे अस्तित्वनास्तित्वयोः क्रमशो ज्ञापकं "स्यादस्त्येव नास्त्येवे"ति तृतीयं वाक्यं मिथ्या। स्याच्छब्देनैवोच्यते, यदुत तत्र कथञ्चित् सान्तरताऽपि कथञ्चित् निरन्तरताऽपि च। यदा यदा यो नयोऽर्प्यते, तदा तदा तादृगर्थ उपलभ्यते। एवमेव केवलज्ञान–केवलदर्शनयोर्मध्येऽपि सान्तरत्वनिरन्तरत्वविषयेऽनेकान्त इति **दिक्**।

।। अवक्तव्यत्वानभिलाप्यत्वयोर्विशेषः ।।

न चावक्तव्यत्वानभिलाप्यत्वयोरविशेष एवेति **वाच्यम्**, युगपद्विधिनिषेधात्मना युगपदुभयधर्ममयं सदादिवस्त्वेवावक्तव्यपदस्यार्थः, ये चानन्ता अपि अर्थाः शब्दमात्राविषयीभूतास्तेऽनभिलाप्या भावाः कथ्यन्ते। ते ज्ञेया एव, न तु केवलिनाऽप्यभिलाप्याः, **विशेषावश्यकभाष्यवृत्ति**वचःसंवादात्। ततोऽत्र चतुर्थे भङ्गे 'अवक्तव्य'शब्दस्य विशेषशक्यार्थो युगपदुभयधर्मालिङ्गितं वस्तु युगपदुभयं वा इति ज्ञायते। अतस्सप्तभङ्ग्यन्तर्गतावक्तव्यपदस्य स एव विशेषः शक्यार्थः, तद्बहिर्भूतोऽवक्तव्यशब्दोऽनभिलाप्यशब्दसमानार्थकः स्यादिति महदेवान्तरमेतयोः।

।। वक्तव्यत्वसप्तभङ्ग्यां द्वितीयचतुर्थयोरतिरिक्ततासाधनम् ।।

ननु तथाऽपि वक्तव्यत्वसप्तभङ्ग्यां द्वितीयभङ्गसमानार्थक एव चतुर्थः। तथाहि 'स्याद् वक्तव्यमेव' इति प्रथमः, 'स्यादवक्तव्यमेवे'ति द्वितीयः, 'स्यादुभयमेवे'ति तृतीयः, 'स्यादवक्तव्यमेवे'ति च चतुर्थः, एवं द्वितीय-

શંકા : ખંડશઃ શક્તિ અથવા શક્તિવિશેષ શું છે?

સમાધાન : ''तादृशश्च बोधोऽवक्तव्यपदस्य खण्डशः शक्त्या कारितः, विशेषशक्त्या वेत्यन्यदेतत्'' આવું વચન **નયોપદેશ**માં લખ્યું છે. 'ખંડશઃ શક્તિ' વિષે અનેકાન્ત વ્યવસ્થા વગેરેમાં આવું જાણવા મળે છે, કે પહેલાં સત્ત્વ અને પછી અસત્ત્વને અલગ-અલગ જાણી લેવાં. તે ખંડશઃ જાણ્યાં છે. અને તે રીતે જાણેલાં તે બન્ને વચ્ચે અસંસર્ગનો બોધ ન થાય, અથવા સંસર્ગનું જ્ઞાન થાય, ત્યારે બન્ને પરસ્પર અન્વિત થઇને જણાઇ જાય એટલે અવક્તવ્ય પદથી ખંડશઃ શક્તિથી યુગપદ્ ઉભયનો બોધ થયો. અથવા, અવક્તવ્ય પદના શ્રવણ માત્રથી સાક્ષાત્ જ યુગપદ્ ઉભયનો બોધ થયો. આમાં અવક્તવ્ય પદમાં શક્તિવિશેષ કલ્પવાનો જે યુગપદ્ ઉભયને જણાવે છે. ખંડશઃ શક્તિ તો પ્રથમ-દ્વિતીય ભાંગાથી પ્રચલિત છે. પણ શક્તિ વિશેષ એ નવી કલ્પેલી શક્તિ છે.

શંકા : તો અવક્તવ્ય પદનો અર્થ શું?

સમાધાન : આ વાતને જરાક વિસ્તારથી સમજીએ.

।। છાદ્મસ્થિક જ્ઞાનમાં યુગપદ્ અનેક અર્થોનું પ્રત્યક્ષ ન થાય ।।

કોઇ પણ છદ્મસ્થનું જ્ઞાન એકીસાથે અનેક ધર્મોનું અવગાહન કરી જ ન શકે. છદ્મસ્થને જે અનંત ધર્માવગાહી પ્રમાણ જ્ઞાન થાય છે, તેમાં દ્રવ્યાર્થિકનયની મુખ્યતાએ સામાન્યથી જ અનંત ધર્મોનો બોધ થાય છે. વિશેષથી નહીં. અથવા વિશેષથી અનંતધર્મોનો એકી સાથે બોધ પણ શ્રુતવિતર્ક દ્વારા થઇ શકે, પણ પ્રત્યક્ષથી ન જ થાય. 'પ્રત્યક્ષથી એક સાથે અનેક ધર્મોનું વિશેષથી જ્ઞાન થયું.' આવું પ્રતિપાદન કરનારો મત **વિશેષાવશ્યક ભાષ્યમાં** નિહ્નવ મત તરીકે દર્શાવ્યો છે. આથી 'યુગપદ્ સત્ત્વાસત્ત્વ' રૂપ પદાર્થ પ્રત્યક્ષથી ન જણાય, શાબ્દબોધથી કે અનુમાનથી જણાઇ શકે. આથી, પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનના અવિષય બનનારાં તે વાચ્યાર્થમાં શબ્દ પણ લાગુ ન પડે. જો શબ્દ લાગુ પડે, તો તે અર્થ પણ પ્રત્યક્ષથી જાણી જ શકાય. એમ થતાં ઉપરોક્ત સિદ્ધાંતનો ભંગ થાય, માટે શબ્દ લાગુ ન પડવાથી તે 'અવક્તવ્ય' બન્યું.

શંકા : અતીત થઇ ગયેલા રામ-દશરથ વગેરે અત્યારે ભલે પ્રત્યક્ષજ્ઞાનથી

चतुर्थयोरैक्यापत्तिरिति। **तन्न**, वस्तुनि केचनाभिलाप्याः पर्यायाः सन्ति, केचन चानभिलाप्याः। वाच्यपर्यायानाश्रित्य तत्र विधिमुख्यतया वाच्यत्वं गद्यते, येन तद्वस्तु नित्यं, सत्, क्षणिकं, भिन्नम्, घट इत्यादिशब्दवाच्यतां लभते, अनभिलाप्यपर्यायानाश्रित्य च तत्र निषेधमुख्यतया वाच्यत्वं गद्यते, स एव च द्वितीयभङ्गः। तादृग्वस्तु ज्ञायते, किन्तु न शब्दसङ्केतमर्हति अनभिलाप्यत्वात्, इति न शब्देनोच्यते, इति तस्य सामान्यतोऽवाच्यशब्दवाच्यत्वेऽपि प्रातिस्विकशब्दावाच्यत्वमेव (अभावप्रधानतया वाच्यत्वमेव) कीर्त्यते द्वितीयभङ्गेन। चतुर्थभङ्गेन तु वाच्यत्वपर्यायस्य वस्त्वाश्रितस्य वाच्यवस्तुनो वा युगपद् भावाभावावेव ज्ञाप्येते। इति द्वितीयवाक्यार्थस्य चतुर्थवाक्यार्थस्य चात्रापि भेद एवेति।

प्रवचनसारोद्धारे च अवक्तव्यभङ्गबीजाशङ्कायां → स्वपरपर्यायसत्त्वासत्त्वाभ्यामेकेन केनाप्यसाङ्केतिकेन शब्देन सर्वस्यापि तस्य युगपद्वक्तुमशक्यत्वात्। ← इति प्रत्युत्तरवचनाच्चतुर्थभङ्गोक्तार्थस्यासाङ्केतिकेनैव शब्देनावक्तव्यत्वमुक्तम्। न शब्दसङ्केतायोग्यत्वमेव। शब्दसङ्केताऽर्हत्वे च तस्य कथमनभिलाप्यभावसमानजातीयत्वमिति **चिन्त्यम्।**

।। अवक्तव्यपदस्थाने उभयपदप्रयोगः किं न स्यात्? ।।

अथ तादृग्विशिष्टार्थकथनशक्तिविशेष उभयपदे एवास्तां, को दोषः? **न च** द्वयोरपि पदयोर्नवीन एव शक्तिविशेषः कल्प्य इत्यविशेष इति **वाच्यम्**, अवक्तव्यपदे तु नव एव स कल्पनीयः, न तु उभयपदे। उभयपदेन स तादृगर्थ एव वाच्यः, यथा ''पुष्पदन्तौ''शब्देन सूर्याचन्द्रमसौ ज्ञायेते, इत्यतोऽत्र द्वौ शक्यार्थौ, द्वौ शक्यार्थताऽवच्छेदकावपि चन्द्रत्व-सूर्यत्वरूपौ इति। तयोर्द्वयोरपि शक्यार्थताऽवच्छेदकयोरेकैव शक्यार्थताऽवच्छेदकता संयोगद्वित्वादेरिव व्यासज्यवृत्तिः। एवमत्रोभयशब्देनास्तित्वनास्तित्वे उभे अपि कथ्येते, द्वौ शक्यार्थौ, द्वौ शक्यार्थतावच्छेदकौ, व्यासज्यवृत्तिनी तयोः शक्यार्थताऽवच्छेदकतेति।

तन्न, उभयपदशक्यार्थौ द्वौ स्यातामपि, शक्यार्थताऽवच्छेदकौ द्वौ न भवतः।

જણાતાં નથી, પણ ત્યાં શબ્દ તો લાગુ પડે જ છે. અને તેનો શાબ્દબોધ થાય જ છે. તથા વૈકલ્પિક એવાં જે ખપુષ્પ, ક્ષણિક વગેરે ભાવો છે. જે પ્રત્યક્ષનો અવિષય છે. છતાંય શબ્દ વાચ્ય જ છે. માટે પ્રત્યક્ષનાં અવિષય હોવાથી શબ્દથી વાચ્ય ન બને. આ નિયમ ખોટો પૂરવાર થાય છે. નિયમ કરવો હોય તો'ય માત્ર એટલો કરાય, કે જે ભાવો અનભિલાપ્ય હોય, તે શબ્દ અવાચ્ય બને.

સમાધાન : વક્ષ્યમાણ રીતે આ યુગપદ્ ઉભય રૂપ અર્થને અનભિલાપ્ય નથી માનવાનો. માટે તેને શબ્દ અવાચ્ય તો ન જ કહી શકાય. પણ 'અવક્તવ્ય' શબ્દથી વાચ્ય માનવાનો છે. અને એ જ **પ્રમાણનયતત્ત્વાલોક** અને **નયોપદેશમાં** કહ્યું છે, કે આ બોધ 'અવક્તવ્ય' પદ દ્વારા ખંડશઃ શક્તિથી કે શક્તિ વિશેષથી થાય છે. અહીં અવ્યુત્પન્ન દશામાં 'અવક્તવ્ય' પદનો અર્થ 'શબ્દથી અવાચ્ય' એવો થાય અને વ્યુત્પન્ન દશામાં 'અવક્તવ્ય' પદનો અર્થ 'યુગપદ્ ઉભય' એવો થાય. આમ **સન્મતિની વૃત્તિ** અને એના આધારે રચાયેલ **અષ્ટસહસ્રીતાત્પર્ય-વિવરણ-અનેકાન્ત વ્યવસ્થા** વગેરે અનુવ્યાખ્યાઓમાં થયેલું નિરૂપણ અવ્યુત્પન્નને આશ્રયીને છે, અને **પ્રમાણનય તત્ત્વાલોક** અને તેને આધારે રચાયેલ **નયોપદેશ** વગેરેની અનુવ્યાખ્યામાં થયેલું નિરૂપણ વ્યુત્પન્નને આશ્રયીને છે આવો ભેદ કરવો.

।। વૈકલ્પિક અર્થની ઉપલબ્ધિમાં ભજના ।।

શંકા : જે અર્થ માત્ર વૈકલ્પિક હોય, ઉપલબ્ધ ન થતો હોય, તે 'ખપુષ્પ'ની જેમ અસત્ હોય છે.

સમાધાન : વૈકલ્પિક હોવું એટલે છાદ્મસ્થિક પ્રત્યક્ષજ્ઞાનમાં વિષય ન હોવું. આટલો જ અર્થ કરવો. પણ સર્વથા અસત્ હોવું આવો અર્થ ન કરવો. આથી, વૈકલ્પિક એવો 'ખપુષ્પ', 'શીત અગ્નિ' વગેરે અર્થ ઉપલબ્ધ થતો નથી, માટે તે આહાર્યજ્ઞાનનો જ વિષય બને. પરંતુ, અવક્તવ્ય પદાર્થ-યુગપદ્ ઉભય-તો ભલે પ્રત્યક્ષથી ન દેખાતો હોય, પણ ઉપલબ્ધ તો થાય જ છે. તે તર્કજ્ઞાનથી સાબિત થાય છે. ઘટાદિને ત્રીજા ભાંગાનાં પદાર્થ રૂપે જોવામાં આવે,

तथा हि उभयशब्देन ज्ञायमानेषु घटपटोभय-पटकटोभय-अस्तित्व-नास्तित्वोभयेत्यादिषु नैकेषूभयेषु सत्स्वपि बुद्धिस्थत्वात्प्रकृतोपस्थितत्वाच्च भवतु अत्रोभयशब्देनास्तित्वनास्तित्वोभयमेव गृह्णीमः। परन्तु अस्तित्वनास्तित्वरूपोऽर्थो यदोभयपदेनोच्यते, तदा स उभयत्वेन रूपेणैवोच्यते, इति उभयत्वेन सामान्येन रूपेणास्तित्वनास्तित्वे ज्ञाते, परन्तु अस्तित्वत्व-नास्तित्वत्वाभ्यां न ते ज्ञाते। न च तौ धर्मौ युगपत्सामान्येनोभयत्वादिना ज्ञापनार्थं चतुर्थभङ्गप्रवृत्तिः, किन्तु विशेषेण स्वगतविशेषधर्मावच्छिन्नतया। न च सोऽर्थ उभयशब्देन ज्ञापितुमुचितः।

एतेन-यथा "पुष्पदन्तौ"पदेन तौ द्वौ विशेषेणैव कथ्येते, तथोभयपदेनापि विशेषेण तौ किमर्थं मा कथ्यताम् इति **निरस्तम्?** यत्र द्वौ विशेषेण वक्तव्यौ तत्र शब्दानुशासनमहिम्ना द्वितीया भवति, यथा "घटपटौ"। **न च**-भवन्मते अवक्तव्यपदोत्तरद्वितीयाऽभावेऽपि तेन द्वौ विशेषेण कथ्येते एवेत्यनैकान्तिकत्वमिति। **तथाऽपि** नात्रोभयपदमुपयुज्यते, अवक्तव्यपदे तादृक्शक्तिविशेषस्तु कल्पितः, किन्तु तस्य पदस्य प्रचलितशक्तिरपि सप्रयोजना। उभयपदे शक्तिविशेषः कल्प्य एव, तस्य प्रचलितशक्तिः प्रकृतेऽप्रयोजना च। गदितुमयोग्यमिति अर्थो नोभयपदेन गम्यते। **वस्तुतस्तु** तादृगर्थे व्यावहारिकमवक्तव्यत्वमेव। तच्चावक्तव्यपदेनैव ज्ञाप्यते न तूभयपदेन। उभयपदेन च यद्व्यावहारिकमुभयत्वमुच्यते स तृतीयभङ्गपदार्थः न तु तुर्यभङ्गस्यार्थ इति विवेकः।

इत्थं यदाह **सप्तभङ्गीतरङ्गिणीकारः,** यदुत युगपदनेकार्थकथने शब्दस्य सामर्थ्याभावादेवात्रावक्तव्यत्वमिति तद्विदुषामुपहसनीयम्, पुष्पदन्तौदम्पती प्रभृतिशब्दैरुच्येते एव नैकावर्थौ। यदाह **कोशकारः** "पुष्पदन्तौ पुष्पवन्तावेकोक्त्या शशिभास्करौ"। → अत्र 'एकोक्त्या' इत्यस्य "एकया शक्त्या" इत्यर्थः। ← इति **नयोपदेशे।** ततस्तादृक्पदैर्व्याकरणकोशसिद्धैरेकैरपि अनेकेऽर्थाः कथ्यन्ते। तदा शब्दस्यानेकार्थकथनेऽसामर्थ्यं कौतस्कुतम्? तथा **चालङ्कारे श्रीमान्-युगपद्विधिनिषेधात्मनोऽर्थस्यावाचक एवासाविति च न चतुरस्रम् ।।४-२९।। तस्यावक्तव्यशब्देनाप्यवाच्यत्वप्रसङ्गात् ।।४-३०।।** अत्र असाविति

તો તેમાં સાન્તરિત સત્ત્વ-અસત્ત્વનો બોધ થાય છે. અને તેને જ ચોથા ભાંગાના વાચ્યાર્થ તરીકે જુઓ તો તેમાં નિરંતર-યુગપદ્-ઉભયનો બોધ થાય છે. નય વિશેષથી અલગ અલગ બોધ થાય. અને સર્વ સાત વાક્યો એ નયવાક્યો રૂપ જ છે. આ રીતે જ **જ્ઞાનબિંદુ**માં **મહોપાધ્યાયજી**એ કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શન આ બે પદાર્થોને પણ નય વિશેષથી સાન્તરિત અથવા નિરન્તરિત બન્ને રીતે સિદ્ધ કર્યા છે. **ઈતિ દિક્.**

।। અવક્તવ્ય એ અનભિલાપ્ય નથી ।।

યુગપદ્ ઉભયધર્માત્મક વસ્તુ એ 'અવક્તવ્ય' પદનો અર્થ હોવાથી તે અનભિલાપ્ય ન કહેવાય પણ જે અનન્ત ભાવો શબ્દમાત્રથી જ અવાચ્ય છે, તે અનભિલાપ્ય છે. અનભિલાપ્ય ભાવો એ માત્ર જાણી જ શકાય. કેવલી પણ એને કહી ન શકે. એવું **વિશેષાવશ્યક ભાષ્યની વૃત્તિ**માં કહ્યું છે. આથી 'અવક્તવ્ય' શબ્દનો અર્થ યુગપદ્ ઉભય થાય. પણ સપ્તભંગીમાં ન વપરાયેલા એવાં અવક્તવ્ય શબ્દનો અર્થ અનભિલાપ્ય શબ્દને સમાનાર્થક કરો, તો'ય વાંધો નહીં.

।। વક્તવ્યત્વ પર્યાયની સપ્તભંગીમાં દ્વિતીય-ચતુર્થ ભંગ સમાન છે?।।

શંકા : જેમ સત્ત્વ પર્યાયની સપ્તભંગી કરી, તેમ વક્તવ્યત્વની પણ સપ્તભંગી કરી શકાય. એમાં બીજો ભાંગો 'સ્યાદ્ અવક્તવ્ય' બને અને ચોથો ભાંગો પણ 'સ્યાદ્ અવક્તવ્ય' જ બને, તો બન્નેનો અર્થ એકસરખો જ થશે ને?

સમાધાન : ના, પદાર્થમાં અનન્તા પર્યાયો હોય છે. તેમાંથી અમુક અભિલાપ્ય છે. અમુક અનભિલાપ્ય છે. પ્રથમ ભાંગાથી 'વાચ્ય' વસ્તુનો ભાવાંશ જણાય છે. જેના કારણે તે વસ્તુ નિત્ય, ક્ષણિક, સત્, ભિન્ન વગેરે શબ્દ વાચ્યતાને પામે છે. જેની અવચ્છેદક કોટિમાં વાચ્યપર્યાયો મૂકાય છે. વાચ્ય પર્યાયોને કારણે તે પદાર્થમાં વાચ્યત્વ છે. અનભિલાપ્ય પર્યાયોને કારણે તેમાં અવક્તવ્યત્વ છે. આમ, બીજા ભાંગાથી આવું અવક્તવ્યત્વ જણાયું. અને ચોથા ભાંગાથી તો યુગપદ્ ઉભય જણાયું. ઉભય=વક્તવ્યત્વ, અવક્તવ્યત્વ (અથવા વક્તવ્યત્વનો ભાવ અને અભાવ અથવા વાચ્ય વસ્તુનાં ભાવ અને અભાવ).

शब्दः।

एवं च अभिलाप्येऽपि तस्मिन्नर्थेऽवक्तव्यपदप्रवृत्तौ किं बीजमिति चेत्?

उच्यते–उभयधर्मसंवलितं वस्तु, वस्तुगतोभयपर्यायौ वा छद्मस्थेन युगपत्प्रत्यक्षं न क्रियेते। तन्नाम तौ छाद्मस्थिकप्रत्यक्षज्ञानविषयौ न भवतः, क्रमशः तयोर्ज्ञाने न बाधा, युगपत्सामान्यतया ज्ञानेऽपि न दोषः युगपद्वौ पर्यायौ छद्मस्थेन विना वितर्कं न ज्ञायेते, अतस्तदर्थको व्यावहारिकः कोऽपि शब्दो न प्रवर्तते, अतस्तदवक्तव्यम्। पुष्पदन्तौप्रभृतिष्वपि क्रमशः एव ज्ञानं, न युगपत्। शब्देन युगपत्कथितयोरपि क्रमश एव ज्ञानमिति। व्यवहारपराधीनो हि शब्दः क्रमशो द्वौ युगपद् वदेत्, किन्तु सत्यपि सामर्थ्ये युगपद्वितयं युगपद्वक्तुं न पारयति, तादृगर्थस्य श्रुतवितर्कसिद्धत्वेऽपि व्यवहारेऽप्रसिद्धत्वात्, इति तत्र व्यावहारिकशब्दाभावापादितं व्यावहारिक-मवक्तव्यत्वमेव, न तु शब्दसामर्थ्याभावनिमित्तकमिति विवेकः। अत एव सत्यां व्युत्पत्तौ तेनावक्तव्यशब्देनैव सोऽर्थो विज्ञायते।

अत एवाव्युत्पन्नो यथाश्रुतार्थं गृह्णाति। व्युत्पन्नस्तु 'अवक्तव्य'-पदश्रवणात्साक्षादेव युगपदस्तित्वनास्तित्वं स्मरत्येव। अतस्तस्य तु साक्षादेवावक्तव्य-पदश्रवणात् तादृगेवार्थो विकल्पजो बुध्यते। सङ्केतज्ञानाहितव्युत्पत्तिमहिम्ना। एवं साक्षादवक्तव्यशब्देन तस्यार्थस्य ज्ञाने सोऽर्थोऽवक्तव्यो नैव, अपि तु वक्तव्य एवेति न विचारणीयम्, सोऽर्थोऽस्ति, नास्ति, उभयानुभयादिशब्दकलापैरवक्तव्य इत्यवक्तव्यः।

।। स्थितपक्षः ।।

अयं भावः– संव्यवहारे न द्वावर्थौ युगपत्संलग्नतया ज्ञातव्यौ भवतः, विना प्रयोजनं च तादृक्शब्दोऽपि नोपयुज्यते, किन्तु शब्दे तादृशं सामर्थ्यमेव नास्तीति न। व्युत्पन्नं प्रति क्षणिकं वस्तु, नित्यं वस्त्वित्यादिपदज्ञायमानवैकल्पिकार्थबोधवत् 'अवक्तव्य'पदश्रवणात्तादृगर्थबोधः सिद्ध एव। क्षणिकं यथाऽन्यथाऽनुपपत्तिरूप-तर्कज्ञानेन ज्ञातं, श्रुततर्कसिद्धं न प्रत्यक्षम्। तथा युगपदुभयमपि श्रुततर्कसिद्धमेव,

પ્રવચનસારોદ્ધાર ગ્રંથમાં 'કોઈપણ અસાંકેતિક શબ્દથી તે પદાર્થ વાચ્ય ન હોવાથી 'અવક્તવ્ય' કહેવાય છે.' આવું લખ્યું હોવાથી તેમાં પારિભાષિક અવક્તવ્યત્વ હોવાનું જણાય છે. પરંતુ, અનભિલાપ્યત્વ=જાતિથી જ અવક્તવ્યત્વ નહીં. તે અસાંકેતિક શબ્દથી અવાચ્ય છે. એનો અર્થ, સાંકેતિક શબ્દથી વાચ્ય બની જ શકે છે.

।। અવક્તવ્ય પદની જગ્યાએ 'ઉભય' પદ કેમ નહીં? ।।

શંકા : 'યુગપદ્ ઉભય' અર્થને જણાવવાં અવક્તવ્ય પદની જગ્યાએ ઉભય પદ જ કેમ નથી વાપરતાં? 'અવક્તવ્ય' પદથી તેવો અર્થ તો વ્યુત્પન્નને જ સમજાશે. પણ 'ઉભય' પદનો તો તેવો જ અર્થ થાય છે. એટલે, જેમ 'પુષ્પદન્તૌ' પદ દ્વારા એકી સાથે બન્નેય સૂર્ય-ચંદ્રનો બોધ થાય છે. ત્યાં બે શક્યાર્થ છે. બે શક્યાર્થતા અવચ્છેદક છે, ચંદ્રત્વ અને સૂર્યત્વ. પરંતુ, શક્યાર્થતા અવચ્છેદકતા એક જ છે અને બન્નેમાં વ્યાસજ્યવૃત્તિ છે. માટે તેનો અનુગમ પણ થાય. આમ, અહીં સત્ત્વાસત્ત્વ આ બન્નેય અર્થ થયા. શક્યાર્થતા અવચ્છેદક પણ ભાવાંશત્વ અને અભાવાંશત્વ બે થયા. આ બન્નેમાં એક જ શક્યાર્થતા અવચ્છેદકતા આવી, જેથી તે સંયોગ-દ્વિત્વ આદિની જેમ વ્યાસજ્યવૃત્તિ બની.

સમાધાન : 'ઉભય' પદથી તો અનેક ઉભય લઇ શકાય. એમાંથી પ્રસ્તુતમાં ઉપસ્થિત સત્ત્વ અને અસત્ત્વ હોવાથી ઉભય પદથી પણ સત્ત્વાસત્ત્વ ઉભયનો બોધ થાય છે, એમ માની લઇએ, પરંતુ ઉભયપદથી જે અર્થ જણાય, તે ઉભયત્વેન સામાન્યેન રૂપેણ જ જણાય. અર્થાત્ સત્ત્વાસત્ત્વ બે શક્યાર્થ બની શકે. પણ તે બન્નેનું અવગાહન ઉભયત્વરૂપે થાય. પ્રાતિસ્વિક રૂપે નહીં. માટે શક્યાર્થતા અવચ્છેદક બે ન બની શકે. માટે અપેક્ષિત બોધ ન થાય.

આથી જ, જેમ 'પુષ્પદન્તૌ' શબ્દ દ્વારા તે બે અર્થ વિશેષથી કહેવાય, તેમ 'ઉભય' પદથી કેમ ન કહેવાય? આવી શંકાનું પણ સમાધાન થઇ ગયું. વળી, જ્યાં બે અર્થો વિશેષથી કહેવાનાં હોય, ત્યાં શબ્દાનુશાસનનાં નિયમથી દ્વિતીયા થાય છે.

શંકા : જેમ 'અવક્તવ્ય' પદ પછી દ્વિતીયા ન હોવા છતાંય તમે તેમાં

न व्यवहारे क्वाप्युपयुज्यते। इति व्यावहारिकशब्दो नाऽत्र प्रयुज्यते, ततस्तदवक्तव्यमेवेति।

ननु–तर्कसिद्धक्षणिकत्वज्ञानाय यथा 'क्षणिक'मिति शब्दः प्रयुज्यते, तथा तर्कसिद्धयुगपदुभयत्वज्ञानायापि 'युगपदस्तित्वनास्तित्वमि'ति शब्द एव प्रयुज्यतां, न त्ववक्तव्यपदमिति **चेत्?** तृतीयभङ्गजबोधस्यापि कथञ्चिद् युगपदुभय-विषयकत्वात्, व्यवहारे च समूहालम्बनतया ज्ञानस्यैव युगपद् ज्ञानत्वेन प्रचलितत्वात्, तादृशशब्दे प्रयुक्ते स्याद्ग्राहकमतौ तृतीयभङ्गेन सहानर्थान्तरतापत्तेः न सोऽर्थस्तादृशेनापि शब्देन कीर्त्यते, न च तदतिरिक्तघटपटादिशब्दैः कथनीयः, अतः सुष्ठूक्तं शब्दमात्राऽवाच्यत्वमेवास्य।

एवमस्यार्थस्य विकल्पसिद्धत्वात्, व्यवहाराविषयत्वात् अस्तिनास्तीत्यादि-प्रसिद्धशक्तिकशब्दैरवाच्यत्वादवक्तव्यत्वं समागतम्। अवक्तव्यपदस्य प्रचलितशक्त्या शब्दमात्रैरवाच्यत्वमित्येतावदेवोच्यते, विशेषशक्त्या च स एवार्थः साक्षादुच्यते। सङ्केतविशेषाद्यव्युत्पन्नः प्रथमं प्रचलितां शक्तिं मुख्यीकृत्य वदितुमयोग्यत्वं जानीते, तत्पश्चात्तत्र कारणगवेषणायां मुख्यमर्थं युगपदस्तित्वनास्तित्वरूपं प्रतिसन्धत्ते। व्युत्पन्नदशायान्तु सप्तभङ्ग्यामवक्तव्यस्य पदस्य श्रवणादेव युगपत्स्वपरपर्यायाभ्यां युगपदुभयौ ज्ञायेते एव, तत्र चाऽवक्तव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तमपि ज्ञायते, ततश्च व्यवहारानुरोधिकं वदितुमयोग्यत्वमपि सुनिश्चिनोति व्युत्पन्नः। एवमाप्तव्युत्पत्तिका अथ भवन्तोऽपि केनचित् सप्तभङ्गीयचतुर्थभङ्गबुध्यमानोऽर्थः किं वक्तव्यो वाऽवक्तव्यो वेति प्रश्निता अथ वदिष्यन्ति–स्याद्वक्तव्य एव, स्यादवक्तव्य एव। व्युत्पन्नापेक्षया अवक्तव्यपदवक्तव्य एव अव्युत्पन्नापेक्षया च शब्दमात्रावक्तव्य एवेति **कृतमतिपल्लवितेनेति।** इति अवक्तव्यपदार्थसाधको दीर्घः प्रमेयः।

।। अवक्तव्यत्वस्य व्यञ्जनपर्यायत्वसाधनम् ।।

अथ 'अवक्तव्य'शब्दार्थस्य, युगपदुभयमुख्यतया सत्त्वपर्यायस्य कथं व्यञ्जनपर्यायत्वम्? तत्र निश्चिते कस्मिंश्चिच्छब्दे प्रवृत्त एवागच्छति व्यञ्जनपर्यायता,

યુગપદ્ ઉભય રૂપ અર્થ જ્ઞાપક શક્તિવિશેષને કલ્પો જ છો, તો પછી 'ઉભય' પદમાં કેમ નહીં?

સમાધાન : જો કે, અવક્તવ્ય પદ હોય કે ઉભય પદ હોય, બન્ને'યમાં શક્તિ વિશેષની જ કલ્પના કરવાની છે. પરંતુ, તે છતાંય ઉભય પદ ન વાપરવું, અવક્તવ્ય જ વાપરવું. કારણ કે ઉભય પદની પ્રચલિત શક્તિથી જણાતો અર્થ બહુ અગત્યનો નથી, અવક્તવ્ય પદની પ્રચલિત શક્તિથી જણાતો અર્થ મહત્ત્વનો છે. આથી, 'અવક્તવ્ય' પદ વાપર્યું છે, પણ 'ઉભય' પદ નહીં. આ વાત અહીં જ આગળ સ્પષ્ટ થશે.

આથી જ, **'સપ્તભંગી તરંગિણી'**માં જે એમ લખ્યું છે કે 'યુગપદ્ અનેક અર્થને કહેવાનું સામર્થ્ય જ શબ્દમાં નથી, માટે તે પદાર્થ અવક્તવ્ય છે.' આ વાત ખોટી સમજવી. પુષ્પદન્તૌ, દમ્પતી વગેરે પદો દ્વારા અનેક અર્થો કહેવાય જ છે. તો પછી અનેક અર્થોને કહેવામાં શબ્દ અસમર્થ ક્યાં રહ્યો? વળી **પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર**માં શાસ્ત્રવચન છે કે "યુગપદ્ વિધિનિષેધરૂપ અર્થને શબ્દ કહેતો જ નથી એવું નથી. નહીં તો તે અર્થ અવક્તવ્ય શબ્દથી પણ અવાચ્ય બનવાની આપત્તિ છે." આ પાઠથી સિદ્ધ થાય છે, કે તે ભાવ 'અવક્તવ્ય' શબ્દથી વાચ્ય બને છે.

શંકા : જો તે ભાવ અભિલાપ્ય જ છે, તો તેમાં અવક્તવ્ય શબ્દ શું કામ રાખ્યો?

સમાધાન : ઉભય ધર્મથી સંવલિત એવો એ ભાવ, અથવા વસ્તુનાં બે પર્યાયો છદ્મસ્થ દ્વારા એકી સાથે પ્રત્યક્ષ કરી ન શકાય, અર્થાત્ તે છાદ્મસ્થિક પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનના વિષય નથી બનતા. આથી તે અર્થને જણાવવા કોઇ વ્યાવહારિક શબ્દ ન મળે, વ્યવહારમાં (લોકવ્યવહારમાં) તે સાવ અનુપયોગી છે માટે. એટલે જ તે વ્યાવહારિક શબ્દથી અવાચ્ય છે. એમ સમજવું પડે. "પુષ્પદન્તૌ" વગેરેમાં પણ જ્ઞાન તો ક્રમશઃ જ થાય છે. યુગપત્ નહીં. શબ્દ યુગપત્ બે પર્યાય-વસ્તુ-ધર્મને ક્રમથી જણાવી શકે. પણ યુગપત્ દ્વિતયને યુગપત્ ન જણાવી શકે. કારણ કે વ્યવહાર અપ્રચલિત અર્થ તેનાથી અવાચ્ય જ બને. આવું

यथा सत्त्ववति 'अस्ति' शब्दे प्रयुक्तेऽस्तित्वं व्यञ्जनपर्यायः, सत्त्वाभाववति 'नास्ति' शब्दे प्रयुक्ते अभावप्रधानास्तित्वं व्यञ्जनपर्यायः, युगपदस्तित्वनास्तित्ववति तन्नाम युगपद्भावप्रधानतया अभावप्रधानतया चास्तित्वस्य बोधे कर्तव्ये लौकिकः शब्द एव न प्रयुज्यते, ततः कुतो युगपदुभयप्रधानत्वालिङ्गितसत्त्वपर्यायस्य व्यञ्जनपर्यायरूपता? इति वस्तुनि सप्तभङ्ग्या जिज्ञासितः प्रतिपादितो वा पर्यायो व्यञ्जनपर्याय एव शब्दवाच्यत्वादिति यदुक्तं पूर्वं, तद्व्यर्थम्।

तन्न–आरक्षका न आगता इत्यतो यच्चौर्यं सञ्जातम्, तत्र कारणमारक्षका एव, यदि ते आगमिष्यन्, चौर्यं नाभविष्यत्, तेषामनागमनतो यच्चौर्यं प्रवृत्तं तत्र कारणमप्यारक्षका एव। आरक्षकाभावापादितचौर्यस्य कारणं यथाऽऽरक्षकाः, तथा शब्दाभावापादितावक्तव्यत्वस्य कारणमपि शब्द एव। एवं तत्रापि परम्परया शब्दवत्त्वमेव। अत एवावक्तव्यत्वस्याऽशुद्धव्यञ्जनपर्यायत्वं, न तु शुद्धव्यञ्जन-पर्यायत्वम्। तच्चाग्रे सप्तदशपद्यविवेचने स्फुटीभविष्यति। अपि चावक्तव्यपद एव तदर्थवाचकशक्तिविशेषपरिकल्प्यतामते तु तस्यापि अवक्तव्यपदवाच्यत्वाच्छुद्ध-व्यञ्जनपर्यायत्वमेव ।।१०।।

अव. एवं टीकायामुल्लिखितमेव विवरणं पद्ये संरचयन्नाह–

अवक्तव्यत्वहेतुस्तु, न तत्तद्वेति शब्दशः ।
वदितुं नोचितं तत्र, ज्ञातव्यं नाऽपरं परम् ।।११।।

टीका – अवक्तव्यत्वे.ति। न ज्ञातुमशक्यात्वादवक्तव्यम्, न वा वदितुमशक्यत्वात्, विकल्पज्ञानेन ज्ञायतेऽपि, अवक्तव्यपदेन चोच्यतेऽपि, परन्तु संव्यवहाराविषयत्वात्, असाङ्केतिकनियतशब्दावाच्यत्वादेवावक्तव्यत्वमिति ध्येयम्। तदेवाह–न तत्तद्वेति अमुकमिदं अमुकं नेदमिति व्यावहारिकनियतशब्देन वदितुमनुचितमवक्तव्यमिति तदर्थः।।११।।

।। तृतीयतुर्ययोर्वैलक्षण्यसाधनम् ।।

अव. नन्वास्तामाद्यद्वययोस्तृतीयस्य विशेषः, तयोरेकैकस्यावगाहनमत्र च

વ્યવહારનયનું મંતવ્ય છે.

આથી, અવ્યુત્પન્ન હંમેશા યથાશ્રુતાર્થને જ ગ્રહણ કરે, અને વ્યુત્પન્ન તો 'અવક્તવ્ય' પદને સાંભળીને સાક્ષાત્ યુગપદ્ ઉભયને જાણે. પરંતુ જો સાક્ષાત્ તે અર્થ જણાતો હોય, તો તે અવક્તવ્ય જ ન રહ્યો, એમ ન વિચારવું. તે અર્થ અસ્તિ, નાસ્તિ, ઉભય, અનુભય ઇત્યાદિ સંવ્યવહારસિદ્ધ સાંકેતિક શબ્દોથી વાચ્ય નથી. માટે વ્યવહારનયથી અવક્તવ્ય છે. અને સામાન્યથી પ્રતિપાદન હંમેશા વ્યવહારનયથી જ થતું હોય છે. કારણ કે આબાલગોપાલ વ્યવહારનયનાં દ્રષ્ટિકોણથી તો અભ્યસ્ત જ હોય છે.

|| સ્થિતપક્ષ ||

આથી સાબિત થયું કે વ્યવહારમાં બે અર્થ યુગપત્ સંલગ્ન રીતે જાણવાનાં હોતા નથી અને તેવું પ્રયોજન ન હોવાથી તેવો શબ્દ પણ હોતો નથી. પરંતુ શબ્દમાં તેવું સામર્થ્ય જ નથી એવું ન મનાય. જેમ વ્યુત્પન્નને 'ક્ષણિક', 'નિત્ય' ઇત્યાદિ પદોથી વૈકલ્પિક અર્થનો શાબ્દબોધ થાય છે, તેમ વ્યુત્પન્નને સપ્તભંગીગત 'અવક્તવ્ય' પદથી યુગપદ્ ઉભય એવો અર્થનો શાબ્દબોધ થાય જ છે. પરંતુ વ્યવહારમાં અનુપયોગી હોવાથી કોઇપણ વ્યાવહારિક શબ્દનો પ્રયોગ થતો નથી. માટે અવ્યુત્પન્નને તે 'અવક્તવ્ય' કહેવાય.

શંકા : તર્કસિદ્ધ ક્ષણિક પર્યાયનાં જ્ઞાન માટે જેમ 'ક્ષણિક' શબ્દનો પ્રયોગ થાય છે, તેમ તર્કસિદ્ધ યુગપદ્ ઉભયનાં જ્ઞાન માટે પણ ''યુગપદ્ સત્ત્વાસત્ત્વૌ'' ઇત્યાદિ શબ્દો જ પ્રયુક્ત થવાં જોઇએ ને?

સમાધાન : વ્યવહારમાં ઉભયનું સમૂહાલંબનતયા જ્ઞાન કરવું, એ જ યુગપદ્ ઉભયનું જ્ઞાન કર્યું કહેવાય છે. અને ઉભયનું સમૂહાલંબનતયા જ્ઞાન તૃતીયભંગનો વાચ્યાર્થ છે. એટલે ''યુગપત્ સત્ત્વાસત્ત્વૌ'' આવો શબ્દ મૂકવાથી તેવું ભાન થાય, (જે થવાની શક્યતા ખૂબ મોટી છે) તો તૃતીય-ચતુર્થ ભંગનો પદાર્થ સરખો જ થઇ જવાની આપત્તિ છે. આમ, તે અર્થ તે શબ્દથી પણ કહી શકાતો નથી. અને તદતિરિક્ત ઘટ-પટ વગેરે શબ્દોથી પણ કહી શકાય નહીં. માટે વ્યાવહારિક શબ્દમાત્ર અવાચ્ય બન્યો.

द्वयोरवगाहनम्। परन्तु तृतीयकात्तुर्यस्य विशेषे किं मानम्? उभयोरपि उभयावगाहनादेवेति। अत आह-

भिन्नवचनपर्याया-त्संविदाकारभिन्नता ।
मानं तृतीयकात्तुर्य-भङ्गभेदे जगुर्बुधाः ॥१२॥

टीका - अस्तु तृतीयतुर्ययोर्विषयाऽभेदः, किन्तु पर्यायवैलक्षण्यकृतो विषयताभेदोऽपि मन्तव्यः। तृतीयभङ्गोक्तः सद्वस्तुनः पर्यायो हि 'अस्तित्वनास्तित्वोभयत्वं' चतुर्थभङ्गकथितपर्यायश्च अवक्तव्यत्वमिति उभयत्राप्युभयस्य ज्ञानेऽपि वैलक्षण्येनैवोभयस्य ज्ञानमिति। तथा च विषयस्य वैचित्र्यात् ज्ञानाकारभेदोऽपि द्वयोर्भेदकः। तृतीये समूहालम्बनतया एकत्र द्वयमिति-ज्ञानाकारेणोभयज्ञानम्। चतुर्थे तु अन्योऽन्यसंवलिततया द्वयात्मकमेकमिति-ज्ञानाकारेणोभयज्ञानम् ॥१२॥

अव. अथाऽवशिष्टा भङ्गा उच्यन्ते-

आद्यद्वितीयतृतीयै-स्साकं तुर्यस्य सङ्ग्रहात् ।
पञ्चमषष्ठपाश्चात्य-विरचना विजायते ॥१३॥

टीका - पाश्चात्यः-सप्तमः। पञ्चमो भङ्गः, 'स्यादस्त्येवावक्तव्यमेवे'ति, स च प्रथमचतुर्थमिश्रणरूपो द्विकसंयोगी। षष्ठश्च "स्यान्नास्त्येवावक्तव्यमेव", स द्वितीयचतुर्थमिश्रणात्मको द्विकसंयोगी। सप्तमश्च द्विकसंयोगिना तृतीयेन सार्धं चतुर्थस्य संयोजनात्तथा च पदत्रयसंयोगाज्जातस्त्रिकसंयोगी भङ्गः "स्यादस्त्येव नास्त्येव अवक्तव्यमेवे" ति।

॥ तृतीयचतुर्थयोः क्रमव्यत्यये निदानम् ॥

ननु-भङ्गरचनाक्रममर्यादया प्रथमं तावदसंयोगिन एव यावन्तो भङ्गा भणनीयाः, ततो द्विकसंयोगिनः त्रिकसंयोगिन इत्यादयः क्रमशः। तदत्रैवं क्रमः स्यात्-स्यादस्त्येव, स्यान्नास्त्येव, स्यादवक्तव्यमेव, स्यादस्त्येव नास्त्येव,

આમ, સપ્તભંગીના ચતુર્થ ભંગથી જણાતો એવો અર્થ શું વક્તવ્ય છે, કે અવક્તવ્ય છે? આવો પ્રશ્ન થાય, તો તેના જવાબમાં હવે આપણે કહીશું કે સ્યાદ્ વક્તવ્ય જ છે, અને સ્યાદ્ અવક્તવ્ય જ છે. વ્યુત્પન્નની અપેક્ષાએ અવક્તવ્ય પદથી વાચ્ય છે. અને અવ્યુત્પન્નની અપેક્ષાએ શબ્દમાત્રથી જ અવાચ્ય છે. આ રીતે, **અવક્તવ્યપદનો અર્થ**–આ વિશે રચાયેલો દીર્ઘ નિબંધ પ્રસંગ અનુપ્રસંગથી પૂર્ણ થયો.

।। અવક્તવ્યત્વ પણ વ્યંજન પર્યાય છે ।।

શંકા : 'અવક્તવ્ય' શબ્દનો અર્થ, યુગપદ્ ઉભય, એ વ્યંજન-પર્યાય શી રીતે મનાય? કારણ કે તેમાં શબ્દ લાગુ પડે, તો જ વ્યંજન પર્યાય કહેવાય અને શબ્દ લાગુ પડે, તો તેમાં અવાચ્યતા જ ન રહી. આમ, અવક્તવ્યત્વ એ વ્યંજનપર્યાય ન માની શકાય.

સમાધાન : પોલીસ આવ્યાં નહીં, એટલે જે ચોરી થઇ, એમાં કારણ પણ પોલીસ જ માનવા પડે. આમ, પોલીસના ન આવવાને કારણે થયેલી ચોરીનું કારણ જેમ પોલીસ છે, તેમ શબ્દ લાગુ ન પડવાને કારણે આવેલી અવાચ્યતાનું કારણ પણ શબ્દ જ માનવો પડે. આમ, તે પર્યાયમાં પણ પરંપરાએ શબ્દ લાગુ પડે છે. માટે તેને વ્યંજન પર્યાય જ માનવો જોઇએ. પરંતુ, સાક્ષાત્ શબ્દ લાગુ ન પડવાથી એ અશુદ્ધ વ્યંજનપર્યાય થયો. શુદ્ધ નહીં. આ વાત ૧૭મા કાવ્યનાં વિવેચનમાં સ્પષ્ટ કરાશે. અને વળી તે અર્થનું વાચક 'અવક્તવ્ય' પદ જ છે, આવું જ જો માનો, તો-તો સાક્ષાત્ તે વ્યંજન-પર્યાય બને જ છે. ।।૧૦।।

અવ. વાર્તિકમાં લખેલી આ વાતનું સર્વ સંકલન પ્રસ્તુત કાવ્યમાં કરતાં કહે છે-

અવક્તવ્યતાતણું કહ્યું, નિશ્ચિત શબ્દથી જાણ;
અકથન કારણ એક છે, નહીં બીજું કોઇ માન ।।૧૧।।

વાર્તિક. કહેવાના કે જાણવાના અસામર્થ્યને કારણે અવક્તવ્યતા નથી. વિકલ્પજ્ઞાનથી જાણી પણ શકાય છે, અને 'અવક્તવ્ય' પદથી કહી પણ શકાય છે. પરંતુ અસાંવ્યવહારિક હોવાથી પ્રચલિતસાંકેતિક એવાં નિયત શબ્દથી અવાચ્ય

स्यादस्त्येवावक्तव्यमेव, स्यान्नास्त्येवावक्तव्यमेव, स्यादस्त्येव नास्त्येवावक्तव्यमेव चेति। ततः किमर्थमत्र तृतीयचतुर्थयोर्व्यत्ययः कृत इति चेत्?

सत्यम्, भङ्गरचनाक्रममर्यादायामनुस्रियमाणायां स एव क्रमो वाच्यः, क्रम-व्यत्ययप्रयोजनं तु शिष्यप्रज्ञापनासौकर्यम् । तथा हि–प्रथमम् 'अस्ति' भङ्गेन सत्त्वभाव उक्तः, तदुत्तरं यदि भावात्मकं तत्कथञ्चिदस्ति, तर्हि किं कथञ्चित्तदभावोऽपि? इति जिज्ञासाऽऽनुकूल्येन तदभावख्यापकं 'नास्ति' इति उक्तम्। अथ तयोर्द्वयोरपि दैशिकसामानाधिकरण्यविषया जिज्ञासा प्रथमं भवति, तदुत्तरं तयोः समानदेशस्थितयोः कालिकसामानाधिकरण्यद्योतिका जिज्ञासा जायते। दैशिके सामानाधिकरण्ये प्रथमं जिज्ञासिते प्रथमं प्रज्ञापयितव्ये च द्वयोर्द्विकसंयोगी भङ्गो भवति 'स्यादस्त्येव नास्त्येवे'ति। तेनास्तित्वनास्तित्वयोः दैशिकं सामानाधिकरण्यमुच्यते। अत उक्तं भवति, न हि कुत्रचिदस्तित्वं, कुत्रचनान्यत्र नास्तित्वं च विद्यते, सामानाधिकरण्येन तत्रैवास्तित्वं नास्तित्वं वर्तेते इदृशार्थख्यापकस्तृतीयो भङ्गः। अथ प्रश्न उदेति, स्यात्समानदेशेनैवास्तित्वनास्तित्वे, परन्तु यथाऽऽम्रेऽपक्वतापक्वताकालदशायां नीलपीतरूपे, यथा वा घटेऽपक्वतापक्वतादशायां कालरक्तरूपे, सामानाधिकरण्येन। तथाऽत्रापि किं कालभेदेन सामानाधिकरण्येनास्तित्वनास्तित्वे अथवा समानकालेन सामानाधिकरण्येन ते? इत्येतज्जिज्ञासापरिपूर्तये तदा कथ्यते–'स्यादवक्तव्यमेव', युगपत्–कालाभेदेन-द्वयात्मकमेवेति तदर्थः। तन्नाम–प्रथमं केवलं दैशिकसामानाधिकरण्यं द्वयोस्तृतीयेन कीर्तितम्, अथ कालिकसामानाधिकरण्यपूर्वकत्वेन दैशिकसामानाधिकरण्यं द्वयोः चतुर्थेन साधितम्, जिज्ञासा प्रथमं शुद्धविषयिका स्यात्, तदनु विशिष्टविषयिकेति। एवं जिज्ञासाऽनुलोमतः प्रज्ञापनाऽऽनुकूल्येन च तृतीय–तुर्य–व्यत्ययः। **सम्मत्यादौ** तु भङ्गरचनाक्रममर्यादामनुसृत्य न तृतीयतुर्यव्यत्ययः समादृत इति ध्येयम्। तदेवं न शास्त्रकृतां गीतार्थानां विवक्षाभेदेन भिन्नभिन्नोक्तौ व्यामोहः कार्यः, ऐदम्पर्यं गवेषणीयमिति **दिक्**।

ततः प्रथमद्वितीयतृतीयैस्साकं चतुर्थस्य मिश्रणात् सञ्जाताः पञ्चमषष्ठौ

છે, તેથી અવક્તવ્ય છે. એવો અર્થ સમજવો. ।।૧૧।।

।। તૃતીય ચતુર્થ વાક્ય ભિન્નાર્થક છે ।।

અવ. શંકા : પ્રથમના બે ભંગ કરતાં ત્રીજો ભાંગો હજી અલગ માનીએ. કારણ કે પ્રથમનાં બેમાં એક એકનું જ અવગાહન છે. અને તૃતીયમાં બન્નેનું અવગાહન છે. પરંતુ ત્રીજા ચોથામાં શું ફરક? બન્નેમાં બન્નેનું જ અવગાહન છે.

વચન પર્યાય વિભેદથી, જ્ઞાનાકારનો ભેદ;
ત્રીજા ચોથા ભંગનું, ભેદક કહ્યું વિશેષ ।।૧૨।।

વાર્તિક. સમાધાન : ભલે બન્નેમાં વિષય એક જ હોય. પરંતુ, પર્યાયની વિલક્ષણતાને કારણે વિષયતાનો ભેદ છે. ત્રીજા ભંગથી અલગ પર્યાય જણાય. ચોથા ભંગથી અલગ જણાય. માટે બન્નેનું જ્ઞાન થવા છતાંય વિલક્ષણતાથી બન્નેનું જ્ઞાન થયું. એટલે પર્યાયભેદ-વિષયતાભેદ-પ્રયુક્ત વિષયભેદ, અને તેથી જ્ઞાનાકારનો ભેદ. ત્રીજા ભાંગામાં સમૂહાલંબનતયા એકત્ર દ્વયમ્ એ રીતે જ્ઞાન થાય અને ચોથા ભાંગામાં અન્યોન્ય સંમિશ્રિત રીતે ઉભયાત્મક એક છે. આ રીતે ઉભયનું જ્ઞાન થાય છે. ।।૧૨।।

અવ. હવે શેષ ભાંગા કહે છે-

પ્રથમ દ્વિતીયને તૃતીયનો, ચોથાથી સંયોગ;
કરતાં પંચમ ષષ્ઠને, સપ્તમનો હુએ યોગ ।।૧૩।।

વાર્તિક. પહેલાં, બીજાં અને ત્રીજા ભાંગાની સાથે ચોથા ભાંગાનો સંયોગ કરતાં દ્વિકસંયોગી પાંચમો-છઠ્ઠો અને સાતમો ત્રિકસંયોગી ભાંગો બને છે.

।। ત્રીજા-ચોથા ભાંગાના ક્રમમાં ફરક કેમ? ।।

શંકા : ભાંગાની રચના જે ક્રમ પ્રમાણે કરીએ છીએ, એ ક્રમને અનુસારે તો પહેલાં સર્વે અસંયોગી ભાંગા કહેવા જોઇએ. ત્યારબાદ સંભાવ્યમાન સર્વે દ્વિકસંયોગી, ત્યારબાદ ક્રમથી સંભાવ્યમાન સર્વે ત્રિકસંયોગી, ચતુષ્કસંયોગી ઇત્યાદિ...

આ રચનાના ક્રમને અનુસારે તો સપ્તભંગી આ રીતે રચાવી જોઇએ- स्यादस्त्येव, स्यान्नास्त्येव, स्यादवक्तव्यमेव, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव, स्यादस्त्येव

द्विकसंयोगिनौ सप्तमश्च त्रिकसंयोगीति सङ्क्षेपः ।।१३।।

अव. न च– यद्यत्र प्रथमचतुर्थयोर्दैशिकं सामानाधिकरण्यं पञ्चमभङ्गेनोच्यते तर्ह्येतयोस्तत्पूर्वककालिकसामानाधिकरण्यनिर्वर्तकोऽन्योऽष्टमोऽपि भङ्गः किं न स्यादिति **वाच्यम्**, तत्राह–

अनवस्थारहितत्वे, सत्यन्यूनाधिकत्वतः ।
परं भङ्गा भवेयुश्चे–त्सप्तैवेति विभाव्यताम् ।।१४।।

।। भङ्गसप्तत्वसङ्ख्यानियमनम् ।।

टीका – अनवस्थामुक्तयावद्भङ्गविचारे सप्तैव भङ्गा भवन्ति, न न्यूना नाऽधिका:। इति **सप्तभङ्ग्याविर्भूतिबीजन्तु अननवस्थितयावद्भङ्ग–विरचनमेव**। तथा च–यदि प्रथम–चतुर्थयोरपि कालिकसामानाधिकरण्येन दैशिकसामानाधिकरण्यख्यापको भङ्गो भवेत्, तदा स 'अवक्तव्य' एव कथनीयः। तदा च तेन सह चतुर्थभङ्गरूपावक्तव्यस्यापि कस्यचिदपि भङ्गस्य वा दैशिकं कालिकञ्च सामानाधिकरण्यं विचारणीयम्, कालिके सामानाधिकरण्ये विचारिते च चतुर्थनवीनयोर्युगपद्बोधाद–वक्तव्यत्वं समागतम्, ततस्तदर्थकेनावक्तव्यभङ्गेन सह चतुर्थस्य नवीनस्य च दैशिककालिकसामानाधिकरण्ये विचार्ये इत्यनन्ताऽनवस्थिता भङ्गसन्ततिः ।

अनवस्थाभयादेव च यथा प्रथमद्वितीययोर्दैशिकसामानाधिकरण्येन निर्वृत्तस्तृतीयो भङ्गो विरच्यते, तथा प्रथमतृतीययोर्द्वितीयतृतीययोर्वा दैशिक–सामानाधिकरण्येन निर्वृत्तो नवीनो न कल्प्यते। तथा सति प्रथमतृतीयसंयोगजनवीनेन प्रथमस्य दैशिकसामानाधिकरण्यवशान्नवीनो भङ्गः स्यात्, नवीन–द्वितीययोरपि दैशिकसामानाधिकरण्यनिर्वृत्तो नवीनः स्यात्, एवमत्राप्यनवस्थाराक्षसी अपूरितोदरा प्रवर्तते ।

अन्यच्च प्रथमतृतीययोः, द्वितीयतृतीययोर्वा मिश्रणे पौनरुक्त्यमपि। यतः 'स्यादस्त्येव अस्त्येवनास्त्येव चे'त्येवं कथने द्विवारमस्तिशब्दस्य प्रयोगः। न च ते

स्यादवक्तव्यमेव, स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव। પણ અહીં તો ત્રીજા ભાંગાના સ્થાને ચોથો ભાંગો કહ્યો છે, ને ચોથા ભાંગાના સ્થાને ત્રીજો કહ્યો છે. આવો ક્રમવ્યત્યય કેમ કર્યો?

સમાધાન : ક્રમવ્યત્યય કરવાથી શિષ્યને સમજાવવામાં સરળતા રહે છે. તે આ રીતે - પહેલાં 'અસ્તિ' એ ભાંગા દ્વારા સત્ત્વનો ભાવ કહ્યો. ત્યારબાદ, જો કોઈક રીતે સત્ત્વભાવ હોય, તો શું કોઈ રીતે તેનો અભાવ પણ છે? આવી જિજ્ઞાસા થાય, એના જવાબમાં 'નાસ્તિ' કહીને તેનો અભાવ, અભાવાત્મક સત્ત્વ બતાવ્યું. હવે, ત્યારબાદ સૌ પ્રથમ તે બન્નેનાં દૈશિક સામાનાધિકરણ્ય બાબતે જિજ્ઞાસા જાગે છે. એના સમાધાનમાં જવાબ અપાય છે કે स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव। આથી જણાય છે કે અસ્તિત્વ અને નાસ્તિત્વ, ભાવ અને અભાવ તે એક જ વસ્તુમાં છે. આથી, બન્ને વચ્ચે સામાનાધિકરણ્ય છે. હવે પ્રશ્ન ઉઠે છે કે ભલે બન્ને એક જ દેશમાં રહ્યાં હોય. પણ જેમ કેરીમાં લીલો રંગ અને પીળો રંગ તે જ કેરીમાં કાલભેદથી રહે છે. અર્થાત્ ભિન્નકાલે સમાનદેશવૃત્તિત્વ છે. તેમ પ્રસ્તુતમાં ભાવાભાવનું પણ શું કાલભેદે સમાનાધિકરણવૃત્તિત્વ છે, કે સમાનકાલે? આ જિજ્ઞાસાને પૂર્ણ કરવા માટે ત્યારબાદ स्यादवक्तव्यमेव એવો ભાંગો રચાય છે. આવું વાક્ય ગુરુ બોલે અને એના દ્વારા બન્નેનું યુગપદ્ સમાનકાલે-વૃત્તિત્વ છતું થાય છે. એટલે પહેલા માત્ર દૈશિક સામાનાધિકરણ્ય કહેવાયું. અને પછી કાલિક સામાનાધિકરણ્ય પૂર્વકનું દૈશિક સામાનાધિકરણ્ય કહેવાયું અને જિજ્ઞાસા પણ પહેલાં શુદ્ધ વિષયની થાય, પછી વિશિષ્ટ વિષયની થાય. આમ, જિજ્ઞાસાને અનુસરીને, પ્રજ્ઞાપનાની સરળતા માટે ભંગની રચનાના ક્રમમાં ફેરફાર કર્યો છે. **શ્રી પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર** ઇત્યાદિ ગ્રંથોમાં આ ક્રમે સપ્તભંગી બતાવી છે. ત્યારે **શ્રી સમ્મતિતર્ક** ઇત્યાદિ ગ્રંથોમાં ભંગરચનાનાં ક્રમની મર્યાદાને અનુસરીને ત્રીજા-ચોથામાં ફેરફાર નથી કર્યો. આમ, ગીતાર્થ શાસ્ત્રકારોના વિવક્ષાભેદથી ભિન્ન ભિન્ન પ્રતિપાદનોમાં વ્યામોહ ન કરવો. તાત્પર્યની ગવેષણા કરવી. **ઈતિ દિક્** ॥૧૩॥

અવ. શંકા : જો પાંચમા ભાંગાથી પ્રથમ અને ચતુર્થનું દૈશિક

द्वे अप्यस्तिशब्दे भिन्नार्थके। स्वपर्यायैरेवापादितयोरस्तित्वयोर्मध्ये भेदाभाव एव। ततः पुनरुक्तता। सत्यां च कथञ्चिद् भिन्नतायां तयोर्भिन्नसप्तभङ्गी स्यादिति **दिक्।**

।। प्रथमचतुर्थयोः पुनरुक्तताशङ्काव्युदासः ।।

न च चतुर्थभङ्गस्यापि अस्तित्वनास्तित्वोभयात्मकत्वात्, तेन सहापि प्रथमादीनां मिश्रणं न स्यात्, पौनरुक्त्यापत्तेरिति **वाच्यम्।** अज्ञातसमयानामिदं वचनम्। प्रथमे सत्त्वस्यैवास्तित्वत्वेनाऽस्तित्वस्वरूपज्ञानम्, द्वितीये नास्तित्वत्वेन नास्तित्वस्वरूपज्ञानम्, तृतीयेऽस्तित्वत्वनास्तित्वत्वाभ्यां द्वयोरप्यस्तित्वनास्तित्वयोः ज्ञानम्, चतुर्थे तु अस्तित्वनास्तित्वोभयालिङ्गितस्यैकस्यैव विलक्षणस्वरूपस्य सत्त्वस्य ज्ञानम्। अत एव तत्स्वरूपं न अस्तित्वमिति कथ्यते न नास्तित्वमिति। अत एव नैतत्स्वरूपमुख्यतायां वस्तुन्यस्तिशब्दः प्रयुज्यते नापि नास्तिशब्दः, एकात्मकत्वाच्च नोभयशब्द इत्यवक्तव्यमेव तद्वस्तु, अवक्तव्यत्वमेव च तत्स्वरूपम्। इत्यतः स्यादस्तित्वाऽस्तित्वनास्तित्वयोः संमिश्रणे पुनरुक्तिर्भवति, न तु स्यादस्तित्वावक्तव्यत्वयोर्मिश्रणे इत्येवं सूक्ष्मधियाऽभ्यूह्यम् ।

एतेन च विधिमुख्यतया सत्त्वे जिज्ञासिते तस्य च विधिमुख्यतयोत्तरे दीयमाने यथा-"स्यादस्त्येवे"ति भङ्गो रच्यते, तथा तस्यैव विधिमुख्यतया सत्त्वस्य निषेधमुख्यतयोत्तरे दीयमाने "स्यान्न नास्त्येवे"ति भङ्गोऽपि रच्यताम्? घटास्तित्वं यथा 'घटोऽस्ति', 'न घटो नास्ती' ति च द्वाभ्यामपि वाक्याभ्यामुच्यते, तथाऽत्राऽपि सैव गतिरिति, न चेष्टापत्तिः, भङ्गाधिक्यात्, भङ्गसप्तत्वव्युदासप्रसङ्गा-दितीत्या**द्यपि निरस्तम्।** तत्पदार्थप्रतिपादकयावद्वाक्यसमाहार एव सप्तभङ्गीति न लक्षणमस्माकम्। तथा सति सर्वेऽपि भङ्गा विधिमुख्यतया निषेधमुख्यतया चोच्यतां नाम, एवं च चतुर्दशभङ्गी रच्यतां देवानुप्रियेण सूक्ष्मगवेषकेण।

परन्त्वनवस्थारहितभङ्गविरचनमर्यादायां स्थित्वा विचारे क्रियमाणे सप्तैव भङ्गा आविर्भवन्ति, न न्यूना वा नाऽधिका वेति स्थितम्। भङ्गविरचना च न निषेधमुख्यतया क्रियते, किन्तु विधिमुख्यतयैव क्रियते इति दिक्।

સામાનાધિકરણ્ય જણાતું હોય, તો તે બન્નેનાં (તે બન્નેથી જણાતાં પદાર્થોનાં-સત્ત્વ અને અવક્તવ્યત્વનાં) કાલિક સામાનાધિકરણ્ય પૂર્વક દૈશિક સામાનાધિકરણ્યને જણાવનારો નવો આઠમો પણ ભાંગો હોવો જ જોઇએ?

અનવસ્થા વિરહિતપણે, ભંગરચન મરજાદા;

ભાંગા સાત જ સંપજે, નવિ ઊણાં નવિ જ્યાદા ।।૧૪।।

।। ભાંગા સાત જ હોય, એ નિયમ ।।

વાર્તિક. સમાધાન : ત્રણ પદોથી અનવસ્થા રહિત ભાંગા બનાવો, તો વધુમાં વધુ સાત જ થાય. એટલે સપ્તભંગીનું બીજ ''અનવસ્થા મુક્ત ભંગરચના મર્યાદાપૂર્વક સંભાવ્યમાન યાવત્-સર્વ-ભાંગાની રચના'' એ છે.

હવે, જો પ્રથમ-ચતુર્થના પદાર્થોમાં કાલિક સામાનાધિકરણ્યથી દૈશિક સામાનાધિકરણ્ય કહેનારો ભાંગો હોય, તો એ પણ 'स्यादवक्तव्य एव' એ કહેવો જોઇએ. અને હવે, તેની સાથે ચતુર્થ ભંગ રૂપ અવક્તવ્યને અથવા કોઇપણ ભંગને (તે બન્નેના પદાર્થને) દૈશિક અને કાલિક સામાનાધિકરણ્ય દ્વારા કહેવા રહ્યાં. એમાં'ય જ્યારે તે બન્નેને કાલિક સામાનાધિકરણ્યથી કહો, ત્યારે અવક્તવ્યત્વ આવવાથી વળી પાછો નવો 'स्यादवक्तव्य एव' ભાંગો રચાય. આ નવીન ભાંગાની સાથે વળી પાછાં બધાં'ય ભાંગાને દૈશિક-કાલિક સામાનાધિકરણ્યથી કહેવાં રહ્યાં. આ રીતે અંતવિહીન અનવસ્થા ચાલે.

અનવસ્થાનાં ભયથી જ જેમ પ્રથમ-દ્વિતીયના દૈશિક સામાનાધિકરણ્યથી બનેલો ત્રીજો ભંગ કહેવાય છે, તેમ પ્રથમ અને તૃતીયના અથવા દ્વિતીય અને તૃતીયના દૈશિક સામાનાધિકરણ્યથી રચાયેલો નવો ભંગ નથી કહેવાતો. અન્યથા, પ્રથમ તૃતીય કે દ્વિતીય તૃતીયનાં મિશ્રણથી થયેલા નવા ભાંગાની સાથે પ્રથમ વગેરેના દૈશિક સામાનાધિકરણ્યથી નવો ભંગ રચાય. પછી નવીનની સાથે પ્રથમાદિના દૈશિક સામાનાધિકરણ્યથી વળી પાછો નવો ભંગ રચાય. આમ, અહીં પણ નિરંતર અનવસ્થા પ્રવર્ત્યા કરે.

વળી, પ્રથમ-તૃતીય કે દ્વિતીય-તૃતીયના મિશ્રણથી પુનરુક્તિદોષ પણ છે. જેમ કે, ૧લા-૩જાના મિશ્રણથી 'स्यादस्त्येव स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव' આવો

इत्थं च सप्तैव भङ्गा इत्यत्रापि नैकान्तता। तथाहि यदि विषयवैलक्षण्ये सत्येव भङ्गभेद उच्येत, तदा स्यातामाद्यौ द्वावेव। तयोर्जायमानबोधयोर्विषययोस्सर्वथा भिन्नत्वात्, प्रथमात्सत्त्वविषयको बोधो जायते, द्वितीयात्तु सत्त्वाभावविषयकः, सत्त्वापादकस्वपर्यायवद्घटादिर्भावस्वरूपेण सत्त्ववदिति प्रथमवाक्यजज्ञानविषयः सत्त्वानापादकपरपर्यायवद्घटादिश्चाऽभावस्वरूपेण सत्त्ववदिति द्वितीयवाक्यजज्ञानविषयः। इति तयोरेकान्तत एव भिन्नत्वम्। तृतीयादीनां तु भङ्गानां तज्जन्यज्ञाने विषयानां भेदाभावादेव न भिन्नत्वम्, प्रथमद्वितीयभङ्गेन ज्ञातावेव भावाऽभावा इतरैर्भङ्गैरन्यान्यरीत्या ज्ञायेते, इति विषयभेदाभाव एव। अत एव **भगवतीसूत्रा**दावागमे 'रयणप्पभापुढवी किं सासया असासया?' इति प्रश्ने कृते प्रत्युत्तररूपेण "गोयमा! सिय सासया सिय असासया।" इति द्वावेव मौलभङ्गावुक्तौ, न तु सप्तभङ्गी प्रतिपादिता। ताभ्यामेव पूर्णबोधस्य जायमानत्वात्। भावाभावात्मकत्वाद्वस्तुनः।

एवं विषयभेदोऽस्तु न वा यावन्त एव भङ्गा वाच्या इति कथने तु पूर्वोक्तरीत्याऽनवस्थासहिततद्रहिता वाऽनन्ता एव भङ्गा आपद्येरन्। इति ततोऽपि सप्तभङ्गीत्वाभाव एव।

परन्तु यदा अननवस्थितभङ्गरचनामर्यादया विरच्यन्ते, तदा सप्तानामेव भङ्गानामाविर्भूतिरिति तथैव तदैव सप्तभङ्गीत्वनियम इति "सप्त एव भङ्गा?" इत्यत्रापि अहो विजयते स्याद्वादः, 'कथञ्चित्सप्तैव भङ्गाः, कथञ्चिन्न सप्तैवे'ति एतच्चास्मदनुप्रेक्षासारः, **तत्त्वं बहुश्रुता विदन्ति** ।।१४।।

अव. सप्तसु नयेषु कुत्र नये कस्य भङ्गस्यावतार इति किञ्चित्**सम्मतितर्का**दिग्रन्थानुसारेण समालोक्यते-

अर्थग्राहिनयैरत्र, विचारे त्वाद्यकल्पना।
सङ्ग्रहेण द्वितीयस्य, व्यवहारेण कीर्तिता ।।१५।।

ભાંગો રચાયો. આમાં બે વાર 'અસ્તિ' પદ વપરાયું. પણ તે બન્ને પદનાં અર્થ ભિન્ન-ભિન્ન નથી જ. સ્વપર્યાયથી જ અસ્તિત્વ આવે છે. એમાં ભેદ નથી. આથી પુનરુક્તિ દોષ આવે. અને વળી બન્ને વચ્ચે કથંચિદ્ ભિન્નતા માનો તો બન્ને ભિન્ન ભિન્ન પર્યાયો પર ભિન્ન ભિન્ન સપ્તભંગી થાય. **ઈતિ દિક્.**

।। પ્રથમ-ચતુર્થનાં મિશ્રણમાં પુનરુક્તિ નથી ।।

શંકા : જો તૃતીય ભંગ એ અસ્તિ-નાસ્તિ ઉભયરૂપ હોવાથી તેની સાથે પ્રથમાદિના મિશ્રણથી પુનરુક્તિ આવે છે. તો ચતુર્થભંગ પણ તદુભયાત્મક હોવાથી તેની સાથે પ્રથમાદિના મિશ્રણરૂપ પાંચમા વગેરે ભંગો પણ ન બને. કારણ કે એવું કરવાથી પણ પુનરુક્તિ દોષ આવશે?

સમાધાન : જેઓ શાસ્ત્રને જાણતા નથી, તેઓ જ આવું કહે. પ્રથમ ભાંગાથી ભાવાત્મકત્વેન અસ્તિવસ્તુ જાણી, બીજા ભાંગાથી અભાવાત્મકતયા જાણી. ત્રીજા ભાંગાથી ભાવસ્વરૂપ અને અભાવસ્વરૂપને ભાવત્વેન અને અભાવત્વેન ક્રમથી જાણ્યાં અને ચોથા ભાંગાથી તો ભાવત્વેન ભાવ અને અભાવત્વેન અભાવ બન્નેથી એકીસાથે યુક્ત 'અસ્તિ' વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્ બે સ્વરૂપોનું નહીં પણ તે બન્નેથી યુક્ત-સંમિશ્રિત-કથંચિત્ બન્નેથી ભિન્ન એવાં એક જ સ્વરૂપનું જ્ઞાન થાય છે. અર્થાત્ જેમ ત્રીજા ભાંગાથી બે સ્વરૂપોનું ભાન થાય છે. તેવું અહીં નથી. અહીં તો ઉભયાત્મક એક જ સ્વરૂપનું ભાન થાય છે. અને તે સ્વરૂપમય વસ્તુને વિશે અસ્તિ કે નાસ્તિ કે બીજો કોઇ વ્યાવહારિક એક શબ્દ લાગુ પડતો નથી, માટે તે વસ્તુ અવક્તવ્ય કહેવાય ને તે સ્વરૂપ અવક્તવ્યત્વ કહેવાય છે. આથી, 'સ્યાદ્ અસ્તિ, સ્યાદ્ અસ્તિ, નાસ્તિ' આવું કહેતા પુનરુક્તિ છે. પણ, 'સ્યાદ્ અસ્તિ, સ્યાદ્ અવક્તવ્ય' આવું કહેતાં પુનરુક્તિ જરાય નથી.

આમ, **અનવસ્થારહિતપણે ભંગરચનાની મર્યાદા મુજબ અન્યૂનાધિકપણે સાત જ ભાંગા થાય.** આ નિયમમાં પ્રથમ વિશેષણની સાર્થકતા જોઇ, હવે બીજા વિશેષણની અનિવાર્યતા વિચારાય છે.

શંકા : સત્ત્વની-વિધિ મુખ્યતાએ જિજ્ઞાસા થાય અને વિધિ મુખ્યતાએ

तृतीयस्य द्वयोरेव, तयोः सम्मिलने पुनः।
चतुर्थस्यर्जुसूत्रेणा–ऽन्येषां मिश्रात्तु सम्मतौ ।।१६।। युग्मम्।।

।। सम्मतितर्कोक्तः सप्तभङ्ग्यां सप्तनयसमवतारः ।।

टीका – सप्तसु नयेषु द्वौ मौलौ विभागौ, आद्याश्चत्वारोऽपि अर्थग्राहिनयाः अन्त्यास्त्रयो व्यञ्जनग्राहिनयाश्च इति। अर्थग्राहिणो नया अर्थपर्याया उच्यन्ते, व्यञ्जनग्राहिणश्च व्यञ्जनपर्याया गद्यन्ते इति। तेषां यथाक्रममर्थपर्यायव्यञ्जनपर्याय-विषयकत्वात्, विषयविषयिणोरभेदोपचारात्तेषामपि अर्थपर्याय–व्यञ्जनपर्यायशब्द-वाच्यत्वमिति।

अत्र प्रथमं तावदर्थग्राहिनयेषु विचारः क्रियते। तत्र नैगमो यः सामान्यग्राही स सङ्ग्रहेऽन्तर्भूतः विशेषग्राही च व्यवहारेऽन्तर्भावितः। इत्यतस्त्रिषु नयेषु व्यवहारसङ्ग्रहर्जुसूत्रेषु को नयः कं भङ्गं रचयति, इत्यत्रोक्तं **सम्मतौ**–

'स्यादस्त्येवे'ति प्रथमं भङ्गं सङ्ग्रहो रचयति, द्वितीयं व्यवहारः, स्यादवक्तव्यमेवेति चर्जुसूत्रः। सङ्ग्रहव्यवहारमिश्रणे तृतीयस्य; सङ्ग्रहर्जुसूत्र-व्यवहारर्जुसूत्र–सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रसम्मिश्रणे सति च पञ्चम–षष्ठ–सप्तमानां कल्पनेति गाथाद्वयसङ्क्षेपः।।

।। अत्र महोपाध्यायानां समीक्षा ।।

अथ → स्यादवक्तव्य एवेति भङ्गः किमिति ऋजुसूत्रेणोच्येत? युगपत्सत्त्वासत्त्वाभ्यामादिष्टं वस्तु हि सङ्ग्रहव्यवहारावप्यवक्तव्यमेव ब्रूतः, सङ्ग्रह-व्यवहारौ युगपदुभयथाऽऽदिशत एव नेति चेत्? ऋजुसूत्रोऽपि कथं तथादेष्टुं प्रगल्भताम्, मध्यमक्षणरूपायाः सत्तायास्तेनाप्यभ्युपगमात्? सङ्ग्रहाभिमतयावद्-व्यक्त्यनुवृत्तसामान्यानभ्युपगमादृजुसूत्रेणावक्तव्यत्वभङ्ग उत्थाप्यते इति चेत्? सोऽयं प्रत्येकावक्तव्यत्वकृतोऽवक्तव्यत्वभङ्गः, तदुत्थापने च सङ्ग्रहोऽपि समर्थः, ऋजुसूत्राभिमतमध्यमक्षणरूपसत्तानभ्युपगन्त्रा तेनापि तदुत्थापनस्य सुकरत्वादिति चेद्? ← इति सुदीर्घः पूर्वपक्षो **नयोपदेशे** रचितः। तस्य चायं प्रत्युत्तरः प्रदत्तः

પ્રતિપાદન થાય. તો જેમ 'સ્યાદસ્ત્યેવ' આ ભાંગો રચાય છે. તેમ તેનું નિષેધ મુખ્યતયા પ્રતિપાદન થાય, ત્યારે 'સ્યાન્ન નાસ્ત્યેવ' આવો ભાંગો પણ રચાવો જોઇએ. ઘટની હાજરી બે રીતે દર્શાવી શકાય. 'ઘટ છે' એમ વિધિ મુખ્યતાએ, અને 'ઘટ નથી એવું નથી' આમ નિષેધ મુખ્યતાએ તેમ અહીં પણ થાય. આ તમને ઇષ્ટાપત્તિરૂપ પણ ન કહી શકાય, અન્યથા ભંગની સંખ્યા વધી જાય.

સમાધાન : અમે એમ નથી કહ્યું કે તે પદાર્થના પ્રતિપાદક સંભવિત સર્વ વાક્યોનાં સમૂહને સપ્તભંગી કહેવાય. એમ હોતે છતે સર્વ પદાર્થોને વિધિ અને નિષેધની મુખ્યતાએ પ્રતિપાદન કરીને સૂક્ષ્મ ગવેષક તે મિત્ર દ્વારા સપ્તભંગીની જગ્યાએ ચતુર્દશભંગી જ રચાઓ ક્યાં વાંધો છે!

પણ અમે કહ્યું છે કે અનવસ્થા ન આવે એ રીતે અને ભંગની રચનાની મર્યાદાનું અનુસરણ કરવા પૂર્વક થતાં વાક્યો, જે સાત જ હોય છે, તેના સમૂહને સપ્તભંગી કહેવાય. અને ભંગ રચના ક્યારેય નિષેધની મુખ્યતાએ નથી થતી. પણ હંમેશા વિધિની મુખ્યતાએ જ થાય છે. **ઇતિ દિક્.**

આથી, ભાંગા સાત જ છે. અહીં પણ અનેકાન્ત છે. સ્યાત્ સાત જ છે. સ્યાત્ સાત નથી જ. તથા હિ-વિષયની વિલક્ષણતા હોય તો જ ભાંગા અલગ થાય. આવો નિયમ કરો, તો પ્રથમનાં બે જ ભાંગા થાય. કારણ કે એનાથી વાચ્ય અર્થ એકદમ ભિન્ન છે. ત્રીજા વગેરે ભંગ દ્વારા કાંઇ સાવ જ ભિન્ન અર્થ જણાતો નથી. પ્રથમ-દ્વિતીયથી જાણેલા સત્ત્વાસત્ત્વને જ ભિન્ન ભિન્ન રીતે જાણવાના હોય છે. આથી જ **શ્રીમદ્ ભગવતી સૂત્ર**માં પણ 'रयणप्पभापुढवी किं सासया असासया?' આવો પ્રશ્ન શ્રીગૌતમસ્વામીજીમુખે દર્શાવી, ભગવાન મહાવીરનો ઉત્તર દર્શાવ્યો છે. 'સ્યાત્ શાશ્વત જ છે. સ્યાત્ અશાશ્વત જ છે.' આ રીતે, મૂળ બે જ ભાંગા કહ્યા છે. પણ સપ્તભંગી નથી બતાવી-કહી. કારણકે પૂર્ણ બોધ તો તે બે ભાંગાથી પણ થઇ શકે છે. માટે સપ્તભંગી જ કહેવી જરૂરી ન બને.

આમ, વિષયભેદ હોય કે ન હોય, સંભવિત સર્વ ભાંગા કહેવા. આવો સિદ્ધાંત લો, તો અનવસ્થા સહિત કે અનવસ્થા રહિત એવાં અનંતા ભાંગા બને.

→ अत्रेदमाभाति–सङ्ग्रहव्यवहारौ युगपन्नोभयथाऽऽदेष्टुं प्रगल्भेते, स्वानभिमतांशादेशेऽनिष्टसाधनत्वप्रतिसन्धानात्, ऋजुसूत्रस्य तु वर्तमानपर्यायमात्रग्राहिणस्तिर्यगूर्ध्वताधारांशान्यतररूपं सामान्यमन्यापोहरूपो विशेषश्चेति द्वावपि संवृतावेवेति तदपेक्षया तदुभयथाऽऽहार्यतदादेशसम्भवादवक्तव्यत्वभङ्गोत्थापनमनाबाधम्। ←

।। महोपाध्यायवचसां तात्पर्यगवेषणा ।।

अत्रेदं विचार्यते, यथा सङ्ग्रहो व्यवहाराभिमतं सत्त्वं न मन्यते, किन्तु न सर्वथैव सत्त्वं न मन्यते। तथैवर्जुसूत्रोऽपि स्यात्सङ्ग्रहव्यवहाराभिमतं सत्त्वं न मन्येत, क्षणिकं सत्त्वं तु मन्यत एवेति, कथं तस्य सत्त्वेऽसहमतिः? अन्यच्च न सामान्यविशेषाभ्यां युगपदर्पिताभ्यां चतुर्थभङ्गनिष्पत्तिः, किन्तु सत्त्वासत्त्वाभ्यां युगपदर्पिताभ्यामेव। तथाऽभ्युपगमेऽपि च तिर्यगूर्ध्वताधारांशान्यतररूपस्य सामान्यस्यर्जुसूत्रेणासम्मतत्वेऽपि सन्ततिरूपस्य तु सामान्यस्य सम्मतत्वात्, अन्यापोहरूपविशेषस्यासम्मतेरपि च विशिष्टक्षणरूपस्य विशेषस्य सम्मतत्वादेव न सर्वथैव सामान्यविशेषौ तस्यापि मते संवृतौ–कल्पितावेवेति। अपि च स्वानभिमतांशेऽनिष्टसाधनत्वप्रतिसन्धानाच्चेत्सङ्ग्रहव्यवहाराभ्यामेकैकदेशीयमाहार्यं ज्ञानं न भवेत्, तदर्जुसूत्रस्य तूभयत्रापि सामान्ये विशेषे च स्वानभिप्रेतत्वात्सुतरामनिष्टसाधनत्वज्ञानादुभयाहार्यज्ञानं कथं जायेतर्जुसूत्रेण? यदि च आहार्यज्ञाने करणीये नानिष्टसाधनत्वप्रतिसन्धानं बाधकम्, तदा यथर्जुसूत्रेण तथा सङ्ग्रहव्यवहाराभ्यामप्यस्तु चतुर्थभङ्गनिष्पत्तिः। अन्यच्च अत्र किमिति सङ्ग्रह एव प्रथमं भङ्गं कल्पयति न तु व्यवहारः? स्यादस्त्येवेतिभङ्गजन्यबोधस्यास्तित्वस्य तु व्यवहारेणापि सम्मतत्वात्। इति बह्व्यः संशितयो मनो बाधन्ते।

अत्रास्माकमिदमाभाति यदुत–नाऽत्र **सम्मतौ** "केन नयेन को भङ्गो रच्यते" इति प्रश्नितम्, किन्तु "कस्मिन् भङ्गे कस्य नयस्य स्वारस्य"मिति हि विचारितम्। अयं भावः–

માટે એ રીતે પણ સપ્તભંગી ન બને.

પરંતુ, અનવસ્થારહિતપણે ભંગરચના મર્યાદા પૂર્વક જો રચાય, તો નહીં ઓછા, નહીં અધિકા, સાત જ ભાંગા બને એ નિયમ છે. માટે એ રીતે જ સપ્તભંગી છે. આમ, "શું સાત જ ભાંગા છે?" આ પ્રશ્નના જવાબમાં પણ સ્યાદ્વાદ છે, 'સ્યાત્ સાત જ છે.' 'સ્યાત્ સાત નથી જ.' આ અમારી અનુપ્રેક્ષા છે. **તત્ત્વ તો બહુશ્રુતો જ જાણે.** ॥૧૪॥

અવ. સાત નયોને વિશે કયો ભાંગો કયા નયથી રચાયો છે. એ **સમ્મતિતર્ક** વગેરે ગ્રંથનાં માધ્યમે જોઈએ.

અર્થગ્રાહીનયે પ્રથમ, ભંગ રચે સંગ્રહ;
દ્વિતીય ભંગ વ્યવહારથી, તૃતીય ઉભય મિશ્રણ ॥૧૫॥
ચોથો ઋજુસૂત્ર જ રચે, શેષ ભંગ નિપજે;
એ સહુનાં સંયોગથી, સમ્મતિ એમ વદે ॥૧૬॥

॥ સમ્મતિતર્કમાં કથિત સપ્તભંગીમાં સાત નયનો સમવતાર ॥

વાર્તિક. સાત નયોમાં જેમ દ્રવ્યાર્થિક નય અને પર્યાયાર્થિક નય આવાં બે વિભાગ છે. તેમ અન્ય રીતે અર્થગ્રાહી નય અને વ્યંજનગ્રાહી નય આવાં પણ બે મૂળ વિભાગ કરી શકાય છે. એવું કરતાં શરૂઆતનાં ચાર નયો એ અર્થપર્યાય છે, અને પાછળના ત્રણ એ વ્યંજનપર્યાય છે. એવું **સમ્મતિ**માં કહ્યું છે. અર્થાત્ પ્રથમનાં ચાર અર્થપર્યાયગ્રાહી હોવાથી એને જ અર્થપર્યાય કહેવાય. અને પછીનાં ત્રણ વ્યંજનપર્યાયગ્રાહી હોવાથી વ્યંજનપર્યાય કહ્યાં. આમાં વિષય અને વિષયીનો અભેદ થયો છે. એટલે અર્થગ્રાહી-અર્થપર્યાયવિષયક-નયો અર્થપર્યાય, અને વ્યંજનગ્રાહી-વ્યંજનપર્યાયવિષયક-નયો વ્યંજનપર્યાય.

એમાં પ્રથમ અર્થનયોથી વિચારણા કરાય છે. તેમાં નૈગમનય જે સામાન્યાંશ-ગ્રાહી, તે સંગ્રહમાં અને વિશેષાંશગ્રાહી તે વ્યવહારમાં અંતર્ભાવ પામે છે, તેથી ત્રણ અર્થનયો થયાં. તેમાંથી પ્રથમ ભાંગો સંગ્રહ રચે, બીજો વ્યવહાર, ત્રીજો ઋજુસૂત્ર, ચોથો સંગ્રહ-વ્યવહાર, પાંચમો સંગ્રહ-ઋજુસૂત્ર, છટ્ઠો વ્યવહાર-ઋજુસૂત્ર, સાતમો સંગ્રહ-વ્યવહાર-ઋજુસૂત્ર રચે છે.

सर्वैरेव नयैः सर्वेऽपि भङ्गाः सुतरां रचयिष्यन्ते, न हि "स्यादस्त्येवे"ति कथनं केवलं सङ्ग्रह एव गदिष्यति, सर्वेऽपि कथयिष्यन्ति, सर्वेषामपि स्वसम्प्रदायानुकूल्येन सत्त्वस्याभिमतत्वात्, अर्थनया अर्थप्राधान्येन व्यञ्जनगौणतया च सत्त्वं मन्यन्ते, व्यञ्जननया व्यञ्जनप्राधान्येनार्थगौणतया च सत्त्वं मन्येयुः, सङ्ग्रहो जगद्व्यापिनं सामान्यं, व्यवहारोऽन्यापोहरूपं विशेषं, ऋजुसूत्रश्च क्षणिकं, सत्त्वं तु सर्वेऽपि मन्यन्ते एव। परन्तु रचितेषु भङ्गेषु मध्ये कस्य नयस्य कुत्र स्वारस्यमित्येव विचारितं **सम्मतौ समर्थतार्किकेण।** समयपरिभाषया सा विचारणा **समवतार** उच्यते, सप्तभङ्ग्यां नयानां समवतारः कृतः। अतः केन नयेन रचितः स भङ्ग इति न वाच्यमत्र, किन्तु कस्मिन्भङ्गे कस्य नयस्य स्वारस्यमिति वक्तव्यम्। इति सूक्ष्मो भेद ऊह्यः।

तत्र सङ्ग्रहनयः सत्त्वमात्रग्राहीति स सर्वमपि वस्तुस्तोमं भावांशप्राधान्येन 'सत्' इत्येव वक्ति, इति प्रथमे भङ्गे सङ्ग्रहस्यैव स्वारस्यं भावांशप्राधान्येन तस्य निर्मितत्वात्, भावश्च सङ्ग्रहस्याकूतम्। व्यवहारनयस्य सङ्ग्रहविरोधित्वात्, स सर्वदा तन्मतस्य विरोधमेव कुरुते, सङ्ग्रहो सत् इति वदेत् तदा व्यवहार आह न सत्, अपितु वृक्ष इति, सङ्ग्रहो वृक्ष इति वदेत् तदा व्यवहार आह न वृक्षः, किन्तु नीम्ब इति। एवं यद्यत्सङ्ग्रहो मनुते तत्तस्य विरोधमेव करोति व्यवहार इति सङ्ग्रहो वदेत् सत्त्वम् व्यवहारो वदति तदाऽसत्त्वमेव। अन्यच्चान्यापोहग्राहिणः व्यवहारस्य अभावे असत्त्वे अधिकं स्वारस्यमिति द्वितीयो भङ्गः व्यवहारस्य प्रभुत्वे वर्तते अभावांशप्राधान्येन तस्य निर्मितत्वात्, अभावश्च व्यवहारस्याकूतम्। तृतीयश्च भङ्गो न ऋजुसूत्रेण रच्यते इति वाच्यम्, परन्तु सप्तभङ्गेषु तृतीये भङ्गे ऋजुसूत्रस्याधिकं निर्भर इति वक्तव्यम्। यतो नर्जुसूत्राभिमतं वस्त्वपि संव्यवहार्यम्। न च तन्मतस्य वस्तुनश्शब्देन एकेनापि वाच्यत्वमपि, संव्यवहाराभावादेव, संव्यवहारार्थकशब्दप्रयोगाभावादेवेति यावत्। न हि वर्तमानः क्षणिकपर्यायः कथयितुं पार्यतेऽपि, शब्दपरिपाट्या असङ्ख्येयसामयिकत्वात्, तावता कालेनर्जु-

।। અહીં મહોપાધ્યાયજીની સમીક્ષા ।।

પ્રસ્તુત વિષયમાં **નયોપદેશ**ના શંકા-સમાધાન જાણવાં જેવા છે. તથાહિ-

શંકા : 'સ્યાદ્ અવક્તવ્ય એવ' આ ભાંગો ઋજુસૂત્ર રચે છે. પણ યુગપત્ સત્ત્વાસત્ત્વ તો સંગ્રહનયથી કે વ્યવહારનયથી પણ અવક્તવ્ય જ છે. તો ઋજુસૂત્ર જ કેમ એને રચે? વળી, સંગ્રહ અને વ્યવહાર યુગપત્ સત્ત્વાસત્ત્વનો આદેશ જ ન કરી શકે, કારણ કે તેઓ સત્ત્વ અથવા અસત્ત્વ બન્નેમાંથી એકને જ સ્વીકારે છે. આવું જો તમે કહો, તો ઋજુસૂત્ર પણ યુગપત્ સત્ત્વાસત્ત્વને ન બતાવે. કારણકે ક્ષણિક સત્ત્વ એ એને માન્ય છે. યુગપત્ સત્ત્વાસત્ત્વ નહીં. સંગ્રહ જેવું (સામાન્ય) સત્ત્વ સ્વીકારે છે, તેવું ઋજુસૂત્ર નથી સ્વીકારતો માટે તે સત્ત્વ નથી સ્વીકારતો આવું કહો, તો સંગ્રહને અભિમત સત્ત્વને ન સ્વીકારતો ઋજુસૂત્ર જેમ અવક્તવ્ય ભાંગો રચે, તેમ ઋજુસૂત્રને અભિમત સત્ત્વ ન સ્વીકારવાથી સંગ્રહ પણ અવક્તવ્ય ભાંગો કહી જ શકે.

સમાધાન : અહીં એમ લાગે છે કે, સંગ્રહ અને વ્યવહાર એકી સાથે બન્નેનો આદેશ ન કરી શકે. કારણ કે સામાન્ય અંશ ગ્રાહી સંગ્રહને વિશેષ અંશમાં અને વ્યવહારને સામાન્ય અંશમાં અભિપ્રેતતા નથી માટે એમને એ ખોટું લાગે. જ્યારે ઋજુસૂત્રને મતે તો સામાન્ય અને વિશેષ એ બન્ને સંવૃત=કાલ્પનિક છે. એને અભિપ્રેત પદાર્થ ન તો સામાન્ય રૂપ છે, કે ન તો વિશેષ રૂપ છે. માટે તેના મતે તે બન્નેનો આહાર્ય આદેશ થઇ શકે છે. અર્થાત્ આહાર્યજ્ઞાન થઇ શકે છે. માટે ત્રીજો ભાંગો ઋજુસૂત્ર જ રચે છે.

।। મહોપાધ્યાયજીનાં વચનોની તાત્પર્યગવેષણા ।।

જો કે, પૂર્વોક્ત પ્રતિપાદન પછી પણ આટલી શંકાઓ ઉભી જ રહે છે.

શંકા-૧ : જેમ સંગ્રહ એ વ્યવહારનું સત્ત્વ નથી માનતો. પણ સર્વથા જ સત્ત્વ નથી માનતો એવું નથી. તેમ ઋજુસૂત્ર પણ ભલે સંગ્રહ-વ્યવહારાભિમત સત્ત્વને ન માનતો હોય. પણ ક્ષણિક રૂપ સત્ત્વને તો માને જ છે. તો પછી શા માટે ઋજુસૂત્ર સત્ત્વ નથી માનતો આવું કહી શકાય? અને જો તે સત્ત્વ માનતો જ હોય તો પ્રથમ ભાંગો સંગ્રહની જેમ ઋજુસૂત્રથી કેમ ન બને?

सूत्रमतवस्तुनोऽसङ्ख्यशो विनष्टत्वाच्च। भूतस्य चर्जुसूत्रेण शशशृङ्गवदसम्मतत्वादिति भवत्यृजुसूत्रस्य अवक्तव्ये चतुर्थे प्रभुत्वमिति। **इत्यस्मत्समीक्षासङ्क्षेपः** महोपाध्यायवचसामपेक्षा ज्ञातुं न वयं प्रभवामः, **अधिकं तु बहुश्रुता विदन्ति।**

इदं तु बोध्यम्, यत्तर्कपञ्चाननसम्मतिसमर्थव्याख्याकारश्रीमदभयदेवसूरीणां अतीवप्रियाणां महोपाध्याययशोविजयवाचकपुङ्गवानां वा प्रतिभापादाग्रनखाग्रप्रमिता अपि न स्मः । परन्तु यथा महोपाध्याया अपि स्वपूर्वपुरुषमलयगिरिपूज्यादीनां पूज्यानां प्रतिपादनं पूजयित्वाऽपि ततो भिन्नमेवाधिकोपपन्नं च व्याख्यानमारचयन्ति **गुरुतत्त्वविनिश्चयादौ**,अन्ते च 'अधिकं तु बहुश्रुता विदन्ती'त्युक्त्वा विरमन्ति, तदस्माभिरपि स एव पन्थाः समादृतः। इति संविग्नैर्विद्भिर्न कोपो विधेयः। तेषां रोषस्य दुरायत्यावहत्वादिति। एवमपि भवेद् यत्कुत्रचिद् ग्रन्थान्तरे पूज्यैरेवमुल्लिखितमपि स्यात्, शक्या अन्या अपि सम्भावना ऊह्याः ।।१५-१६।।

अव. अथ व्यञ्जननयानां सप्तभङ्गीसमवतारमाह-

व्यञ्जनग्राहिणां त्वत्र, मध्ये भङ्गेषु सप्तसु।
सविकल्पनिर्विकल्पौ, द्वावेवोदाहृतौ विधी ।।१७।।

टीका – ''एवं सत्तविअप्पो वयणपहो होइ अत्थपज्जाए।
वंजणपज्जाए पुण सविअप्पो निव्विअप्पो अ ।।

–सम्मतिप्रथमकाण्डे, गाथा–४१

इति गाथायाः पूर्वार्द्धं पूर्वस्मिन्श्लोकद्वये सविस्तरं विवृतम्। अत्र 'अर्थपर्याये सप्तविकल्पः' इत्यत्र 'अर्थपर्याय'शब्दस्य वाच्यार्थः 'अर्थपर्यायग्राही नयः' न मन्तव्यः, तथा सति आद्यत्रयाणां पर्यायाग्राहित्वादसङ्ग्रहो भवेत्। किन्तु व्यञ्जनाऽर्थात्मकसमग्रवस्तुनोऽर्थरूपांशग्राहिणो नया अर्थपर्यायाः, शब्दनयाश्च व्यञ्जनपर्याया इत्यर्थः। वस्त्वंश एव पर्याय इति व्याख्यायां तु आद्यत्रयाणां अर्थरूपांशग्राहित्वमिति अर्थपर्यायग्राहित्वमेव, अन्त्यानां च व्यञ्जनपर्यायग्राहित्वमेव, ततोऽर्थपर्यायग्राहिणो

શંકા-૨ : સામાન્ય અને વિશેષનો યુગપત્ આદેશ કરવાથી ચોથો ભાંગો બને છે, એવું નથી. પણ સત્ત્વ અને અસત્ત્વનો યુગપત્ આદેશ કરવાથી બને છે.

શંકા-૩ : ઋજુસૂત્ર પણ ઔપચારિક સન્તાનરૂપ સામાન્યને સ્વીકારે જ છે. અને વિશિષ્ટ ક્ષણ રૂપ વિશેષને પણ સ્વીકારે છે. આમ, જો સંગ્રહ અને વ્યવહાર અનુક્રમે સામાન્ય અને વિશેષને સ્વીકારતાં હોય, તો ઋજુસૂત્ર પણ સામાન્ય અને વિશેષને સ્વીકારે છે. તો એના મતે કદાચ સામાન્ય એ કાલ્પનિક થાય પણ વિશેષ તો ન જ થાય?

શંકા-૪ : માની લો કે ઋજુસૂત્ર સામાન્ય અને વિશેષ બેમાંથી એકે'યને માનતો નથી માટે બન્ને'ય એને અનિષ્ટ છે. તો જેમ સંગ્રહ-વ્યવહારને ઉભયાલિંગિત વસ્તુને જ્ઞાત કરતી વખતે ક્યાં તો સામાન્ય અંશમાં અને ક્યાં તો વિશેષ અંશમાં અનિષ્ટસાધનતાનું પ્રતિસંધાન થવાંને કારણે તેવું જ્ઞાન જ ન થવાથી જો તેમનાં દ્વારા ત્રીજો ભાંગો ન રચાતો હોય, તો ઋજુસૂત્રને તો તે બન્ને'ય અંશોમાં અનિષ્ટસાધનતાનું પ્રતિસંધાન થશે જ. માટે એનાથી ત્રીજો (ચોથો) ભાંગો સમાન ન્યાયે નહી જ બનાવી શકાય.

શંકા-૫ : હવે જો એમ કહો કે આ ઋજુસૂત્ર દ્વારા તો તે પદાર્થનું આહાર્ય-જ્ઞાન થાય છે. અને આહાર્યજ્ઞાન કરતી વખતે અનિષ્ટ સાધનતાનું પ્રતિસંધાન બાધક બનતું નથી. તો પછી સમાનન્યાયે માત્ર ઋજુસૂત્રથી જ નહીં. સંગ્રહ-વ્યવહારથી પણ એવું આહાર્યજ્ઞાન થઇને એવો ભાંગો રચાવામાં કોઇ વાંધો નથી.

શંકા-૬ : 'અસ્તિ' એ પ્રથમ ભાંગો સંગ્રહ જ કેમ રચે? વ્યવહારાદિ કેમ નહીં? 'સત્ત્વ' તો તેને પણ માન્ય જ છે.

આમ, ઘણા બધા સંશયો જાગે છે.

અહીં અમને એમ લાગે છે, અહીં **સમ્મતિતર્ક ગ્રંથ**માં કયાં નયથી કયો ભાંગો રચાય છે. એવું નથી કહ્યું. પરંતુ મહાવાદી **શ્રી સિદ્ધસેનદિવાકર સૂરિજી**ને એમ કહેવું છે, કે રચાઇ ગયેલી સપ્તભંગીમાં કયાં નયનો કયાં એક ભંગમાં સ્વરસ-નિર્ભર-છે.

नया अर्थपर्यायाः, व्यञ्जनपर्यायग्राहिणश्च व्यञ्जनपर्यायाः, विषयविषयिणोरभेदात्।[१]

अथास्या उत्तरार्धं अस्मिन्श्लोके विव्रियते-तदित्थं विवृतं **नयोपदेशे** → व्यञ्जनपर्याये-शब्दनये पुनः सविकल्पः प्रथमे पर्यायशब्दवाच्यताविकल्पसद्भावादर्थस्यैकत्वाच्च, द्वितीय-तृतीययोर्निर्विकल्पश्च द्रव्यार्थात् सामान्यलक्षणान्निर्गतस्य पर्यायरूपस्य विकल्पस्याभिधायकत्वात् तयोः ← अत्र द्रव्यार्थात् सामान्यलक्षणात् निर्गतः पर्यायः इत्यस्यायमर्थः, शब्दभेदेऽपि द्रव्यार्थाभेदत्वात् द्रव्यरूपस्यार्थस्य सामान्यात्, समानद्रव्यार्थतारूपात्, पर्यायशब्दवाच्यतरूपादिति यावत् विकल्पात् निर्गतः पर्यायरूपो विकल्पोऽस्येति निर्विकल्पः। शब्दभेदे तस्याऽभिमतिनाऽर्थस्यावश्यं भिन्नत्वादेवेति भिन्नशब्दैः सामान्योऽर्थो नोच्यते एव।

→ तथा च घटो नाम घटवाचकयावच्छब्दवाच्यः शब्दनयेऽस्त्येव, समभिरूढैवम्भूतयोर्नास्त्येवेति द्वौ भङ्गौ लभ्येते, लिङ्गसंज्ञाक्रियाभेदेन भिन्नस्यैकशब्देनावाच्यत्वाच्छब्दादिषु तृतीयः। ←

नन्वेतन्न समीचीनम्, एवं सति स्वस्वमतानुसारेण सर्वेषामेव नयानां ''स्यादस्त्येव घट'' इति भङ्गे स्वारस्यात्। यदि घटवाचकयावच्छब्दवाच्यतया विचार्यमाणो घटः शब्दनयेन स्यादस्त्येव, तदा प्रातिस्विककेवलघटशब्दवाच्यतया विचार्यमाणो घटः समभिरूढेन स्यादस्त्येव। इत्यत्र प्रथमे भङ्गे शब्दनयस्य प्रभुत्वम्, द्वितीये समभिरूढैवम्भूतयोरिति नियम एव न वर्ततेति **चेत्?**

---

१. तुलना

यो ह्यर्थमाश्रित्य वक्तृस्थः सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्राख्यः प्रत्ययः प्रादुर्भवति, सोऽर्थनयः, अर्थवशेन तदुत्पत्तेरर्थं प्रधानतयाऽसौ व्यवस्थापयतीति कृत्वा, शब्दं तु स्वप्रभवमुपसर्जनतया व्यवस्थापयति, तत्प्रयोगस्य परार्थत्वात्। यस्तु श्रोतरि शब्दश्रवणादुद्गच्छति शब्दसमभिरूढैवम्भूताख्यः प्रत्ययस्तस्य शब्दः प्रधानं, तद्वशेन तदुत्पत्तेः, अर्थस्तूपसर्जनं तदुत्पत्तावनिमित्तत्वात्स शब्दनय उच्यते।

– अनेकान्त व्यवस्था प्रकरणम्

કહેવાનો મતલબ, બધા નયોથી બધાં જ ભાંગા રચાશે. 'स्यादस्त्येव' આવું વાક્ય માત્ર સંગ્રહનયથી જ નહીં. સર્વ નયોથી રચી શકાશે. કારણ કે બધા જ નયો પોતપોતાનાં સંપ્રદાય મુજબ સત્ત્વને સ્વીકારે જ છે. જેમ કે-અર્થનયો અર્થની પ્રધાનતાએ અને વ્યંજન-શબ્દની ગૌણતાએ સત્ત્વને માને છે. જ્યારે વ્યંજન નયો વ્યંજનની પ્રધાનતાએ અને અર્થની ગૌણતાએ સત્ત્વને સ્વીકારે છે. તેમ સંગ્રહનય જગતવ્યાપી સામાન્યને સત્ત્વ તરીકે સ્વીકારે છે. તો વ્યવહાર અન્ય અપોહરૂપ વિશેષને અને ઋજુસૂત્ર ક્ષણિક વિશેષને સત્ત્વ રૂપે સ્વીકારે છે. આમ, સત્ત્વને તો આ બધાં જ માને છે. પરંતુ, રચાયેલાં તે ભાંગાઓમાં કયાં નયનું ક્યાં સ્વારસ્ય છે - અર્થાત્ આ બધામાંથી કયો ભાંગો કયાં કયાં નયને વધારે ફાવે છે? એના સંપ્રદાયમાં, એની માન્યતામાં ફીટ બેસે છે, સંગત થાય છે? આ વિચારણા સમ્મતિમાં કરી છે. આવી વિચારણાને આગમો-શાસ્ત્રોની પરિભાષામાં ''સમવતાર'' કહેવાય છે. આમ, ''સાત નયોથી સપ્તભંગીની રચના કરી છે.'' એવું ન કહેવું, પણ ''સપ્તભંગીમાં સાત નયોનો સમવતાર કર્યો છે.'' આવું કહેવું યોગ્ય જણાય છે.

ત્યાં સંગ્રહનય એ સત્ત્વગ્રાહી છે. તે બધે ભાવાત્મકતા માને છે. ભાવ અંશની પ્રધાનતાએ 'સત્' એવું જ કહે છે. આથી પહેલા ભાંગામાં સંગ્રહનયનો સમવતાર થયો સમજવો. અર્થાત્ પ્રથમ ભંગમાં સંગ્રહનું તાત્પર્ય છે. સંગ્રહના તાત્પર્યથી પ્રથમ ભાંગો રચાયો છે.

બીજા ભાંગામાં વ્યવહારનું તાત્પર્ય છે. વ્યવહાર હંમેશા સંગ્રહની માન્યતાનો અર્થ સંકોચ કરવા દ્વારા વિરોધ કરે છે. સંગ્રહ કહે : सत्, તો વ્યવહાર કહે : न सत्, किन्तु वृक्षः, સંગ્રહ કહે : वृक्षः, વ્યવહાર કહે : न वृक्षः किन्तु नीम्बः। આમ, વ્યવહાર સંગ્રહની દરેક વાતનો વિરોધ કરે છે. આથી સંગ્રહ જો 'સત્ત્વ' કહે તો વ્યવહાર કહેશે 'અસત્ત્વ'. તદુપરાંત દ્વિતીય ભાંગો અભાવ અંશની પ્રધાનતાથી રચાયેલો છે. અને વ્યવહાર એ 'અન્યઅપોહ'- ગ્રાહી છે. અર્થાત્ અન્ય પદાર્થોથી ભિન્નતયા ઘટાદિને સ્વીકારે છે. એટલે જ વિશેષરૂપે સ્વીકારે છે, એમ કહેવાય. હવે અન્ય પદાર્થોનાં ભેદની અર્થાત્ અભાવની પ્રધાનતા

तर्हि **"वंजण पज्जाए..."** इत्यादि पद्यस्येमाऽन्या व्याख्या तावच्छ्रूयताम् → अथवा शब्दनये पर्यायान्तरसहिष्णौ सविकल्पो वचनमार्गः, तदसहिष्णौ तु निर्विकल्प इति द्वावेव भङ्गौ, अवक्तव्यभङ्गस्तु व्यञ्जननये न सम्भवत्येव, श्रोतरि शब्दोपरक्त-बोधनस्यैव तत्प्रयोजनत्वात्, अवक्तव्यबोधनस्य च तन्नये सम्प्रदायविरुद्धत्वेन तथा बुबोधयिषाया एवासम्भवादित्यधिकमस्मत्कृताऽन-ेकान्तव्यवस्थायाम्। ←अत्र विकल्प इति समानार्थकशब्दान्तरैर्वाच्यत्वमेवेति। शब्दनयः सविकल्पः, समभिरूढैवम्भूतौ च निर्विकल्पौ। **अत्राप्येवमाकूतं स्यात्**, सविकल्पत्वात् शब्दस्य अन्यापोहाप्रधानत्वात् अस्त्येवेति प्रथमे भङ्गे भावांशवादिनि स्वरसत्वम्, इतरयोस्त्वन्यापोहप्रधानयोः नास्त्येवेति द्वितीये अभावांशवादिनि इत्येवं द्वौ भङ्गौ व्यञ्जननयेषु। इत्यस्मदनुप्रेक्षा, इति दिक् ।

।। व्याख्यान्तराश्रयणे शब्दनयेन सप्तभङ्ग्यभावाशङ्कनं तद्व्युदासश्च ।।

एवं सति वचननयानां न सप्तविधभङ्गेषु निर्भरता। अवक्तव्यत्वपर्यायस्य असाङ्केतिकशब्देनावाच्यत्वात् वचनपर्यायत्वाभावात्, सति वचनपर्यायत्वे चावक्तव्यत्वाभावात्। यत्र यत्र संव्यवहारार्थकासाङ्केतिकप्रातिस्विकवचनप्रयोगो भवेत्, तत्तदेव वस्तु शुद्धवचननयानां मतेऽस्ति, अवक्तव्यपदार्थस्तु न वस्त्वेव तेषां मतेन, अवक्तव्यस्य खपुष्पवद् असत्त्वात्। एवं अवक्तव्यत्वस्य शुद्ध-व्यञ्जनपर्यायत्वाभावे न तस्य शुद्धव्यञ्जननयविषयत्वम्। यथाऽशुद्धर्जुसूत्रेण किञ्चित्कालस्थायिघटादौ क्षणिकत्वारोपः क्रियते, तथाऽशुद्धव्यञ्जननयेना-वक्तव्येऽपि वस्तुनि अवक्तव्यत्वरूपवचनपर्यायसमारोपः। शुद्धतत्तन्नयेन तु क्षणिके एव शुद्धपर्याये क्षणिकत्वस्य, वाच्ये एव च अर्थे वचनपर्यायस्य समारोपः। एवं शब्दनय- परिभाषाविशेषेणावगन्तव्यम्, न तु तस्मिन्ननभिलाप्यत्वमाशङ्कनीयं, **विशेषावश्यकभाष्ये** शब्दनयेनैव समग्राया अपि सप्तभङ्ग्याः सम्मतत्वात्, तथैव च **नयरहस्ये** सविवक्षमनुव्याख्यानात्, शब्दनयस्यापि सप्तभङ्गीयेषु सप्तस्वपि वाक्येषु न सर्वथैवासम्मतिः, प्रत्युत सप्तवाक्यसमाहाररूपत्वात्सप्तभङ्ग्याः शब्द-नयविषयत्वमेवेति **दिक्** ।।१७।।

વ્યવહાર નયમાં આવી. માટે બીજા બધાં કરતાં બીજો ભાંગો વ્યવહારને વધુ ફાવે છે. માટે એ ત્યાં ફીટ બેસે છે. અને કહે છે- બીજો ભાંગો મારો છે.

ત્રીજો ભાંગો ઋજુસૂત્રથી રચાયો છે એમ ન કહેવું, પણ સાતે'ય ભાંગામાંથી ત્રીજા ભાંગામાં ઋજુસૂત્રને વધારે નિર્ભર છે, લાગણી છે-પોતાપણું છે. એનું કારણ એ છે કે ત્રીજો ભાંગો પણ અસંવ્યવહાર્ય વસ્તુને-યુગપદ્ ઉભયાત્મક પદાર્થને-જણાવે છે અને ઋજુસૂત્ર પણ જે ક્ષણિક વસ્તુને કહે છે, તે અસંવ્યવહાર્ય છે. અને ઋજુસૂત્રમત વસ્તુ-એથી જ-વ્યાવહારિક શબ્દથી વાચ્ય બનતી નથી. વળી, વર્તમાન ક્ષણિક પર્યાય કહી શકાતો નથી. કારણ કે શબ્દ રચના અસંખ્ય સમયે પૂરી થાય, એટલી વારમાં વાચ્યાર્થ અસંખ્ય વખત વિનષ્ટ થઇ ચૂક્યો હોય. અથવા, અસંખ્ય સમય પૂર્વે નાશ પામી ગયો હોય. વળી, જે અતીત છે તે ઋજુસૂત્ર મતે અસત્ છે. અને જે છે જ નહીં, તેને શબ્દ શી રીતે જણાવે? આથી એને અભિપ્રેત વસ્તુ 'અવક્તવ્ય' છે. માટે ઋજુસૂત્રને 'અવક્તવ્ય' ભાંગા પર વિશ્વાસ છે.

આ અમારો નવોન્મેષ છે. પૂજ્યપાદ મહોપાધ્યાયજીનાં વચનો કોઇ વિશેષ અપેક્ષાએ છે. પણ એ બરાબર સમજાતી નથી. **અધિક તો બહુશ્રુતો જ જાણે છે.**

પણ આટલું લક્ષમાં લેવું, કે તર્ક પંચાનન, સમ્મતિગ્રંથનાં સમર્થ વ્યાખ્યાકાર શ્રીમદ્ અભયદેવસૂરિજી કે અતીવ પ્રિય મહોપાધ્યાય યશોવિજયજી વાચકવર્યની પ્રતિભાની સામે અમારી પ્રતિભા તો ચરણના અંગૂઠાનાં નખનાં અગ્રભાગ જેટલી પણ નથી. પરંતુ, જેમ મહોપાધ્યાયજી **'ગુરુતત્ત્વ વિનિશ્ચય'** વગેરે ગ્રંથોમાં વિવરણમાં પોતાના પૂર્વ પુરુષ અને પૂજ્ય પુરુષ એવા શ્રી મલયગિરિજી વગેરેના પ્રતિપાદનને સબહુમાન સંપ્રદાયમત કહીને દર્શાવે છે. અને પછી તેમની વ્યાખ્યા કરતાં ભિન્ન અને વધુ યુક્તિયુક્ત એવી વ્યાખ્યા રચે પણ છે. છેવટે 'અધિક તો બહુશ્રુતો જ જાણે' આવું કહીને વિરમી જાય છે. તેમ અમે પણ એ જ માર્ગનું અનુસરણ કર્યું છે. એટલે સંવિગ્ન વિદ્વાનોએ કોપ ન કરવો. તેમના કોપથી અનર્થની પરંપરાઓ સર્જાય છે. કદાચ કોઇક અન્યાન્ય ગ્રંથમાં મહોપાધ્યાયજીએ

अव. अथ सकलादेशत्वविकलादेशत्वविषये किञ्चिदुच्यते -

कालादिभिरभेदादि-त्येको भङ्गोऽपि सर्वशः ।
तत्त्वालोके वदेद्वस्तु, सकलादेश एषकः ।।१८।।

।। रत्नाकरावतारिकाऽनुसारेण सकलादेशस्वरूपम् ।।

टीका - तत्त्वालोके इति **प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारे।** तत्र → प्रमाणप्रतिपन्नानन्तधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद् वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ।।४-४४।। तद्विपरीतस्तु विकलादेशः ।।४-४५।।← इति **प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारवचनम्।** → सकलादेशः प्रमाणवाक्यमित्यर्थः। अयमर्थः यौगपद्येनाशेषधर्मात्मकं वस्तु कालादिभिरभेदवृत्त्या, अभेदोपचारेण वा प्रतिपादयति सकलादेशः, तस्य प्रमाणाधीनत्वात्। विकलादेशस्तु क्रमेण भेदोपचाराद् भेदप्राधान्याद् वा तदभिधत्ते, तस्य नयायत्तत्वात्। ← इति **रत्नाकरावतारिकायां रत्नप्रभसूरयः।**

अथ-'स्यादस्त्येव' इत्येतद्वचनमेकमपि अशेषधर्मात्मकं वस्तु कथं ब्रवीति? इति **चेत्?** द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यार्पणायां, कालादिभिरष्टाभिरभेदप्राधान्यात्, पर्यायार्थिकनयप्राधान्यार्पणायां च कालादिभिरष्टाभिरभेदोपचाराद्वेति ।

कालादयोऽष्टाविमे-१) कालः २) आत्मरूपम्, ३) अर्थः, ४) सम्बन्धः, ५) उपकारः, ६) गुणिदेशः, ७) संसर्गः, ८) शब्दः। तत्र यदा द्रव्यार्थिकनयप्राधान्येनार्पणा क्रियते, तदा वस्तुगतानन्तधर्म-पर्याय-मयो द्रव्यांश एव मुख्यतया स्मृतिमागच्छति, 'स्यादस्त्येव' इति वचसा यद्यपि विधिमुख्यतया अस्तित्वं ज्ञातम्, तथापि तेन सह तस्मिन्नेव काले आविर्भावतिरोभावरूपेणानन्ता अपि धर्माः स्थिताः ते सर्वेऽपि कालाभेदेन ज्ञाता एव। यच्चात्मरूपमस्तित्वस्य, घटवृत्तित्वम्, तदेवानन्तापरधर्माणामपि, इत्यात्मरूपाभेदादपि अस्तित्वेन सह तेऽपि ज्ञाताः। यश्चाधारो घटद्रव्यरूपोऽस्तित्वस्य, तदेवाऽपरानन्तधर्माणामपीत्याधाराभेदेनास्तित्वेन सह तेषामपि ज्ञानम्। एवञ्च कथञ्चित्तादात्म्यरूपो यः सम्बन्धः द्रव्येण सहाऽस्तित्वस्य,

જ આ તત્ત્વ પણ બતાવ્યું હોય, ઇત્યાદિ બીજી યોગ્ય સંભાવનાઓ વિચારી શકાય. **ઇતિ સંક્ષેપ.** ॥૧૫-૧૬॥

અવ. હવે વ્યંજન નયોનો સપ્તભંગીમાં સમવતાર કહે છે.

વ્યંજનગ્રાહી નય મહીં, સાત ભંગને વિષે ।
સવિકલ્પને નિર્વિકલ્પ, બે જ પ્રકાર કહે ॥૧૭॥

વાર્તિક. સમ્મતિ તર્ક પ્રથમ કાંડ ગાથા નં. ૪૧ માં લખ્યું છે કે અર્થપર્યાયને વિશે સાત પ્રકારનો વચનમાર્ગ છે. અને વ્યંજનપર્યાયને વિશે સવિકલ્પ અને નિર્વિકલ્પ આ બે જ પ્રકારનો વચનમાર્ગ છે. જો કે આ ગાથા બીજી બધી જ ગાથાઓની જેમ ખૂબ અર્થ ગંભીર છે અને અનેક રીતે આનું વિવરણ-અર્થ કરી શકાય એમ છે. પરંતુ વૃત્તિકારાદિએ કરેલો અર્થ છે. ''અર્થપર્યાયગ્રાહી નયોથી સાતે'ય ભાંગા બને છે.'' અહીં 'અર્થપર્યાયગ્રાહી' શબ્દનો અર્થ અર્થપર્યાયોને વિષય કરનારા આવો લેવામાં તકલીફ એ છે, કે પ્રથમના ૩ નયો તો દ્રવ્યાર્થિક છે. તેઓ પર્યાયને વિષય કરતાં જ નથી. આથી અર્થપર્યાય એટલે અર્થરૂપ વસ્તુનાં અંશનાં ગ્રાહક નયો આવો અર્થ નીકળે. અર્થરૂપ અંશગ્રાહી=અર્થ પર્યાયગ્રાહી. અને જો પર્યાયશબ્દને દ્રવ્ય વિરોધી અર્થમાં ન લઇએ. અને સમગ્ર વસ્તુનો એક દેશ-એક અંશ તે પર્યાય. આવો અર્થ પકડીએ, તો પ્રથમનાં ત્રણ નયો પણ શબ્દ અને અર્થ ઉભયાત્મક સમગ્ર વસ્તુનાં અર્થરૂપ એક અંશને ગ્રહણ કરે છે. તે અંશગ્રાહી હોવાથી પર્યાયગ્રાહી કહેવાય. આથી અર્થપર્યાયગ્રાહી કહેવામાં વાંધો નથી. **ઇતિ દિક્.**

હવે આ ગાથાના ઉત્તરાર્ધનો અર્થ **નયોપદેશ**માં આ રીતે જણાવ્યો છે - શબ્દનયોમાં જે પર્યાયશબ્દથી એક જ અર્થની વાચ્યતારૂપ વિકલ્પને સ્વીકારનારો સવિકલ્પ-સામ્પ્રત-નય છે, તેના હિસાબે પ્રથમ ભાંગો ઘટે. અને એ રીતે ન સ્વીકારનારો, શબ્દ ભેદે અર્થ ભેદ સ્વીકારનારો, ઉપરોક્ત વિકલ્પને ન સ્વીકારનારો જે સમભિરૂઢ-એવંભૂત વગેરે નય છે. તેના હિસાબે બીજો ભાંગો ઘટે છે. અને ભિન્ન લિંગથી એ પદાર્થ સામ્પ્રતનયથી અવક્તવ્ય છે. ભિન્ન શબ્દથી એ પદાર્થ સમભિરૂઢનયથી અવક્તવ્ય છે. તથા ભિન્ન ક્રિયાથી એ પદાર્થ એવંભૂતનયથી

स एवेतरेषामपि तथा य उपकारोऽस्तित्वेन क्रियते द्रव्यस्य स्वानुरक्तत्वकरणम्, तमेवेतरेऽपि कुर्वन्ति। तथा यत् क्षेत्रमाश्रित्यास्तित्वं समास्थितं तावदेव क्षेत्रमाश्रित्येतरेऽपि स्थिताः। तथा य एवैकवस्त्वात्मनाऽस्तित्वस्य द्रव्येण सह संसर्गः स एवेतरेषामपि। तथा च योऽस्तीति शब्दोऽस्तित्वधर्मात्मकस्य वस्तुनो वाचकः, स एव शेषानन्तधर्मात्मकस्यापीति।

एवं द्रव्यार्थिकनयप्राधान्येन कालादिभिः वस्तुगतसर्वधर्माणामभेदात्, प्रथमभङ्गेन न केवलमस्तित्वं ज्ञाप्यते, किन्तु सर्वे धर्मा एव। इत्यतस्तदेकमपि वचनमशेषधर्मात्मकवस्तु ब्रूते ।।१८।।

अव. अथैतद्विपरीतं विकलादेशमाह-

कालादिभेदभावेन, सप्तभङ्ग्याऽपि सर्वया ।
असर्ववस्तुवादे सा, सप्तभङ्गी नयात्मिका ।।१९।।

।। रत्नाकरावतारिकाऽनुसारेण विकलादेशस्वरूपम् ।।

टीका – एवं पर्यायार्थिकनयप्राधान्यार्पणेन कालादिभिरष्टभिर्भेदवृत्तेः, द्रव्यार्थिकनयार्पणायां वा तदष्टाभिर्भेदोपचारेण वा सप्तभङ्ग्याः प्रथमभङ्गेन केवलमस्तित्वादिकः प्रकृतधर्म एव कथ्यते।

पर्यायार्थिकनयो हि पर्यायाणां प्राधान्येन ग्रहणं कुर्वाणो वक्ति–समकालमेकत्र नानागुणानां न सम्भवः, सम्भवे वा तदाश्रयस्य तावद् भेदप्रसङ्गात्, इति कालभेदेन सत्तां बिभ्राणास्सर्वे धर्माः, कालभेदेन भिन्नाः। तथा नैजं प्रातिस्विकं स्वरूपं तेषां भिन्नमेवाऽन्यथैकत्वप्रसङ्गात्, इति स्वरूपभेदेन भेदः। स्वाश्रयभूतोऽर्थः सर्वेषां भिन्न एव। तथा सम्बन्धिभेदे सम्बन्धोऽपि भिन्नभिन्न एव। तथा सर्वैः प्रतिनियतस्य विशिष्टस्यैवोपकारस्य करणात्, उपकारभेदेनाऽपि भिन्ना एव। गुणिदेशस्यापि प्रतिगुणं भिन्नत्वम्। संसर्गस्यापि संसर्गिभेदेन भेदः। शब्दोऽपि न एक एव सर्वगुणवाचकः तथा सति शब्दान्तरवैफल्यापत्तिरेव दूषणम्। तदेवं अस्तित्वेन सह न कदाचिदपि अपरेऽनन्ता धर्माः समाश्रयन्ति। तदेवं तेषां सर्वथैव भिन्नत्वात्, प्रतिभङ्गेन प्रत्येक

અવક્તવ્ય છે. આમ, શબ્દનયોમાં અવક્તવ્યત્વ એ ત્રીજો ભાંગો પણ ઘટ્યો.

શંકા : જો ત્રીજો ભાંગો દરેક શબ્દનયોથી-ત્રણે'યથી સ્વ-સ્વમત વક્તવ્યતા અનુસારે બનતો હોય, તો પ્રથમ-દ્વિતીય પણ કેમ ન બને?

સમાધાન : તમારી વાત સાચી છે અને એ માટે આપણે પહેલાં વૃત્તિકારે કહેલો અને નયામૃતતરંગિણીમાં સ્વીકારેલો બીજો વ્યાખ્યા પ્રકાર પણ જોઇ લઇએ. અને પછી એના પ્રમાણે તમારી વાતનું સમાધાન વિચારીએ.

નયોપદેશ કહે છે : "અથવા, શબ્દનય ત્રણ છે. જેમાંથી પ્રથમ પર્યાયાન્તરવાચ્યતા સ્વીકારે છે, બીજો-ત્રીજો નથી સ્વીકારતો. આમાંથી જે પ્રથમ છે, તેને માટે સવિકલ્પ વચનપથ છે. બીજો-ત્રીજો છે, તેનાં મતે નિર્વિકલ્પ વચનપથ છે. અને અવક્તવ્ય ભંગ તો આ નયે રચી શકાતો જ નથી. કારણ કે જ્યાં શબ્દ વાચ્યતા નથી, તે પદાર્થ જ નથી."

આ બીજી વ્યાખ્યાનું તાત્પર્ય એ રીતે લઇ શકાય, કે શબ્દનયોનો પ્રથમ નય એ સવિકલ્પ હોવાથી અન્યાપોહ પ્રધાન નથી. પણ અન્ય સંગ્રહ પ્રવણ છે. માટે તે અભાવ કરતાં ભાવ પર વધુ નિર્ભર છે. આથી જ-સવિકલ્પ હોવાથી જ-તે પ્રથમ ભંગમાં વધુ રસ દાખવે છે. અને બાકીનાં બે નયો નિર્વિકલ્પ હોવાને કારણે જ અન્યાપોહ કરવાવાળા આશયથી અભાવાંશમાં વધુ નિર્ભરતા દાખવે છે. માટે બીજા ભંગમાં તેમને વધુ ઇન્ટરેસ્ટ છે. એમાં એમની વક્તવ્યતાને સમાનતા કાંઇક જણાય છે. આ તો અમારી અનુપ્રેક્ષા છે. **ઇતિ દિક્.**

।। બીજી વ્યાખ્યા મુજબ શબ્દનયથી સપ્તભંગીનાં અભાવની શંકા અને તેનો નિરાસ ।।

શંકા : એમ જો વ્યંજનનયોમાં માત્ર સવિકલ્પ અને નિર્વિકલ્પ આ બે જ વચનમાર્ગ હોય, અને બીજી વ્યાખ્યા મુજબ જો તે પ્રથમ અને દ્વિતીય વાક્ય રૂપ જ હોય, તો શબ્દનયથી સપ્તભંગી ન બને?

સામાધાન : શુદ્ધ શબ્દનય 'અવક્તવ્ય' એવી કોઇ વસ્તુને જ નથી માનતો. અને અશુદ્ધ શબ્દનય અવક્તવ્ય શબ્દથી વાચ્ય એવી વસ્તુને માને છે. જેમ અશુદ્ધ ઋજુસૂત્ર ઘટાદિમાં ક્ષણિકત્વનો આરોપ કરીને 'क्षणिको घटः' કહે છે.

एव धर्मः कथ्यते न तु सर्वे धर्मा इति । तादृश्या समग्रया सप्तभङ्ग्याऽपि सर्वं वस्तु न गद्यते।

न चात्र- ''तर्हि किं सकलादेशरूपा सप्तभङ्गी सम्यक्, विकलादेशरूपा वा सत्ये''ति **सन्देग्धव्यम्**। सकलादेशविकलादेशयोरुभयोरपि नयापेक्षाभेदेन सत्यत्वादेवेति।

अत्र यदा प्रत्येकेन भङ्गेन द्रव्यार्थिकनयविवक्षया सर्वे धर्मा उच्येरंस्तदा स सप्तभङ्ग्या भङ्गरूप आदेशः सकलवस्तुवाचकत्वात्स सकलादेश उच्यते, सकलादेशसमाहाररूपा सप्तभङ्गी च प्रमाणसप्तभङ्गी। यदा च प्रत्येकभङ्गेन पर्यायार्थिकनयविवक्षया प्रत्येकधर्म एवोच्येत, तदा स आदेशः असकल-विकल-वस्तुवाचकत्वाद्विकलादेश एव। तत्समाहाररूपा सप्तभङ्ग्यप्यसमग्रवस्तु-वादित्वान्नयसप्तभङ्गी।

एवं **रत्नाकरावतारिकायां** यदुक्तं पूज्यैः सकलादेशस्य प्रमाणत्वम्, तादृक्सप्तभङ्ग्याः प्रमाणसप्तभङ्गीत्वम्, विकलादेशस्य च नयत्वम्, अत एव तद्गतसप्तभङ्ग्या नयसप्तभङ्गीत्वमिति, तदग्रे **महोपाध्यायीयव**चोभि-स्तोलयिष्यते ।।१९।।

अव. तदेवं वादिदेवसूरिपुङ्गवानां मतेन टीकाकृतां श्रीरत्नप्रभसूरीणां व्याख्यानुसारेण सकलादेश-विकलादेशस्वरूपमुक्तम्। अथ सम्मतितर्करचयितृ-सिद्धसेनदिवाकरसूरीणामभिप्रायेण टीकाकृतां श्रीमदभयदेवसूरीणां विवरणानुसारेण तद्भाव्यते-

समग्रद्रव्यविषयाः, सकलादेशसंज्ञिताः ।
त्रयेऽन्ये त्वंशसंस्थाना, विकलादेशकीर्तनाः ।।२०।।

।। तर्कपञ्चाननाभयदेवसूरिनिरूपितं सकलादेशविकलादेशस्वरूपम् ।।

टीका – सिद्धसेनदिवाकरसूरीणां मतेन तृतीय-चतुर्थयो-र्व्यत्ययः, अतः

(પણ શુદ્ધ ઋજુસૂત્ર ઘટ માનતો નથી ક્ષણિક પર્યાયને-ક્ષણને જ માને છે) તેમ અશુદ્ધ વ્યંજનનયથી અવક્તવ્ય વસ્તુમાં 'અવક્તવ્યત્વ' રૂપ વચન પર્યાયનો સમારોપ કરાય છે. માટે શબ્દનયને પણ સાતે'ય ભાંગા માન્ય છે.

વળી, વૃત્તિકારની માન્યતા એ શબ્દનયવિશેષની અપેક્ષાએ સમજવી. કારણ કે **વિશેષાવશ્યક ભાષ્યમાં** શબ્દનયથી જ આખી સપ્તભંગી જણાવાઇ છે. અર્થાત્ સપ્તભંગી શબ્દનયનો વિષય, એની વક્તવ્યતા-એનો અભિપ્રાય તરીકે સૂચવાઇ છે. અને **નયરહસ્યમાં** પણ તેવી જ વ્યાખ્યા કરી છે. માટે શબ્દનયને સપ્તભંગીના દરેક ભાંગા માન્ય છે. ઊલટું, સપ્તભંગી એ વાક્ય સમૂહ રૂપ હોવાથી શબ્દનયનાં વિષયરૂપ જ છે. **ઈતિ દિક્.** ।।૧૭।।

અવ. હવે સકલાદેશ-વિકલાદેશનું તત્ત્વ કહેવાય છે.

કાલાદિથી અભેદથી, એક ભંગ પણ સર્વ ।
વસ્તુ અલંકારે કહે, એ સકલાદેશ તત્ત્વ ।।૧૮।।

।। રત્નાકરાવતારિકા મુજબ સકલાદેશનું સ્વરૂપ ।।

વાર્તિક. 'અલંકારે', **'પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર ગ્રંથમાં.'** એ ગ્રંથમાં એમ જણાવ્યું છે કે અનન્તધર્માત્મક પ્રામાણિક વસ્તુને એકસાથે કહેનારું વચન એ સકલાદેશ છે. અને તેવી વસ્તુનાં એક દેશને કહેનારું વચન એ વિકલાદેશ છે.

શંકા : 'स्यादस्त्येव' આવું એક જ વાક્ય સમગ્રધર્માત્મક વસ્તુને શી રીતે કહે? અર્થાત્ ન જ કહી શકે.

સમાધાન : દ્રવ્યાર્થિકનયની મુખ્યતા કરો તો કાલાદિ આઠની અભેદ પ્રધાનતાએ અને પર્યાયાર્થિક નયની મુખ્યતા કરો તો તે આઠની અભેદ ઉપચારતાએ એક વાક્યથી વક્ષ્યમાણ 'અસ્તિત્વ' વગેરે ધર્મની સાથે અનંતા ધર્મો પણ કહેવાઇ જાય છે. માટે એક જ શબ્દથી અનંત ધર્માત્મક પ્રામાણિક વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે.

તે કાલાદિ આઠ આ પ્રમાણે **રત્નાકરાવતારિકામાં** કહ્યાં છે. ૧) કાલ, ૨) આત્મરૂપ, ૩) અર્થ, ૪) સંબંધ, ૫) ઉપકાર, ૬) ગુણીદેશ, ૭) સંસર્ગ, ૮) શબ્દ.

आद्यत्रयभङ्गानामसंयोगिनामखण्डवस्तुव्यापकत्वादेव सकलादेशता। अन्त्य-चतुर्भङ्गानाञ्च वस्त्वेकदेशवृत्तित्वम्। तथाहि-स्यादस्त्येव नास्त्येव चेति चतुर्थो भङ्गः। तेन संगीतमस्तित्वं वस्तुन एकस्मिन्देशे वर्तेत, नास्तित्वञ्चाऽपरत्र देशे। अत एवोक्तं-

अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ।
तं दवियमत्थि णत्थि य आएसविसेसियं जम्हा ।।१/३७।।

अस्य टीकालेशस्त्वयं → अथ इति यदा देशो=वस्तुनोऽवयवः, सद्भावेऽस्तित्वे नियतः='सन्नेवायम्' इत्येवं निश्चितः, अपरश्च देशोऽसद्भावपर्याये=नास्तित्व एव, नियतः 'असन्नेवायम्' इत्यवगतः, अवयवेभ्योऽवयविनः कथञ्चिदभेदाद् अवयवधर्मैस्तस्यापि तथाव्यपदेशः यथा 'कुण्ठो देवदत्त' इति। ततोऽवयवसत्त्वासत्त्वाभ्यामवयवी अपि सदसन् सम्भवति, ततः तद् द्रव्यमस्ति च नास्ति चेति भवत्युभयप्रधानावयवभागेन विशेषितं यस्मात्। ← एवं वस्त्वेकदेशस्थायित्वात्तयोर्न सकलवस्तुव्यापकत्वमिति तत्व्यापकादेशस्यापि न सकलादेशत्वम्, किन्तु विकलादेशत्वमेव युक्तमिति।

।। वृत्तिकृतां वचनानां किं तात्पर्यम्? ।।

अथ–'स्यादस्त्येव नास्त्येव च' इत्यादि ससंयोगभङ्गैरपि सकल एव वस्तुनि स्वार्थास्तित्वनास्तित्वद्योतने को दोषः? **न चैकत्रैव** तयोर्द्वयोस्समवतारो न भवे-द्विरोधादिति **वाच्यम्।** कथञ्चिदस्तित्वकथञ्चिन्नास्तित्वयोः परस्परं विरोधाभावादेव। **स्याद्वादमञ्जर्यां नयरहस्यादौ** च स्पष्टमेवोक्तम्, यदुत न सत्त्वासत्त्वे देशस्थे गुञ्जाफलदेशव्यापिनो रक्तत्वकृष्णत्वयोरिव किन्तु सर्वव्यापके व्याप्यवृत्तिनी एव ते। **न चैकत्र** द्वौ धर्मौ व्याप्यवृत्तिनौ न स्यातामिति **सन्देग्धव्यम्,** रामे पुत्रत्व-पितृत्वाभ्यामिव अनामिकायां दीर्घत्वह्रस्वत्वाभ्यामिव वा भवत्येकत्रैव वस्तुनि अनेकेषामपि धर्माणां व्याप्यवृत्तित्वमिति। न च 'रामः पिता च पुत्रश्चे'त्येवं समूहा-लम्बनज्ञाने रामे देशावच्छेदेन पितृत्वं इतरदेशावच्छेदेन च पुत्रत्वं ज्ञायते, किन्तु निरवच्छिन्नतया व्याप्यवृत्तितयैव पितृत्वपुत्रत्वयोर्भानम्। तथैवात्रापि

જ્યારે દ્રવ્યાર્થિકનયપ્રાધાનતાએ વિચારણા કરાય, ત્યારે અનંતપર્યાયનો આધાર એક દ્રવ્યાંશ ઉપસ્થિત થાય છે. અને જ્યારે 'અસ્તિ' શબ્દનો વાચ્યાર્થ આ જ દ્રવ્યાંશ લઈએ, ત્યારે તેમાં અસ્તિત્વની સાથે તે જ કાલે બીજા અનંતા ધર્મો પણ રહેલાં જણાય છે. માટે બધાં ધર્મો કાલાભેદથી જણાય. તેમ, 'ઘટવૃત્તિત્વ' એ આત્મરૂપ-પોતાનું સ્વરૂપ-જે અસ્તિત્વ ધર્મનું છે. તે જ બીજા અનંત ધર્મોનું પણ છે. માટે બધામાં આત્મરૂપથી અભેદતા છે. તેમ જે દ્રવ્યરૂપ આધાર અસ્તિત્વ માટે છે. તે જ શેષ અનંત ધર્મોનો આધાર છે. માટે આધારનાં અભેદથી પણ બધાં અભિન્ન છે. આમ, દ્રવ્યમાં જે સંબંધથી અસ્તિત્વ ધર્મ છે, તે જ સંબંધથી શેષ અનંત રહે છે. તથા જે ઉપકાર અસ્તિત્વ દ્રવ્યમાં કરે છે, તે જ ઉપકાર શેષ અનંત ધર્મો કરે છે. અને જે સંસર્ગ અસ્તિત્વનો દ્રવ્ય સાથે છે, તે જ સંસર્ગ બાકીનાં અનંત ધર્મોનો પણ છે જ. અને છેલ્લે 'અસ્તિ' શબ્દ જે અસ્તિ રૂપ વસ્તુનો-અસ્તિત્વ ધર્મનો વાચક છે, તે જ શબ્દ બાકીના અનંતનો પણ વાચક બને છે. આમ, અસ્તિત્વની સાથે કાલાદિ આઠ પ્રકારે શેષ ધર્મોનો અભેદ છે. માટે જો અસ્તિત્વ જણાય તો તદભિન્ન શેષ ધર્મો નિયમા જણાય. આમ પ્રથમ ભાંગાથી જ સર્વ ધર્મો જણાતા અનંત ધર્માત્મક પ્રામાણિક વસ્તુનો બોધ યુક્તિયુક્ત જ છે. ॥૧૮॥

અવ. હવે આનાથી વિપરીત એવાં વિકલાદેશને જણાવે છે-

કાલાદિનાં ભેદથી, સપ્તભંગી પણ સર્વ;
અસકલવસ્તુને વદે, વિકલાદેશનું તત્ત્વ ॥૧૯॥

॥ રત્નાકરાવતારિકા મુજબ વિકલાદેશનું સ્વરૂપ ॥

વાર્તિક. હવે, જ્યારે પર્યાયાર્થિક નયની મુખ્યતા કરો, તો વાસ્તવિક પર્યાયાંશ અને દ્રવ્યાર્થિકનયની પ્રધાનતા કરો, તો ઔપચારિક પર્યાયાંશ સ્મૃતિમાં ઉપસ્થિત થાય છે. અને એ વખતે અસ્તિત્વની સાથે કાલાદિ ૮ રીતે શેષ ધર્મોનો અભેદ કરી શકાતો નથી.

કારણ કે, એક વખતે એક જ પર્યાય હોય છે. જેમાં માત્ર અસ્તિત્વ ધર્મ રહે, બાકીનાં અનંત ન રહે. તેથી કાલથી ભેદ છે, વળી તે દરેકનું સ્વરૂપ પોત-

स्यादस्त्येवनास्त्येव घट इति समूहालम्बनज्ञानेन घटेऽपि निरवच्छिन्नतयैव तयोर्भानं युक्तिमत्, न तु देशावच्छेदेन।

ननु–जलभृते घटे यथा अभ्यन्तरदेशावच्छेदेन जलसंयोगः न तु बाह्यदेशावच्छेदेन, अतो घटे जलवत्त्वम् जलाभावश्च यथा द्वावपि देशभेदेन वर्तेते, तथाऽत्रापि घटे अस्तित्वं नास्तित्वं च देशभेदेन समवतार्यमाणं न विरुध्यते **इति चेत्?** न, तथाविवक्षाया अभावात्, **नयरहस्यादौ** च तस्या विवक्षाया बीजस्य निराकृतत्वात्, धर्मिभेदापत्तेश्च, तथाहि– न हि आद्यास्त्रयो धर्मा घटरूपे धर्मिणि अन्त्याश्चत्वारश्च घटावयवरूपे धर्मिणि, सर्वेषामपि सप्तानामपि घट एव समालम्बनात्, तृतीयभङ्गीयाऽवक्तव्यत्वधर्मस्यापि देशभेदेन समाश्रयणापत्तेश्च, तत्रापि धर्मद्वयावगाहनादेव युगपत्। इत्यादिभिः कारणकलापैर्ज्ञायते यदुत सत्त्वपर्याय-भावाभावांशयोः अस्तित्वनास्तित्वयोर्न देशभेदेन घटादौ वृत्तित्वं वाच्यम्, किन्तु व्याप्यवृत्तितयैव वृत्तित्वं वाच्यं तयोरिति **चेत्?**

सत्यम्। समग्र एव सत्पर्यायवति अस्तित्वनास्तित्वयोः समवतारस्यौ-चित्येऽपि किमिति वृत्तिकृता देशावयवभेदेन समवतारः कृत इति न ज्ञायते। **न च "अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ"** इति गाथापूर्वार्द्धे "देश"-शब्दस्य वस्त्ववयव एव अर्थो भविष्यति, इति **वाच्यम्,** एवं सति **"तं दवियमत्थि नत्थि य आएसविसेसियं जम्हा।"** इति पश्चार्द्धस्य तर्हि कथमर्थसङ्गतिः कार्या? आदेशविशेषितम्–इत्यत्रादेशपदेन अर्प्यमाण उपाधिरूपो धर्मो ग्राह्यः तेन विशेषितं सत् द्रव्यमेव–घट एव–न तु तदवयवौ, किन्तु तदेव द्रव्यं अस्ति च नास्ति चेत्युच्यते। अत एव वृत्तौ आदेशपदस्य योऽवयवयभाग इत्यर्थ उक्तः, सोऽपि समीक्षणीयः। आदिष्टमित्यस्य शब्दस्यास्तित्वाद्यापादकोपाधिना विशेषितमित्यर्थः न च तादृगुपाधिरवयव एव, किन्तु स्वद्रव्यपर्यायवत्त्वमेव। न च स उपाधिरवयवे एव, किन्तु सकलावयविनि व्यापकः। आदेश इति वा भङ्गः, तेन विशेषितम्, आदेशविशेषितं द्रव्यमिति। आदेश इति वा उपाधिख्यापकं स्यादित्यादि पदम्।

પોતાનું ભિન્ન ભિન્ન જ છે. આથી આત્મરૂપથી પણ બધાં ભિન્ન છે. આધારભૂત અર્થ-પર્યાય-બધાંનો અલગ છે. સંબંધ પણ સંબંધીના ભેદથી ભિન્ન ભિન્ન છે. બધાં પોતાનાં આધારમાં અમુક પ્રતિનિયત ભિન્ન ભિન્ન ઉપકાર જ કરે છે. એક જ નહીં. માટે ઉપકારભેદે પણ ભેદ છે. ગુણીદેશ પણ ભિન્ન છે. સંસર્ગવાન્ના ભેદથી સંસર્ગનો પણ ભેદ છે. અને બધાં જ સાવ અલગ અલગ જ હોવાને કારણે કોઈ એક જ શબ્દ પણ તે સર્વ અર્થોનો વાચક નથી, એવું માનો તો બીજા શબ્દો સાવ નિષ્ફળ બને. આમ, અસ્તિત્વની સાથે અનંત ધર્મોનો અભેદ શક્ય નથી. આમ, તે બધાં સર્વથા ભિન્ન હોવાથી પ્રત્યેક ભંગ દ્વારા એક એક જ ધર્મ કહેવાય, બધાં ધર્મો નહીં અને તેથી જ તેને અસકલ વસ્તુ કહેનારા એવાં વિકલાદેશ કહેવાય. અને વિકલાદેશનાં સમૂહ રૂપ સપ્તભંગી દ્વારા પણ સકલ વસ્તુ ન કહેવાય જ્યારે સકલાદેશનાં એક ભંગથીય સકલ વસ્તુ કહી શકાય. આમ **રત્નાકરાવતારિકા**માં દર્શાવ્યું છે.

શંકા : જો સપ્તભંગીના બે ભેદો છે તો તેમાંથી શું સકલાદેશ રૂપ સપ્તભંગી એ સાચી છે, અથવા વિકલાદેશરૂપ?

સમાધાન : સકલાદેશ અને વિકલાદેશ બન્ને'ય નયવિશેષની અપેક્ષાથી સત્ય છે.

અહીં, જ્યારે ભાંગાથી દ્રવ્યાર્થિકતાને આલંબને સકલ વસ્તુ કહેવાય ત્યારે તે સકલાદેશ બન્યો અને સકલાદેશનો સમૂહ એ પ્રમાણાત્મક સપ્તભંગી, તથા પર્યાયાર્થિકતાને અલંબને એક ભાંગાથી જ્યારે સાંશ-અસમગ્ર-વસ્તુ કહેવાય, ત્યારે તે ભાંગો વિકલ વસ્તુને કહેનારો હોવાથી વિકલાદેશ બન્યો અને તેના સમૂહરૂપ સપ્તભંગી પણ અસમગ્ર વસ્તુ કહે, માટે તે નય સપ્તભંગી કહેવાય.

આમ **રત્નાકરાવતારિકા ગ્રંથ**માં સકલાદેશને પ્રમાણ, સકલાદેશરૂપ સપ્તભંગીને પ્રમાણ સપ્તભંગી વિકલાદેશને નય અને વિકલાદેશરૂપ સપ્તભંગીને નય સપ્તભંગી કહી છે. આ વાત આગળ ઉપર **પૂજ્યપાદ મહોપાધ્યાયજી**નાં વચનો સાથે તુલનાત્મક રીતે વિચારીશું. ।।૧૯।।

અવ. આમ, **વાદીદેવસૂરિ મ.સા.**ના મતે ટીકાકાર શ્રી **રત્નપ્રભસૂરિ**

ननु स्यादेतत्, किन्तु पूर्वार्द्धनिबद्धदेशपदस्य यद्यवयवार्थकत्वं न, तर्हि तस्य कोऽर्थ इति **चेत्?** अत्रास्माकं अनुप्रेक्षासार: कथ्यते-देश इत्यवयव एव। किन्तु न स पदार्थस्यावयव:, अपि तु वाक्यस्य-भङ्गस्य-अवयव:। ततोऽयं गाथैदम्पर्यार्थ: अह-अथ-यदा, देसो सब्भावे इति भङ्गस्यैकदेश: सत्त्वे, देसोऽसब्भावपज्जवे इति तथेतरो देशोऽसत्त्वे णियओ-नियत: स्ववाच्यत्वसम्बन्धेन। ततश्च भङ्गैकदेशेन यदा सत्त्वमुच्यते, अपरैकदेशेन च यदाऽसत्त्वमुच्यते, तदा स भङ्गश्चतुर्थो भङ्गो भवति तस्य चायमाकार: 'स्यादस्त्येवनास्त्येव' चेति। इति पूर्वार्द्धार्थ:। अथाह-ननु तदेव द्रव्यमस्ति, तदेव च नास्तीति कथं वाच्यम्, उच्यते-जम्हा, इति यस्माद् हेतो:, आदेशविशेषितम्, अस्तित्वनास्तित्वापादकोपाधिभ्यां क्रमशो विशेषितम्, तदेव द्रव्यं घटादि, अस्ति च नास्ति चेति-सोऽयं गाथोत्तरार्द्धार्थ इति सर्वं सुव्यवस्थितम्।

न चैवं सकलादेशत्वंविकलादेशत्वव्याहतिरिति **शङ्क्यम्**-आद्यत्रयाणां भङ्गानामसंयोगित्वात् समग्रत्वात्सकलादेशत्वम्। सकलश्चासावादेशश्चेति विग्रहात्। आदेशस्यात्र भङ्गपरकत्वात्। अन्त्याश्च चत्वारोऽपि संयोगिभङ्गा:, संयोगजत्वादेव तेषां मिश्रत्वम्, सखण्डत्वम्, इति विकलादेशत्वम्। विकलश्चासावादेशश्चेति कर्मधारय:। इत्येवमेवात्राभिसन्धिर्विचार्य इति दिक्।

ननु तथापि-

सब्भावे आइट्ठो, देसो देसो य उभयहा जस्स ।
तं अत्थि अवत्तव्वं च, होइ दविअं वियप्पवसा ।।१/३८।।

इति सम्मतितर्कगाथाया वृत्तिकृता तु यथाश्रुतार्थ एव गृहीत: यस्य द्रव्यस्य देशोऽवयव: सद्भावे आदिष्ट:, सत्त्वपर्यायविशेषित:, देशो-ऽवयवश्च सदसद्भावे आदिष्ट: तद् द्रव्यं अस्ति चावक्तव्यश्चेति उच्यते। भवता कोऽर्थो ग्रहीष्यते? **इति चेत्?**

उच्यते, यस्य इति पदस्यान्वय: न देशपदेन सह क्रियते, किन्तु सद्भाव-पदेन सह, तथा च यस्य द्रव्यस्य सद्भावे-सत्पर्याये भङ्गस्येत्यध्याहार्यं देशो-

મ.સા.ના વિવરણ મુજબ સકલાદેશ-વિકલાદેશનું સ્વરૂપ જોયું. હવે **સમ્મતિકાર શ્રી સિદ્ધસેન દિવાકર સૂ.મ.** ના મતે ટીકાકાર શ્રી **અભયદેવ સૂ.મ.**ની વ્યાખ્યા મુજબ તેની વિચારણા કરવામાં આવે છે.

સર્વ વસ્તુમાં જેહનો, અર્થ તે સકલાદેશ ।
સાંશવસ્તુમાં સંઠિયો, અર્થ તો વિકલાદેશ ॥૨૦॥

॥ તર્ક પંચાનન શ્રી અભયદેવસૂરિજીએ નિરૂપેલું
સકલાદેશ-વિકલાદેશનું સ્વરૂપ ॥

વાર્તિક. શ્રી સિદ્ધસેન દિવાકર સૂ.મ. ના મતે ૩જા અને ૪થા ભાંગામાં ફેરફાર છે. ૩જો અવક્તવ્ય ભાંગો અને ચોથો અસ્તિ-નાસ્તિ ભાંગો.

પ્રથમનાં ત્રણ ભાંગા પોતાનાં વાચ્યાર્થને આખી ઘટાદિ વસ્તુ પર જ વ્યાપ્યવૃત્તિરૂપે રાખે છે, માટે તે સકલવસ્તુને વિષય બનાવતાં હોવાથી સકલાદેશ કહ્યા. તથા બાકીનાં ચાર ભાંગા ઘટાદિ વસ્તુના એક એક દેશ પર રહે છે.

શ્રી સમ્મતિતર્કના પ્રથમ કાંડની ૩૭મી ગાથા અને તેની પર રચાયેલી **ટીકા**નો આ રીતનો ભાવાર્થ છે - જ્યારે વસ્તુનો એક દેશ=એક અવયવ સદ્ભાવ=સત્ત્વ વાળો માનો, અને તેથી "આ સત્ છે" આવો બોધ કરો. તથા બીજા દેશ=અવયવને અસદ્ભાવ=અસત્ત્વવાળો કરીને "આ અસત્ છે" આવો બોધ કરો તો હકીકતમાં તે અવયવીનો એક અવયવ સત્ત્વવાળો અને બીજો અવયવ અસત્ત્વવાળો થયો. માટે તેનાં અવયવો જ સત્ત્વ અને અસત્ત્વવાળાં બન્યાં. પરંતુ વૃક્ષનાં થડ પર કપિસંયોગ હોય તો પણ 'વૃક્ષ કપિસંયોગવાળું છે' એવું કહેવાય છે, તે જ રીતે અવયવમાં સત્ત્વ અને અસત્ત્વ દ્વારા તે અવયવી જ સત્ત્વ અને અસત્ત્વ વાળો કહી શકાય. આમ, તે ચોથા ભાંગાથી જણાતાં બે ધર્મો સકલ વસ્તુમાં નહીં, પણ વસ્તુ એક દેશમાં રહે છે. માટે તે ભાંગાને વિકલાદેશ કહેવાય.

આમ, વૃત્તિકારના મતે અસંયોગી સર્વ-ત્રણેય-ભાંગા સકલાદેશરૂપ છે અને બાકીનાં સસંયોગી-ચારેય-ભાંગા વિકલાદેશરૂપ સમજવાં.

भङ्गायवय:, आदिष्ट: वर्तते। इति ज्ञेयम्।

यद्वा सृतमेतया क्लिष्टकल्पनया, यथाश्रुतार्थ एव, केवलं देश इति धर्मिणोऽवस्था न **त्ववयव:**, पदार्थस्यैकाऽवस्था सत्त्ववती, अन्या च युगपत् सत्त्वासत्त्ववती। ते द्वे अपि यदा क्रमशो गृह्येते, पूर्वं सत्त्ववत्यवस्था, पश्चाच्चासत्त्ववती । ते चावस्थे शब्देन आदिष्टे। यद्वा आदिष्टत्वमिति तादृग्नयज्ञानविषयीकृतत्वमिति, ततश्च यस्य द्रव्यस्य सद्भावेनादिष्टाऽवस्था-विधिमुख्यतया भावात्मकसत्त्वपर्याय:, युगपदुभयथाऽऽदिष्टा चाऽवस्था युगपद्विधिनिषेधमुख्यतया युगपद्भावाभावात्मकावक्तव्यत्वरूपसत्त्वपर्याय:, ते द्वे क्रमशो ज्ञायेते तदा तादृग्ज्ञानविकल्पवशतो द्रव्यं तदा 'अस्त्येव अवक्तव्यमेवे'-त्युच्यते।

अत्र 'देसो'त्ति 'अवयव' इति व्याख्याने सम्मतिवृत्तिकृतो नास्माकं विरोध:, विवक्षावशात्तस्यापि घटमानत्वात्, किन्तु अवयवसत्त्वस्यावयविन्युपचारे न किञ्चित्कारणमुत्प्रेक्ष्यते[1], अन्यच्च, ग्रन्थान्तरेषु तथा व्याख्यानं नोपलभ्यते, अपि

---

१. **तुलना**

वृत्तिकृद्वचसां सङ्गतिप्रयास: कृत: **महोपाध्यायैरनेकान्तव्यवस्थाप्रकरणे**, अन्ते च 'इति दिक्' एवमुक्त्वोपसंहृतं, तथाहि- ''यदवयवेन विशिष्टधर्मेण आदिश्यते, तदस्ति च नास्ति च भवति, तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैर्विभक्तो हि घटोऽस्ति,परद्रव्यादिरूपेण च स एव नास्तीति। आद्ययोरपि भङ्गयो: स्वद्रव्यपरद्रव्याभ्यां विभज्यत एव घट इति तत्समुदायात्कोऽस्य विशेष इति चेत्? न, तत्रास्तित्वनास्तित्वावच्छेदकद्वारा विभागोऽवयवद्वारा विभागाभावात्, अत्र तु तद्द्वारा विभागेन विशेषात्, तद्द्वारा विभागकरणे एव किं बीजमिति चेत्? सावयवनिरवयववस्तुनस्तथा प्रतिपत्तिजनकसावय-वनिरवयवत्वशबलैकस्वरूपवाक्यत्वेन प्रामाण्यरक्षार्थमिति दिक्।''

तथा-''देशभेदं विनैकत्र तु क्रमेणापि सदसत्त्वविवक्षा सम्प्रदायविरुद्धत्वान्नोदेतीति न निरवयवद्रव्यविषयत्वमेषामित्यस्मदभिमतोक्तमेव युक्तमिति मन्तव्यम्।'' **इत्यष्टसहस्री-तात्पर्यविवरणे**ऽपि साम्प्रदायिकीं विवक्षां समादृत्यैव वृत्तिकृद्वचनानां सङ्गत्यै यतितं पूज्यैरिति।

अत: पूज्यानामपि नात्र तावान् निर्भर इति सूक्ष्मेक्षिकयाऽवगन्तव्यमिति दिक्।

।। વૃત્તિકારના પ્રતિપાદનનું તાત્પર્ય શું? ।।

શંકા : ચોથો ભાંગો 'સ્યાદસ્ત્યેવ સ્યાન્નાસ્ત્યેવ' રૂપ સસંયોગી ભાંગો હોય તો તે સકલ-સમગ્ર-વસ્તુને વિશે જ અસ્તિત્વનાસ્તિત્વને કહે છે. એવું માનો તો શું દોષ?

પ્રતિશંકા : બન્ને વચ્ચે વિરોધ હોવાથી બન્નેનો એક જ જગ્યાએ આશ્રય ન થઇ શકે.

શંકા : સ્યાદસ્તિત્વ અને સ્યાન્નાસ્તિત્વની વચ્ચે વિરોધ જ નથી. આ વાત **નયરહસ્ય** અને **સ્યાદ્વાદમંજરી** વગેરેમાં સ્પષ્ટ જ કહી છે કે ચણોઠીમાં અવયવભેદે જેમ લાલ અને કાળો રંગ રહે છે, તેમ ઘડા વગેરેમાં અવયવભેદે સત્ત્વ અને અસત્ત્વ નથી રહેતાં, વ્યાપક રીતે રહે છે.

પ્રતિશંકા : એક આધારમાં બે ધર્મો વ્યાપ્યવૃત્તિ ન હોય.

શંકા : જેમ રામમાં પુત્રત્વ અને પિતૃત્વ ધર્મ તથા જેમ અનામિકા આંગળીમાં દીર્ઘત્વ અને હ્રસ્વત્વ એક સાથે વ્યાપીને રહી શકે છે, તેમ એક સાથે સકલ વસ્તુમાં અનેક ધર્મો વ્યાપીને રહી શકવામાં વાંધો નથી. આ તત્ત્વ સમજવું.

પ્રતિશંકા : પાણીથી ભરેલા ઘડામાં જેમ જલસંયોગ અભ્યન્તર દેશ અવચ્છેદેન છે. બાહ્યદેશ અવચ્છેદેન નહીં. આમ જેમ જલવત્ત્વ અને જલાભાવ આ બન્ને'ય દેશભેદેન રહે. તેમ અહીં પણ ઘટમાં અસ્તિત્વ અને નાસ્તિત્વ દેશભેદેન રહે, એમાં શું વાંધો?

શંકા : પરંતુ, અહીં તેવી વિવક્ષા જ નથી. અન્યથા પ્રથમ-દ્વિતીય ભાંગા દ્વારા કેમ સમગ્ર વસ્તુમાં અસ્તિત્વ નાસ્તિત્વનો બોધ કરી શકાય? **નયરહસ્ય** આદિ ગ્રંથોમાં દેશભેદે તે બન્નેને રાખવાનો નિષેધ સૂચવ્યો છે. અને એમ કરતાં ધર્મીનો ભેદ થાય, જેમ કે-પ્રથમના ત્રણ ભાંગા સકલ વસ્તુ વિષયક છે અને પછીના ચાર ભાંગા જો અવયવ વિષયક હોય તો પ્રથમનો ધર્મી અવયવી બને, અને પછીનાનો અવયવ બને. માટે બન્નેના ધર્મી બદલાઇ જાય, માટે ત્રીજા વગેરે ભાંગાના અર્થને પણ સકલ વસ્તુમાં જ રાખવાં જોઇએ.

સમાધાન : વાત યોગ્ય છે. આખી વસ્તુમાં જ સત્ત્વાસત્ત્વનો સમવતાર

च, वस्तुनि यदा समग्रत्वा-ऽवयवित्वेत्यादयो व्याप्यवृत्तिन एव धर्माः सप्तभङ्ग्या विचारिताः तदा तुर्येण भङ्गेनात्रापि सत्त्ववत्समग्रत्वस्याप्यवयवित्वस्यापि चावयववृत्तितया ग्रहणे महदनिष्टमेव, न हि व्याप्यवृत्तिनो भावस्य भावांशः अवयवयोर्देशयोः समवतरति, प्रयोजनाभावाच्च विवक्षाविशेषादरणे तु सर्वस्यैव सर्ववत्त्वप्रतिपादने विनिगमकाभाव एव। इत्यतो युक्तितोऽपि न तथाव्याख्यानं निर्भरतामादधाति। कदाचन शिष्यमतिग्राहणसौकर्यमेव तथाव्याख्याने प्रयोजनं भवेत्, ततोऽन्यत्किञ्चन **तथा व्याख्यानस्य प्रयोजनं न विद्मः, बहुश्रुता विदन्ति।**

।। सम्मतिगाथाप्रतिपादितसकलादेशत्वविकलादेशत्वयोरनुप्रेक्षितं निदानम्।।

अत्र च विकलादेशत्वप्रयोजनं संयोगविकल्प एव, तन्नाम समूहालम्बनज्ञान-मेव। अतश्शब्दे विकलादेशता, ज्ञाने च विकलादेशत्वम्, तदधीनद्रव्येऽपि च तत एव विकलादेशत्वम्। क्रमशोऽवस्थाऽनेकत्ववत्त्वमेव विकलादेशत्वमिति। अत एव तृतीयभङ्गार्थे विकलादेशत्वाऽभावः। तत्र द्वयोरवस्थयोर्युगपद्विकल्पनात्, न क्रमशो नानाऽवस्थाग्रहणम्। इति सूक्ष्मेक्षिकयाऽवधेयम् । **अधिकं बहुश्रुता विदन्ति।**

।। सकलविकलादेशप्रयोजनम् ।।

अथैताभ्यां सकलादेशत्वविकलादेशत्वधर्माभ्यां किं साधनीयमिति चेत्? शिष्यबुद्धिवैशद्यम्। तदाह **नयोपदेशे श्रीमान्** → सकलादेशत्वं च प्रतिभङ्गमनन्तधर्मात्मकत्वद्योतनेन, अन्यथा च विकलादेशत्वमित्येके ← एके इति **वादिदेवसूरिवराद्याः** पूर्वजाः → अखण्डवस्तुविषयत्वेन त्रिष्वेवाद्यभङ्गेषु तत्, चतुर्षु चोपरितनेष्वेकदेशविषयत्वेन विकलादेशत्वमित्यन्ये ← अन्ये इति सम्मतिवृत्तिकृतो**ऽभयदेवसूरिवरप्रमुखाः**।→अयं व्युत्पत्तिविशेषः सर्वसप्तभङ्गी-साधारणः← तन्नामायं व्याख्याविशेष एव, न तु सप्तभङ्ग्या मौलमाकूतम्, अनेन च शिष्यमतिव्युत्पादनं साधनीयम् ।

अव. ननु तर्हि सकलादेश इति प्रमाणवाक्यं तेन निष्पन्ना च प्रमाणसप्तभङ्गी, विकलादेश इति नयवाक्यं, तेन निष्पादिता नयसप्तभङ्गीत्येतेषां

કરવો યોગ્ય છે. છતાંય કેમ વૃત્તિકારે દેશમાં-અવયવમાં કર્યો, તે સમજાતું નથી.

પ્રતિશંકા : સમ્મતિની ગાથામાં જ લખ્યું છે કે આ બધાં (ચોથા વગેરે) ભાંગા દ્વારા દેશમાં=અવયવમાં સત્ત્વાસત્ત્વને જાણવાં.

સમાધાન : તો પછી ઉત્તરાર્ધની સંગતિ શી રીતે કરવી? કારણ કે આદેશથી વિશેષિત એવું તે દ્રવ્ય જ= તે અવયવી જ અસ્તિનાસ્તિ છે. આવો આનો અર્થ છે.

પ્રતિશંકા : વૃત્તિકારે 'આદેશ'નો અર્થ ઉપચાર કર્યો છે. અવયવમાં રહેલાં ધર્મનો ઉપચાર કરવાથી, તે અવયવી અસ્તિ અને નાસ્તિ કહેવાય છે.

સમાધાન : આદેશનો અર્થ - સામાન્યથી-સ્યાત્ વગેરે પદ દ્વારા જે-તે ધર્મના આપાદક એવા ઉપાધિ રૂપ ધર્મને દ્યોતનાથી જણાવવાં પૂર્વક તે અર્થ કહેવો-એમ કરવો જોઇએ. આદેશ વિશેષિત એટલે સ્યાત્પદદ્યોત્ય સ્વપર્યાય-પરપર્યાય ઉભયથી વિશેષિત એવાં સત્ત્વ અને અસત્ત્વનાં કથનથી કથિત એવું તે દ્રવ્ય સત્ત્વ અને અસત્ત્વ ઉભયવાળું બને. આવો મૂળનો અર્થ કરવો જોઇએ.

।। સમ્મતિ ગાથાની તાત્પર્યગવેષણા ।।

પ્રતિશંકા : પરંતુ 'દેશ' પદનો અર્થ શું કરવો? વૃત્તિકારે તો 'પદાર્થનો અવયવ' એવો યથાશ્રુતાર્થ જ પકડ્યો છે. તમે શું લેશો?

સમાધાન : 'દેશ' એટલે ભંગનો અવયવ, એવું કહી શકાય. એટલે ભંગનો એક અવયવ જ્યારે સત્ત્વ પ્રતિપાદક હોય અને બીજો અસત્ત્વ પ્રતિપાદક, ત્યારે તેનાથી વાચ્ય દ્રવ્ય 'અસ્તિ નાસ્તિ' કહેવાય.

પ્રતિશંકા : જો બધા ભાંગા સકલ વસ્તુને જ કહે તો પછી સકલાદેશત્વ-વિકલાદેશત્વ ક્યાંથી રહે?

સમાધાન : દેશ વસ્તુને કહે છે માટે વિકલાદેશ નથી પણ સંયોગપૂર્વક હોવાથી - સખંડ હોવાથી તે ભાંગો જ વિકલાદેશ છે. આ રીતે અર્થ કરવો તેથી સંયોગી ભાંગા વિકલાદેશ, અસંયોગી ભાંગા સકલાદેશ. (વળી, પ્રથમ ત્રણ સકલાદેશ, પછીનાં ચાર વિકલાદેશ આવી વ્યાખ્યા વૃત્તિકારે કરી છે. મૂળમાં એ રીતનું પ્રતિપાદન નથી.)

रत्नाकरावतारिकावचसां को भावार्थः? सकलादेशत्वविकलादेशत्वयोस्तत्र नय-प्रमाणसाधनार्थकत्वमुक्तमिति चेत्, **उच्यते-**

भङ्गाः सर्वे नयात्मानः, सप्तभङ्गी प्रमाणमाः।
इति नयोपदेशस्या-ऽऽज्ञायां मे रमते मनः ।।२१।।

टीका – प्रमाणम् आः इति विग्रहः, आः पादपूरणार्थः अव्ययः। **नयोपदेशे श्रीमद्भिरेवमुक्तं,** यदुत → स्याच्छब्दलाञ्छितैकमात्रेण तु न प्रमाणवाक्यविश्रामः, सुनयवाक्यार्थस्यैव ततः सिद्धेः... प्रमाणवाक्यं त्वलौकिकबोधार्थं सप्तभङ्ग्यात्मकमेवाऽऽश्रयणीयम्, अत एव तद्व्यापकत्वं सम्मत्यादौ महता प्रयत्नेन साधितमिति किमतिविस्तरेण?←

ननु प्रमाणवाक्यमिति प्रमाणभूतवस्तुनः प्रतिपादकं वाक्यमेव। वस्तुमात्रं च नैकधर्मांशमिश्रिततया सङ्कीर्णस्वभावम्। ततश्च तादृग्वस्तुप्रतिपादकस्य वचस एव प्रमाणवाक्यत्वमुचितम्।

।। प्रामाणिकवस्तुज्ञानं प्रतिपादनश्चार्वाग्दर्शिनां भवेन्न वा? ।।

किन्त्वेतदप्यत्र विचारणीयम्, यत्किं तादृशं वस्तु अर्वाग्दर्शिनां प्रत्यक्षेणैव ज्ञायते, विकल्पज्ञानेन वा? युगपदस्तित्वनास्तित्वरूपधर्मद्वयात्मकस्यापि ज्ञानं यदि छद्मस्थानामसम्भविपदम्, तदा कथमनन्तधर्मात्मकवस्तुनो ज्ञानं युगपत्स्यादेषाम्। नहि छद्मस्थैः क्रमशोऽप्यनन्तयावद्धर्मात्मकं यावद् वस्तु प्रत्यक्षेण परिच्छिद्यते, तर्हि युगपत्तादृक्प्रमाणभूतवस्तुनः परिच्छेदनस्य तु का कथा? **न च** सकलादेशेन तादृग्वस्तु ज्ञायत एवेति **वाच्यम्,** तेनापि द्रव्यार्थिकनयेनैव द्रव्यांशप्राधान्येनाऽनन्त-धर्मात्मकवस्तुपरिच्छेदनम्, रत्नाकरावतारिकायां तथैव प्रतिपादनात्, इति सकलादेशवचसाऽभिज्ञातस्यार्थस्यापि वस्तुतो नयार्थतैव, न तु प्रमाणार्थतेति ध्येयम्। प्रामाणिकं वस्तु तु केवल्येव ज्ञातुं समर्थः। युगपदनन्तानां धर्माणां तेनैव स्वकेवलज्ञानेनाऽभिज्ञानस्य सुशक्यत्वात्। **अथ** चेत्प्रमाणज्ञानमिति यावद्वस्तु-ज्ञानमिति व्याख्या, तदा तत्केवलज्ञानमेव। केवल्युक्तवाक्यमेव च प्रमाणवाक्यमिति।

શંકા : 'દેશ'નો અર્થ ભંગ-અવયવ લેશો, તો આગળ ૩૮મી ગાથામાં અન્વય થઇ નહીં શકે.

સમાધાન : કોઇક રીતે એ ગાથાનો પણ અન્વય થઇ શકે છે. પણ, તેવી ક્લિષ્ટ કલ્પના ન કરવી હોય, તો જરૂર નથી. સામાન્યથી જ અર્થ કરવો. 'દેશ' એટલે ધર્મી-વસ્તુની અવસ્થા પર્યાય લેવો. પણ અવયવ એવો અર્થ ન કરવો. 'સત્' વસ્તુની એક અવસ્થા ભાવાંશવાળી છે, એક અવસ્થા અભાવાંશવાળી. પ્રસ્તુત ગાથામાં એક ભાવાંશવાળી અવસ્થા લેવાની અને એક બીજી ભાવાભાવ યુગપદ્ ઉભય અંશવાળી અવસ્થા લેવાય. તે બન્નેને ક્રમથી એક સાથે ગ્રહણ કરાતાં જ્યારે શબ્દથી આદેશ કરાય, ત્યારે તેવાં જ્ઞાનનાં વિકલ્પને કારણે તે દ્રવ્યને 'સ્યાદ્ અસ્ત્યેવ, સ્યાદ્ અવક્તવ્યમેવ ચ' આવું કહેવાય. આમાં વિકલ્પ કરવો એનો અર્થ તેવી રીતે જ્ઞાન કરવું, અને આદેશ કરવો અર્થાત્ તે વિકલ્પને શબ્દથી કહેવો...

અહીં, 'દેશ' પદનો 'અવયવ' અર્થ એવી વ્યાખ્યા કરવામાં કોઇ ક્ષતિ નથી. વિવક્ષાવશે તેવી પણ વ્યાખ્યા ઉપપન્ન થાય છે. પરંતુ, જ્યારે સત્ત્વાસત્ત્વને અંતે તો અવયવીમાં જ રાખવાનાં છે, અને જ્યારે તે અવયવીમાં વ્યાપીને રહી જ શકે છે, ત્યારે પણ તેને પહેલાં અવયવોમાં રાખવા અને પછી અવયવગત તેનો અવયવીમાં ઉપચાર કરવો, આવી પરંપરા કરવામાં સામાન્યથી કોઇ ખાસ પ્રયોજન ન હોય.

વળી, વસ્તુગત સત્ત્વાદિની જેમ જ્યારે અવયવીત્વ વગેરેનું સપ્તભંગી દ્વારા અવગાહન કરવાનું હોય, ત્યારે ચોથા ભાંગાથી અવયવીત્વનાં સત્ત્વને અવયવમાં શી રીતે રાખી શકાય? કારણ કે અવયવીત્વ વગેરે વ્યાપ્યવૃત્તિ ધર્મો છે. તે કોઇક ખાસ ઉપાધિથી દ્રવ્યમાં રહે છે. પણ દેશભેદથી નહી. માટે તેનો અવચ્છેદક કોઇ અવયવ ન બને, પણ તે વિશિષ્ટ ઉપાધિ જેનાં નિમિત્તે તે પર્યાય આવ્યો છે તે અવચ્છેદક બને છે. આમ, યુક્તિથી તે વ્યાખ્યા સર્વત્ર નહી ઘટે.

તેમ, **મહોપાધ્યાયજી મહારાજાએ** અમુક ગ્રંથોમાં આ ગાથાની આ વ્યાખ્યા સમ્પ્રદાય વિશેષથી (નય-વ્યુત્પત્તિ વિશેષથી) સાચી સાબિત કરવાનો પ્રયાસ

छाद्मस्थिकज्ञानमात्रस्यैव नयत्वम्, छद्मस्थोक्तवाक्यमात्रस्यैव च नयवाक्यत्वमिति।

तन्न–यथा छद्मस्थस्य प्रत्यक्षेण अस्तित्वनास्तित्वयोर्युगपद्बोधेऽशक्येऽपि विकल्पजो बोधस्तु जायत एव, यथा च 'अवक्तव्य'शब्देन तदुच्यतेऽपि। तथा छद्मस्थस्य साक्षादनन्तधर्मात्मकवस्तुज्ञानस्याशक्यत्वेऽपि अनन्तधर्मात्मकवस्तुनो वैकल्पिकं वितर्करूपं ज्ञानं जायत एव, व्युत्पन्नदशायाम्। उत्पत्तिव्ययध्रौव्यात्मकं सत्, अनन्तधर्मात्मकं सत्, इत्यादिशब्दैः परिपूर्णस्य वस्तुनः, 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' इत्यादिवाक्यैः परिपूर्णमोक्षमार्गरूपवस्तुनः प्रतिपादनस्य शक्यत्वाच्च तादृग्वस्तु उच्यतेऽपि।

।। प्रसङ्गाद् वस्तुलक्षणविचारणा ।।

ननु–वस्तुत्वमिति किम्? शास्त्रेषु क्वचन उत्पत्ति-व्यय-ध्रौव्यात्मकत्वं, क्वचिद् द्रव्य-गुण-पर्यायात्मकत्वं, तथा कुत्रचित् सदसदात्मकत्वं, नित्यानित्यात्मकत्वं, भेदाभेदात्मकत्वमित्यादिरीत्या वस्तुलक्षणं प्रतिपादितमिति विनिगमनाविरह एवात्र।

तन्न–अन्यान्यरीत्या प्रतिपादनेऽपि न लक्ष्यभेदः, यदेवोत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मकत्वेन लक्ष्यते, तदेव द्रव्यगुणपर्यायवत्त्वेनेत्यादितया लक्ष्यते, यतो यदुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं, तद् द्रव्यगुणपर्यायाद्यात्मकं भवत्येव।

तादृशं च वस्तु व्यापकं पुद्गलद्रव्यमपि, तद्व्याप्यमौदारिकपुद्गलमपि, तद्व्याप्यं मृद्द्रव्यमपि, तद्व्याप्यं घटात्मकमपि, तद्व्याप्यं शिशिरोत्पन्नघटद्रव्यमपि... एतेषु सर्वेष्वपि वस्तुलक्षणस्य सङ्गच्छमानत्वात्।

यत्र वस्तुनि वस्तुलक्षणं घटते, तत्सर्वांशत्वात्प्रामाणिकं वस्तु। तदेव च प्रमाणज्ञानेन तथा–सर्वांशात्मकतया–ज्ञायते। नयज्ञानेन तु स्वानभिमतांशौदासीन्येन स्वाभिप्रेतांशप्राधान्येन च सांशं ज्ञायते। सप्तभङ्ग्याः प्रत्येकेन भङ्गेन साक्षात् सांशं वस्तु ज्ञायते, समग्रया तया च निरंशं वस्तु विज्ञायते। 'स्यात्सदेवे'ति प्रथमभङ्गेन भावात्मकं सद् वस्तु ज्ञायते, अभावांशश्च गौणीक्रियते। 'स्यान्नित्यमेवे'त्यनेन

કર્યો છે. બાકી અન્ય ગ્રંથોમાં આ રીતનું નિરૂપણ દેખાતું નથી. માટે સર્વશાસ્ત્રકારોને પણ આ જ રીત માન્ય નથી.

કદાચ આ રીતે અવયવભેદે પ્રતિપાદન કરે, તો શિષ્યને જલ્દી સમજાઇ જાય, એવું આ એક જ પ્રયોજન હોય, તેવી વ્યાખ્યા કરવા પાછળ. બાકી એનાથી અન્ય કોઇ પ્રયોજન હોય તો જાણતાં નથી. **તત્ત્વ બહુશ્રુતો જ જાણે.**

।। સમ્મતિની ગાથામાં જણાવેલાં સકલાદેશત્વ અને વિકલાદેશત્વનું અનુપ્રેક્ષિત નિદાન ।।

આમ તો સમ્મતિની ગાથાઓમાં પ્રથમના ત્રણ ભાંગા તે સકલાદેશ અને પછીનાં ચાર ભાંગા તે વિકલાદેશ આવું પ્રતિપાદન દેખાતું નથી. પરંતુ, ટીકાકારે તેવું કર્યું હોવાથી સમ્મતિકારનો જ એ અભિપ્રાય હશે, એવું માની લઇએ, તો વિકલાદેશતાનું પ્રયોજન એ **સંયોગ વિકલ્પ** જ લેવો યોગ્ય છે. સંયોગી ભંગ વિકલાદેશરૂપ છે. જેનાથી સમૂહાલંબનાત્મક વિકલજ્ઞાન થાય છે. જેનો વિષય બનતું દ્રવ્ય ક્રમે કરીને અનેક અવસ્થાવાળા તરીકે જણાય છે. આથી, વિકલાદેશ= અહીં આદેશ તરીકે ભંગ લો, તો સંયોગી ભંગ એ વિકલાદેશ. આદેશ તરીકે જ્ઞાન લો, તો સમૂહાલંબનજ્ઞાન એ વિકલાદેશ. આદેશ તરીકે દ્રવ્ય લો, તો ક્રમશઃ અનેક અવસ્થાવાળું દ્રવ્ય અર્થાત્ ક્રમશઃ અનેક અવસ્થાવત્ત્વેન જણાતું દ્રવ્ય, એ વિકલાદેશ. આથી જ, ત્રીજા ભાંગાના અર્થમાં ક્રમશઃ અનેક અવસ્થાનું જ્ઞાન નથી, યુગપત્ છે, માટે તે વિકલાદેશ રૂપ નથી. **અધિક તો બહુશ્રુતો જ જાણે.**

।। સકલાદેશ - વિકલાદેશનું પ્રયોજન ।।

શંકા : આ સકલાદેશ અને વિકલાદેશ દ્વારા શું કરવાનું?

સમાધાન : આના દ્વારા શિષ્યની મતિનો વિકાસ થાય છે. અને એને ખબર પડે છે કે એકની એક સપ્તભંગીને આવી રીતે પણ ખોલી-સમજી-શકાય છે. આવું **નયોપદેશ-નયામૃતતરંગિણી**નું મન્તવ્ય છે અને અમારું પણ એમ જ કહેવું છે. ।।૨૦।।

અવ. શંકા : રત્નાકરાવતારિકામાં તો સ્પષ્ટ લખ્યું છે કે સકલાદેશ રૂપ

भावात्मकं नित्यं ज्ञायते, 'स्याद् घट एवे'त्यनेन भावात्मकं घटवस्तु ज्ञायते। 'स्याद् न सदेव'ति द्वितीयेन भङ्गेन तदेव सदात्मकं वस्तु अभावात्मकतया ज्ञायते। एवमन्यत्रापि।

एतेन सिद्धं यदुत सप्तभङ्ग्याः प्रथमो भङ्गः सन्नित्यघटपटस्थिरादिरूप-वस्तुनो भावांशं प्रतिपादयति, अतस्तद् भावनयवाक्यं उच्यते, भावश्च सङ्ग्रहस्याकूतम्। द्वितीयो निरुक्तवस्तुनोऽभावांशं प्रतिपादयन्नभावनयवच उच्यते, अभावश्च व्यवहारस्याकूतम्। एवं भावात्मकं वस्त्वंशम्, अभावात्मकं वस्त्वंशं, भावाभावात्मकं वस्त्वंशम् इत्येवं रीत्या सदादिरूपवस्तुनः सप्तांशान् सप्तस्वरूपानिति प्रतिपादयन्तः सप्तभङ्गीयाः प्रत्येके भङ्गा नयवाक्यरूपाः, आंशिकवस्तु-प्रतिपादनात्। सप्तभङ्गी च तत्समाहारनिष्पाद्या कथञ्चित्तद्भिन्ना च प्रमाणवाक्यम्, समग्रवस्तुप्रतिपादनात्।

।। एकवाक्यस्य प्रमाणवाक्यत्वं स्यान्न त्वेकभङ्गस्य ।।

अथास्तु प्रमाणबोधत्वस्य यावद्धर्मात्मकपरिपूर्णप्रमाणवस्तुविषयक-ज्ञानत्वमिति व्याख्यायां वितर्करूपत्वमेव। प्रमाणवाक्यत्वमिति च सप्तभङ्गीमहावाक्यत्वमेव। परन्तु न तत्सप्तभङ्गीयैकेनैव भङ्गेन निर्वर्त्यम्, अत एव **यत्केचन** स्याच्छब्देन विवक्षितधर्मोपरागेण कालादिभिरभेदवृत्त्याऽभेदोपचारा-द्वाऽनन्तधर्मात्मकवस्तुप्रतिपादने प्रमाणवाक्यस्यैव व्यवस्थितेः, न च सप्तभङ्गात्मकं प्रमाणवाक्यम्, एकभङ्गात्मकं च नयवाक्यमित्यपि नियन्तुं शक्यम्, सप्त भङ्गाः सप्तविधजिज्ञासोपाधिनिमित्तत्वात्, न च तेषां सार्वत्रिकत्वम्, को जीवः? इति प्रश्ने लक्षणमात्रजिज्ञासया 'स्याज्ज्ञानादिलक्षणो जीव' इति प्रमाणवाक्यरूपस्योत्तरस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात्, स्यात्पदस्य चात्राऽनन्तधर्मात्मकत्वेन प्रामाण्याङ्गत्वम् **इत्याहुः**, **तन्मिथ्या।**

तन्न, प्रमाणवाक्यत्वमिति 'स्यादस्त्येवे'त्यादिसप्तभङ्गीयैकभङ्गस्वरूपं मा भूत्, तेन साक्षादांशिकवस्तुप्रतिपादनात्, व्युत्पन्नं प्रत्येव परिपूर्णवस्तुद्योतनात्, किन्तु 'अनन्तधर्मात्मकं वस्त्वि'त्यादिस्वरूपैकवाक्यरूपमप्यस्त्येव तत्, साक्षादेव

સપ્તભંગી એ પ્રમાણ સપ્તભંગી છે... વગેરે વગેરે વચનોનો પછી શું અર્થ લેવો? ત્યાં તો સકલાદેશ અને વિકલાદેશને પ્રમાણવાક્ય અને નયવાક્ય તરીકે બતાવ્યાં છે.

સમાધાન : આ વાત કહેવાં કહે છે -

ભાંગા સર્વે નયરૂપ છે, સપ્તભંગી છે પ્રમાણ;

આવી નયોપદેશની, આજ્ઞા મુંને પ્રમાણ ।।૨૧।।

વાર્તિક. નયોપદેશ અને તદનુસારિ સ્વોપજ્ઞટીકા **નયામૃતતરંગિણીમાં** શ્રીમાન્ **મહોપાધ્યાયજી**એ કહ્યું છે કે - ''એક ભાંગો એ સકલાદેશરૂપ હોય કે વિકલાદેશ રૂપ, એ ક્યારેય પ્રમાણવાક્ય બની જ ન શકે. એ સ્યાત્ પદથી યુક્ત હોવાથી સુનય વાક્ય હોય અને પ્રમાણવાક્ય તો સપ્તભંગીરૂપ જ માન્ય છે.''

પ્રામાણિક વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરનારું વાક્ય, એ પ્રમાણવાક્ય. પ્રામાણિક વસ્તુ એટલે અનેક ધર્મો રૂપી અંશોથી મિશ્રિત સર્વાંશ-નિરંશ-સકલ વસ્તુ. એવી વસ્તુને જણાવતું વચન તે પ્રમાણવાક્ય કહેવાય.

।। પ્રામાણિક વસ્તુનું જ્ઞાન કે પ્રતિપાદન છદ્મસ્થથી શક્ય છે ખરું? ।।

શંકા : પ્રામાણિક વસ્તુ છદ્મસ્થ દ્વારા પ્રત્યક્ષથી જણાય કે વિકલ્પજ્ઞાનથી? કારણ કે જો યુગપદ્ ઉભય પણ તેમને પ્રત્યક્ષથી ન જણાતાં હોય, તો અનંત ધર્મો તો ક્યાંથી જણાય? છદ્મસ્થને યુગપદ્ જ નહીં, ક્રમશઃ પણ યાવદ્ અનંત ધર્મોનું જ્ઞાન થઇ જ ન શકે.

પ્રતિશંકા : સકલાદેશની પ્રક્રિયાથી પ્રામાણિક વસ્તુનું જ્ઞાન થાય જ છે ને?

શંકા : સકલાદેશ દ્વારા પણ દ્રવ્યાર્થિક નયની મુખ્યતાએ જ અનંત ધર્માત્મક વસ્તુનો બોધ થાય છે. એટલે સકલાદેશથી જાણેલો અર્થ પણ હકીકતમાં નયરૂપજ્ઞાનથી જ જાણ્યો છે. તે સાંશ છે, પ્રામાણિક તો નથી. અને એને પણ પ્રામાણિક કહો, તો એમ કહેવું પડે કે અસલ પ્રમાણજ્ઞાન તો કેવલજ્ઞાન છે. અને છાદ્મસ્થિક ઔપચારિક પ્રમાણ જ્ઞાન એ દ્રવ્યાર્થિક નયાત્મક છે. એટલે પ્રામાણિક વસ્તુને જાણીને તેવું પ્રતિપાદન કરનારું વચન તો કેવલીનું જ હોય માટે છદ્મસ્થનું

तेन परिपूर्णवस्तुकथनात्। **न च** स्यात्पदेनाऽनन्तधर्मात्मकत्वं द्योत्यत एवेति 'स्यादस्त्येवे' त्यस्यापि सप्तभङ्गीभङ्गस्य अनन्तधर्मात्मकमेवेत्येतदर्थगमकत्वमिति **वाच्यम्**, तथा सति 'अस्ति'पदस्य वैयर्थ्यापतेः। "स्याद् घट एवे" त्येतदेव वक्तव्यं न तु "स्यादस्त्येव घट" इत्येतावदिति। घटे विशेष्ये स्यात्पदार्थानन्तधर्माणां स्वयमेवान्वयो भविष्यति, किं तदाऽस्तित्वरूपैकधर्मपरकास्तिपदव्यर्थोल्लेखेन? **न च** स्यात्पदेनानन्तधर्मात्मकत्वद्योतनायाऽस्तिपदोपसम्पदानमावश्यकम्। अस्तिपद-प्रतिपाद्यास्तित्वरूपधर्मे लौकिकी विषयता स्यात्पदद्योत्या, अनन्तधर्मात्मकत्वांशे च लोकोत्तरेति **वाच्यम्**, तथा सति अस्तित्वम् अस्तिपदेनाप्युच्यते, स्यात्पदेनापि च, इत्यत्र पुनरुक्तताऽऽपत्तेः। **अथ** स्यात्पदोत्तरपदमात्रस्यैव अनन्तधर्मार्थकत्वम्। 'अस्ति' पदेनास्तित्वमेव केवलमुच्यते, स्यात्पदोत्तरास्तिपदेन चानन्तधर्मा एवोच्यन्ते। **यद्वा** स्यादेवमपि, यदुत-अस्तिपदेन केवलमस्तित्वमुच्यते, स्यात्पदेन तु तदितरेऽनन्ता अपि धर्माः, घटादेस्तु विशेष्यतया भानम्, न कथनम्, **इति चेत्? तन्न,** सप्तभङ्गीयस्यात्पदस्य कथञ्चिदर्थकत्वस्य सम्यगेकान्तसाधकत्वस्यानेकान्त-द्योतकत्वस्य च आगमप्रामाण्यतः स्वानुभवप्रतीतेश्च सिद्धत्वात्, तथा अत्रैव पूर्वं सविस्तरं साधितत्वात्, न तेन तन्मिश्रास्तिपदेन वानन्तधर्मात्मकत्वमुच्यते।

।। प्रसङ्गात्प्रमाणनयतत्त्वालोकप्रतिपादितसकलादेश-विकलादेशतात्पर्यगवेषणा ।।

अथ सप्तभङ्ग्याः प्रत्येकभङ्गस्यापि अनन्तधर्मात्मकवस्तुवाचकत्वमेव मन्तव्यमनन्यगत्या। तथाहि सप्तभिर्भङ्गैरेकैकः अंश उच्यते, तदा सकलया सप्तभङ्ग्याऽपि वस्तुगतास्सप्तैवांशाः प्रोक्ताः, प्रमाणात्मकं तु वस्तु अनन्तधर्मात्मकम्, तस्मिंस्तादृश्यनुक्ते सप्तभङ्गी प्रमाणवाक्यं न स्यात्। अतस्सप्तभङ्ग्याः प्रत्येकेनापि भङ्गेनानन्तधर्मात्मकं वस्तु प्रतिपाद्यते-इति मन्तव्यम्। नहि 'स्यादस्त्येवे'ति प्रथमेन अस्तित्वरूपैकधर्मवत एव सद्वस्तुनो भावांश उच्यते, किन्तु सद्वस्तुनः अनन्तस्वधर्मसंयुतस्यैव भावांशः कथ्यते, अनन्तधर्मसङ्कीर्ण एव वस्तुनि 'अस्ति'-शब्दप्रयोगात्। एवं द्वितीयेनापि अनन्तपरधर्मालिङ्गितस्यैव सद्वस्तुनोऽभावांशो निगद्यते, अनन्तपरपर्यायवति 'अस्ति'शब्दस्याप्रयोगात्।

બધું જ જ્ઞાન એ નયજ્ઞાન રૂપ છે અને બધું જ વચન એ નયવાક્ય છે...

સમાધાન : આ વાત ખોટી છે. છદ્મસ્થને જેમ યુગપદ્ ઉભયનું જ્ઞાન પ્રત્યક્ષાત્મક નહીં પણ વિકલ્પાત્મક થાય છે. તેમ અનંત યાવદ્ ધર્માત્મક પ્રામાણિક વસ્તુનું જ્ઞાન પણ વિકલ્પાત્મક થવું શક્ય છે. 'ઉત્પત્તિ-વ્યય-ધ્રૌવ્યાત્મક સત્ છે.' 'અનન્તધર્માત્મક સત્ છે.' ઇત્યાદિ વાક્યો દ્વારા તેવી વસ્તુનું પ્રતિપાદન પણ સુશક્ય છે જ.

।। પ્રસંગથી વસ્તુનાં લક્ષણની વિચારણા ।।

શંકા : વસ્તુનું લક્ષણ શું છે? શાસ્ત્રોમાં ક્યાંક 'ઉત્પત્તિ-વ્યય-ધ્રૌવ્યાત્મક વસ્તુ હોય' એવું કહ્યું છે, તો ક્યાંક 'દ્રવ્યગુણપર્યાયાત્મક વસ્તુ હોય' એમ કહે છે. તો ક્યાંક સદસદાત્મક, નિત્યાનિત્યાત્મક, ભેદાભેદાત્મક વસ્તુ છે. આવી અલગ અલગ રીતે બતાવે છે તો છેલ્લે વસ્તુનું લક્ષણ શું છે?

સમાધાન : અન્ય અન્ય લક્ષણો આપ્યાં છે પણ છેલ્લે લક્ષ્ય તો એક જ છે. જે ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્ય રૂપ છે, તે જ દ્રવ્યગુણ-પર્યાયાત્મક છે. ઇત્યાદિ વિચારવું.

વળી તેવી તે વસ્તુ કદાચ વ્યાપક એવું પુદ્ગલ વસ્તુ પણ હોય, એને વ્યાપ્ય ઔદારિક પુદ્ગલ વસ્તુ પણ હોય, તેને વ્યાપ્ય માટી વસ્તુ પણ હોય, તેને વ્યાપ્ય ઘટ વસ્તુ પણ હોય... આ બધામાં વસ્તુનું લક્ષણ સુપેરે ઘટે જ છે. આથી જ વ્યાપક એવાં આત્માનું લક્ષણ બતાવતાં 'જ્ઞાનદર્શનચારિત્રાત્મકત્વ' કહે. અને વ્યાપ્ય એવાં મોક્ષમાર્ગનું (આત્મારૂપી વ્યાપક વસ્તુને વ્યાપ્ય એવી વસ્તુનું) લક્ષણ બતાવતાં 'સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રાત્મકત્વ' કહે. આ બધાં લક્ષણો વ્યાપક અથવા વ્યાપ્ય એવી પ્રમાણાત્મક વસ્તુને જ કહે છે, માટે તે બધાં પ્રમાણવાક્યો જ છે.

હવે મૂળ વાત પર આવીએ, ઉપરોક્ત ઉપચરિત કે નિરુપચરિત પ્રામાણિક વસ્તુ પ્રમાણજ્ઞાન દ્વારા નિરંશ રીતે જણાય છે. અને નયજ્ઞાન દ્વારા સાંશ જણાય છે. સપ્તભંગીના બધાં પ્રત્યેક ભાંગાઓથી સાક્ષાત્ તો સાંશ વસ્તુ જણાય અને સમગ્ર સપ્તભંગી દ્વારા નિરંશ વસ્તુ જણાય. જેમ કે 'સ્યાત્ સદ્ એવ' આ

सत्यमेतत्, सद्वस्तुनो भावांश एकानेकैः यावदनन्तैर्धर्मैर्मिश्रितो भवेत्। भावांश-ग्राहिणो भावनयस्य व्याप्यव्यापकव्यापकतरविषयकत्वेनावान्तरानेकभेदपतितत्वात्, व्याप्यव्यापकवस्त्वधीनत्वात्तस्य। तत्र च प्रमाणात्मकपरिपूर्णवस्तुनः सप्तभङ्ग्या प्रतिपादनं तदैव भवति, यदा प्रथमेन यावत्स्वधर्ममिश्रितो भावांशः, द्वितीयेन च यावत्परधर्ममिश्रितोऽभावांश इत्यादिर्गृहीतः। एवं प्रथमेनापि केवलेनापि भङ्गेन अनन्तधर्मप्रतिपादनं भवेत्, पर्याप्तधर्मप्रतिपादनं न भवेत् । अतोऽनन्तधर्मप्रति-पादकवाक्यत्वमिति प्रमाणवाक्यत्वं न, किन्तु पर्याप्तवस्तुप्रतिपादकवाक्यत्वमित्येव प्रमाणवाक्यत्वं वाच्यम्। अन्यच्च, एकधर्मप्रतिपादकवाक्यत्वमिति नयवाक्यत्वं न, किन्तु सांशवस्तुप्रतिपादकवाक्यत्वमेव नयवाक्यत्वम्।

एवं सकलादेशत्व-विकलादेशत्वयोरपि कल्पनायामिदमेव **श्रीमद्वादिदेव-पूज्याना**माकूतं स्यात्। यदा प्रथमेन भङ्गेन अनन्त-यावद्-धर्मात्मको भावांशो गृहीतः, प्रतिपादितः, तदा सकलसप्तभङ्ग्या समग्रधर्मात्मकं व्यापकं वस्तु प्रतिपाद्यते इति सकलादेशोऽसौ। यदा प्रथमेन अवान्तरभावनयेन असमग्रो भावांशः प्रतिपादितस्तदा सकलयाऽपि सप्तभङ्ग्या असमग्रमेव व्याप्यमेव वस्तु कथ्यते, इति विकलादेशोऽसौ।

अतो भवेद् विकलादेशसप्तभङ्ग्या नयसप्तभङ्गीत्वम्, सकलादेशसप्त-भङ्ग्याश्च प्रमाणसप्तभङ्गीत्वमिति ।

परन्तु एकस्य तु नयसप्तभङ्ग्याः प्रमाणसप्तभङ्ग्या वा भङ्गवाक्यस्य कदाऽपि प्रमाणवाक्यत्वं न सम्भवति। साक्षात्तेन व्याप्यस्य व्यापकस्य वा सांशवस्तुन एव प्रतिपादनादिति।

।। पूज्यमलयगिरिपादानां वचसां तात्पर्यगवेषणा ।।

स्यादेतत्, स्यात्पदस्यानन्तधर्मार्थकत्वे अस्तिपदस्य च वस्तुवाचकत्वे 'स्यादस्ती'ति वाक्येन 'अनन्तधर्मात्मकं वस्त्वि'ति बोधसम्भवे तस्य वाक्यस्य प्रमाणवाक्यत्वमेव। यदुक्तं **श्रीमद्भिर्गुरुतत्त्वविनिश्चये** → मलयगिरिपादवचनं

ભંગથી ભાવાંશાત્મક સદ્વસ્તુ જણાય છે અને અભાવાંશ ગૌણ કરાય છે. 'સ્યાત્ ન સદ્ એવ' ભાંગાથી અભાવાંશાત્મક સદ્વસ્તુ જણાય. ભાવાંશ ગૌણ કરાય.

આથી સાબિત થાય કે સપ્તભંગીનો પ્રથમ ભંગ એ વસ્તુનાં ભાવ અંશને કહે છે, માટે તે ભાવ નયનું વચન છે. અને બીજો ભાંગો અભાવનયનું વચન છે. ભાવ એ સંગ્રહનયનું તાત્પર્ય છે. અભાવ એ વ્યવહારનયનું. સાતે'ય ભાંગા વસ્તુનાં ભાવાત્મક, અભાવાત્મક, ભાવાભાવાત્મક ઇત્યાદિ સાત અંશોનું પ્રતિપાદન કરે છે. આંશિક વસ્તુ જણાવતાં હોવાથી તે બધાં નયવાક્ય સમજવાં અને તેમનાં સમૂહ રૂપ તથા કથંચિત્ તેનાથી ભિન્ન એવી સપ્તભંગી એ પ્રમાણરૂપ છે. તે પ્રમાણ વાક્ય છે, યાવદ્ અંશોની બોધક હોવાથી. **ઇતિ સંક્ષેપ.**

શંકા : આમ, એક ભાંગો જો પ્રમાણવાક્યરૂપ ક્યારેય બનતો જ ન હોય, તો સ્યાત્ પદનો અર્થ અનન્ત ધર્માત્મકત્વ કરીને જેઓ સપ્તભંગીનાં પ્રત્યેક ભાંગાને પણ પ્રમાણવાક્ય કહે છે, તેઓનું તે પ્રતિપાદન મિથ્યા છે?

સમાધાન : પ્રમાણ વાક્ય એ સપ્તભંગીના એક વાક્ય રૂપ ન થાય. (કારણ કે ભંગ વાક્ય એ સાક્ષાત્ તો આંશિક વસ્તુને જ જણાવે. વ્યુત્પન્નને તેના દ્વારા અનંત-સર્વ-ધર્મોનો બોધ થાય પણ ખરો.) પરંતુ, પ્રમાણ વાક્ય એ "અનન્ત ધર્માત્મક વસ્તુ છે." ઇત્યાદિ રૂપ એક વાક્ય સ્વરૂપ હોઇ શકે છે જ.

શંકા : જો એક વાક્ય પણ પ્રમાણરૂપ બને, તો પછી સપ્તભંગીના એક ભંગ વાક્યને શા માટે પ્રમાણ વાક્ય રૂપ ન કહેવાય?

સમાધાન : શ્રી **પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર** પરની **રત્નાકરાવતારિકા** ટીકામાં અને તદનુસારે **આવશ્યકનિર્યુક્તિની મલયગિરિજી કૃત વૃત્તિ**માં સકલાદેશ રૂપ એક ભંગ વાક્યને પણ પ્રમાણ વાક્ય કહ્યું છે અને **મહોપાધ્યાયજી નયોપદેશની છઠ્ઠી ગાથા**માં અને તદનુસારી **વિવરણ**માં એમ લખે છે, કે 'આ સમ્પ્રદાયમત હોવાથી અમે એનો પણ સંગ્રહ કર્યો-ઉલ્લેખ કર્યો. બાકી હકીકતમાં તો પ્રમાણ વાક્ય એ સપ્તભંગી રૂપ વાક્ય સમૂહ જ હોવું જોઇએ. અન્યતર ભંગ નહીં.'

त्वप्रतिपक्षधर्माभिधानस्थलेऽवच्छेदकभेदाभिधानानुपयुक्तेन स्यात्पदेन साक्षादनन्तधर्मात्मकत्वाभिधानात् ← इति। परन्तु तद्वाक्यं 'स्यादस्त्येवे'-तिरूपसप्तभङ्गीयप्रथमभङ्गवाच्यार्थभिन्नवाच्यार्थकमिति तदापाततस्तत्सदृशं दृश्यते चेदपि ततो भिन्नमेव।

आह–अत्रापि 'स्यात्स्यादेव', 'स्यान्न स्यादेवे'त्येवं सप्तभङ्गी सम्भवति, 'अस्ति' वस्तु अनन्तधर्मात्मकमपि अनेकान्तेनावगाह्यमानं, तच्च सम्यगेकान्तेनावगाह्यमानमेकादिधर्मात्मकमपि च, अतोऽननन्तधर्मात्मकमपि। इत्यत: 'स्यात्स्यादेव', 'स्यान्न स्यादेवे'ति सप्तभङ्ग्या: सम्भवे-'स्यात्स्यादेवास्ति' एवं रीत्या सप्तभङ्गीय: प्रथमो भङ्गोऽपि 'स्यादस्ति'पदेन ग्राह्य:, स्यात्कारैवकारयो-रनुक्तयोरपि समुच्चयात्।

तन्न, 'स्यादस्त्येवे' त्यत्रास्तिवस्तुन: सप्तभङ्गीकथनम्, 'स्यात्स्यादेवे' त्यत्र तु स्याद्वस्तुन: सप्तभङ्गीकथनमिति द्वयो: सप्तभङ्ग्योर्भेद एव, **न च** 'अस्ति'-वस्तुन: सप्तभङ्ग्या: प्रथमं वाक्यं तन्मा भूत्, 'स्याद्'वस्तुनस्तु सप्तभङ्ग्या: प्रथमो भङ्गो भवेदेव स इति **वाच्यम्**, स्यात्कारैवकारयो: समुच्चये सप्तभङ्गीयप्रथम-भङ्गत्वेन यदि 'स्यादस्ति' वाक्यं विवक्षितं, तदा तस्य परिपूर्णबोधकत्वं नैव स्यात्। प्रथमेन भङ्गेन अनेकान्तात्मकत्वेन अनन्तधर्मात्मकं वस्तु भावांशमुख्यतयैव गृहीतम्। द्वितीयेन एकान्तात्मकत्वेन अनन्तधर्मात्मकं वस्तु अभावांशात्मकतयैव गृहीतम्। अत: समग्रै: सप्तवाक्यैरेव अनेकान्तैकान्तात्मकं वस्तु, तन्नाम भावाभावात्मकानन्तधर्मात्मकं वस्तु पर्याप्ततया विज्ञायते। इति सुसूक्ष्ममवधेयम्।

इत्यतो यदा स्यात्पदेन प्रतिपक्षधर्मव्यावृत्ततया अनन्तधर्मात्मकत्वं न कीर्त्यते, तदैव 'स्यादस्ति' इति वाक्यस्यानन्तधर्मवाचकत्वं, प्रामाणिकवस्तुवाचकत्वं, वस्तुन: सङ्कीर्णस्वभावत्वद्योतकत्वम्, एकान्तत्वानेकान्तत्वसत्त्वासत्त्वादिसर्वांशेन ख्यापकत्वमिति यावत् तदैव 'स्यादस्ति'वाक्यं प्रमाणवाक्यम्। स्यात्कारैवकार-युक्तत्वे तु सप्तभङ्ग्या: प्रथमभङ्गत्वे तस्य असमग्रवस्तुकथनान्नयवाक्यत्वमेव तस्येति सुसूक्ष्ममवधार्यम्।

શંકા : પરંતુ (જેમ મલયગિરિજી કહે છે તેમ) 'સ્યાત્' પદથી અનંત ધર્મોનો બોધ થાય, તો 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' આ ભાંગાથી વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે. આવો પ્રમાણભૂત વસ્તુને વિષય કરનારો બોધ કેમ ન થાય?

સમાધાન : જો અનંત ધર્મો 'સ્યાત્' પદથી જ જણાઇ જાય, તો 'અસ્તિ' પદ વ્યર્થ બની જાય, કે જે માત્ર 'અસ્તિત્વ' રૂપ એક ધર્મને માટે જ વપરાયું છે.

શંકા : 'અસ્તિ' પદથી જે અસ્તિત્વ ધર્મ જણાય છે, તેમાં સ્યાત્ પદથી પ્રતિપાદ્ય એવી લૌકિક વિષયતા છે અને અનન્તધર્મો જે સત્યાત્પદથી જણાય છે, તેમાં સ્યાત્ પદથી પ્રતિપાદ્ય લોકોત્તર વિષયતા છે. માટે, સ્યાત્ પદ દ્વારા અનંત ધર્મો જાણવાં માટે અસ્તિ વગેરે લૌકિક વિષયક જ્ઞાન કરાવનાર પદોનો સમભિવ્યાહાર જરૂરી બને છે.

સમાધાન : એવી વ્યુત્પત્તિની નવી કલ્પના કરવી એ તો ગૌરવ રૂપ છે જ. વળી ત્યાં પણ 'અસ્તિત્વ' ધર્મ એ 'સ્યાત્' પદથી પણ જણાયો, અને 'અસ્તિ' પદથી પણ જણાયો. એટલે પુનરુક્તિ દોષ આવ્યો જ.

શંકા : તો એમ માનવું કે સ્યાત્ પદ પછી જે કોઇપણ પદ હોય, તેનો અનંતધર્માત્મકત્વ અર્થ થાય. સ્યાત્ પદનાં મહિમાથી અસ્તિ પદ દ્વારા માત્ર અસ્તિત્વ નહીં જણાય, પણ અનંત ધર્માત્મકતા જણાશે.

અથવા, અસ્તિ વગેરે પદો દ્વારા માત્ર તે-તે અસ્તિત્વ વગેરે ધર્મો જ કહેવાશે, અને સ્યાત્ પદથી તે સિવાયનાં અનંત ધર્મો કહેવાશે. આવું પણ માનવામાં વાંધો નથી... (ઘટ વગેરે વસ્તુનું તો વિશેષ્ય તરીકે અધ્યાહારથી જ જ્ઞાન થાય, પણ તેને કહેવાની જરૂર નથી. 'અસ્તિત્વ' જ્યાં રહે, તે ઘટાદિ વસ્તુ અથવા 'અસ્તિ' રૂપ વસ્તુ અર્થાત્ અસ્તિત્વેન અવગાહિત થતી ઘટાદિવસ્તુ.)

સમાધાન : આ અને આ સિવાયની પણ અનેક વ્યવસ્થાઓ ભલે વિચારી શકાય. પરંતુ, સપ્તભંગીગત 'સ્યાત્' પદનો જે અર્થ પૂર્વે નિશ્ચિત કર્યો છે, તેને બદલી શકાય નહીં. સ્યાત્નો અર્થ અનંત ધર્માત્મકત્વ નથી પણ 'કથંચિત્' કોઇક અપેક્ષાએ-એવો છે. એથી જ એ સમ્યગ્ એકાન્તનો સાધક છે. અને અનેકાન્તનો અવદ્યોતક છે. આગમથી અને સ્વાનુભવથી પણ આ જ વાત

।। प्रमाणवाक्ये स्यात्कारैवकारयोरप्रयोग एव तन्त्रम् ।।

नन्वेवं प्रमाणवाक्ये स्यात्कारैवकारौ नैव प्रयुज्येयातामिति चेद्? **इष्टापत्तिः**। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, गुणपर्यायवद् द्रव्यम्, प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इत्यादिषु प्रमाणवाक्येषु कुत्रचनापि तयोरप्रयोगात्।

अथ ''सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञैः...'' इति पद्योक्तविरोधः, तत्रोक्तं यत्सर्वत्रैव स्यात्कारः प्रयोक्तव्य अध्याहार्यो वा इति। **तन्न,** 'सर्वत्र' इति अनपेक्षया कथने एकान्तवादापत्तेः । सर्वत्र नयवाक्येषु अंशात्मकवस्तुप्रतिपादकेषु स्यात्कारः प्रयुज्यते चेदपि निरंशवस्तुप्रतिपादकेषु तु स अप्रयोजनत्वादेव न प्रयुज्यते।

अयं भावः– वस्तुनो यदा सांशं प्रतिपादनं क्रियते, तदेतरांशव्यवच्छेदाय तत्रैवकारः प्रयुज्यते। घटोऽस्त्येव, न नास्ति, अस्तित्वाभावस्य, अस्तित्वेतरस्य वा व्यवच्छेदः। अथ वस्तुनि नास्तित्वम् अस्तित्वेतरदपि वा अस्त्येव तन्निषेधः किमर्थम्? इति प्रश्ने तदेकान्ततायां सम्यक्त्वापादनाय स्यात्पदप्रयोगः क्रियते, स्यात्-कथञ्चित्-स्वपर्यायवत्त्वेन घटादि सदेवेति। अतो ज्ञायते, यदुत स्यात्कारैवकाराभ्यां वस्तुन आंशिकत्वमेवापाद्यते, ततो नयगोचरे असमग्रे-सांशे वस्तुनि कथयितव्ये तयोः सप्रयोजनत्वं न तु निरंशे प्रमाणात्मके वस्तुनि कथयितव्ये। अतः प्रमाणवाक्ये न स्यादेवकारयोः अवतारः, तथा कृते प्रमाणवाक्यस्यापि नयवाक्यताऽऽपत्तेः। यथा स्याद्गुणपर्यायवदेव द्रव्यम्, इत्युक्ते स्याद् गुणपर्यायभिन्नमेव द्रव्यम्-इत्यपि वदनात्तयोर्वाक्ययोरंशात्मत्वमागतम्, तथा च 'गुणपर्यायवद् द्रव्य'मिति वाक्यस्य प्रमाणवाक्यत्वव्याहतिः।

न च–स्यादेवपदयोरप्रयोगात्प्रमाणवाक्यस्यानध्यवसायसंशयाऽवग्रहा-ऽध्यवसायादिरूपत्व**माशङ्क्यम्**। एतत्सर्वव्यावृत्तत्वात्प्रमाणवाक्यत्वस्य। तत्रानध्यवसायसंशयादीनां स्वरूपस्याघटमानत्वादिति **दिक्**।

इत्यतः स्थितमिदम्, यद्यपि प्रमाणवाक्यत्वमिति पर्याप्तवस्तुप्रतिपाद-कवाक्यत्वमित्यर्थः तथापि न प्रमाणवाक्यत्वस्य कथञ्चिदपि सप्तभङ्गीयैकभङ्गमात्र-

પ્રતીત થાય છે. આથી સ્યાત્ પદ જ્યારે ભાંગામાં વપરાયું હોય, ત્યારે તેના એકલાથી કે તેનાથી મિશ્રિત અસ્તિ વગેરે પદોથી 'અનંતધર્માત્મકતા' એવો અર્થ માની શકાય નહી.

॥ પ્રસંગવશાત્ પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકમાં જણાવેલી સકલાદેશ-વિકલાદેશની પરિકલ્પનાનાં તાત્પર્યની ગવેષણા ॥

શંકા : સપ્તભંગીના દરેક વાક્ય અનંત ધર્માત્મક વસ્તુને જ કહે છે. આવું માનવું જરૂરી છે. કારણ કે, સપ્તભંગીના પ્રત્યેક ભંગોથી એક-એક જ અંશ જણાય છે. આવું હોવાથી આખી સપ્તભંગી દ્વારા પણ વસ્તુગત સાત જ અંશો જાણ્યાં અને નિરૂપચરિત પ્રમાણાત્મક વસ્તુ તો અનન્તધર્માત્મક છે. આથી સપ્તભંગી એ જો પ્રમાણવાક્ય હોય તો તે અનન્તધર્માત્મક વસ્તુને કહે અને એટલે જ વસ્તુનાં સપ્તભંગીથી કહેવાયેલાં સાતે'ય સ્વરૂપો-પ્રત્યેક-અનંતધર્માત્મક જ હોવા જોઇએ. આથી, સપ્તભંગીના પ્રત્યેક ભાંગાથી અનંત ધર્માત્મક વસ્તુ જ જણાય. એટલે, પ્રથમ ભાંગાથી અસ્તિત્વરૂપ એક માત્ર ધર્મવાળી વસ્તુનો ભાવ અંશ કહેવાય છે, આવું ન કહેવું, પણ અનન્ત ધર્મમય સદ્ વસ્તુનો સ્વપર્યાયરૂપ- અનંતધર્માવચ્છિન્ન ભાવ અંશ કહેવાય છે. અનંત ધર્મથી સંયુક્ત એવી વસ્તુમાં જ 'અસ્તિ' શબ્દ વપરાયો છે. આમ, બીજાં ભાંગા વડે અનન્ત સ્વ-પર પર્યાયમય સદ્ વસ્તુનો પરપર્યાયરૂપ અનંત ધર્મોથી અવચ્છિન્ન એવો અભાવાંશ કહેવાય છે. કારણ કે, અનંત પરપર્યાયવાળાં ભાવમાં-ઘટાદિમાં-અસ્તિ શબ્દનો પ્રયોગ થતો નથી.

સમાધાન : તમારી વાત સત્ય છે. 'સત્' વસ્તુનો ભાવ અંશ એક અનેક યાવત્ અનંત ધર્મોથી મિશ્રિત હોય. કારણ કે ભાવાંશગ્રાહી જે ભાવનય છે. તેનાં અવાંતર અનેક ભેદો કહ્યાં છે. તેથી તે માત્ર એક ધર્મનું યાવત્ અનંત સ્વપર્યાયોનું ગ્રહણ કરે. અને જો એમ કહેવું હોય, કે સપ્તભંગીથી પરિપૂર્ણ વસ્તુનો બોધ થાય છે, તો એમ માનવું પડશે, કે પ્રથમ ભાંગા દ્વારા યાવત્ સ્વધર્મ-સ્વપર્યાયથી મિશ્રિત એવો ભાવ-અંશ કહેવાય છે. બીજા વડે યાવત્ પરપર્યાયથી મિશ્રિત અભાવ-અંશ કહેવાય છે. આમ, માત્ર પ્રથમ વગેરે ભાંગાઓ દ્વારા પણ અનંત

रूपत्वमिति। किन्तु 'स्यात्सत्' 'अनन्तधर्ममयं वस्त्वि'ति एकस्य वाक्यस्यापि प्रमाणवाक्यत्वमिति।

।। सप्तभङ्गी प्रमाणवाक्यमिति महोपाध्यायाः ।।

सामान्यतस्तु प्रमाणवाक्यत्वं-पूर्णबोधकृद्वाक्यत्वं-सप्तभङ्ग्यात्मक-महावाक्यस्यैव प्रचलितम्। तथोक्तं **नयोपदेशे** "सप्तभङ्ग्यात्मकं वाक्यं प्रमाणं पूर्णबोधकृत्।" एतत् श्लोकार्द्धविवेचनञ्च **नयामृततरङ्गिण्यां** स्वोपज्ञटीकायाम् → सप्तभङ्ग्यात्मकं, 'स्यादस्त्येव, स्यान्नास्त्येव' इत्यादिकं वाक्यं प्रमाणं, यतः पूर्णबोधकृत्-सप्तविधजिज्ञासानिवर्तकशाब्दबोधजनकतापर्याप्तिमत् इति। ← अतः स्थितमिदं-सप्तभङ्ग्यात्मकं वाक्यं प्रमाणम्।

।। अर्थाविसंवादिज्ञानत्वं प्रमाणज्ञानत्वमिति न ।।

अर्थाविसंवादिज्ञानमिति प्रमाणज्ञानम्, तज्जनकवाक्यं च प्रमाणवाक्यमित्यपि **केचित्**, परन्तु न तत्प्रकृतोपयोगि, न तादृक्प्रमाणस्य नयविरोध्यर्थकत्वम्। यतोऽविसंवादिज्ञानत्वमिति अभ्रान्तज्ञानत्वम्, नयज्ञानस्याप्यभ्रान्तज्ञानत्वं सम्भवति, परन्तु प्रमाणज्ञानत्वं न सम्भवति। प्रमाणैकदेशत्वान्नयज्ञानस्य तद्भिन्नत्वात्। इति प्रमाणवाक्यस्य तादृग्व्याख्या नाऽत्र ग्राह्या।

अत इयमेव व्यवस्था सोपपन्ना, यदुत सप्तभङ्गीवाक्यस्य प्रमाणत्वम्, एकतरभङ्गस्य च नयवाक्यत्वम्। तदाह **नयोपदेशे श्रीमान्** → तदेवं प्रतिपर्यायं सप्तप्रकारबोधजनकतापर्याप्तिमद् वाक्यं प्रमाणवाक्यमिति लक्षणं सिद्धम्। इत्थञ्च तदन्तर्भूतस्य तद्बहिर्भूतस्य वाऽन्यतरभङ्गस्य प्रदेश-परमाणुदृष्टान्तेन नयवाक्यत्वमेवेत्यर्थतो लभ्यते। ←

।। स्वसमयपरसमयनयवाक्ययोः प्रदेशपरमाणुभ्यामौपमित्यम् ।।

अयं भावः यथा सामान्येन समग्रप्रदेशा विषयीक्रियमाणा एकः पुद्गलस्कन्धः, परन्तु यः स्कन्धैकावयवः, स एव यदि स्कन्धान्तर्भूततया विषयीक्रियते, तदा स प्रदेश इत्युच्यते, स चैव यदि स्कन्धबहिर्भूततया विषयीक्रियेत तदा स एव

ધર્મોનું પ્રતિપાદન થાય પણ પર્યાપ્ત ધર્મનું પ્રતિપાદન ન થાય.

આથી, સોપચરિત કે નિરૂપચરિત વસ્તુગત અનંતધર્મ પ્રતિપાદકત્વ એ પ્રમાણવાક્યત્વ ન કહેવાય, પરંતુ પર્યાપ્ત વસ્તુ પ્રતિપાદકત્વ એ પ્રમાણવાક્યત્વ કહેવાય. એમ જ એક ધર્મ પ્રતિપાદકત્વ એ નયવાક્યનું લક્ષણ નહીં. પણ સાંશ વસ્તુ પ્રતિપાદકત્વ એ જ નયવાક્યનું લક્ષણ બને છે.

એટલે આ રીતે સકલાદેશ અને વિકલાદેશની જે **પૂજ્ય વાદીદેવસૂરિજી મ.** ની પરિકલ્પના છે. એની પાછળ આ આશય વિચારી શકાય કે જ્યારે પ્રથમ વાક્યથી યાવત્સ્વપર્યાયમય ભાવ અંશ કહેવાય, ત્યારે જ સમગ્ર સપ્તભંગીથી સમગ્ર-પર્યાપ્ત-વસ્તુ કહી શકાય. માટે તે ભાંગાને સકલાદેશ કહેવાય. (પરંપરાએ) સકલવસ્તુનો સાધક આદેશ-ભાંગો-તે સકલાદેશ અને પ્રથમ વાક્ય દ્વારા અવાંતરભાવનયને આશ્રયીને જ્યારે અસમગ્ર એવો જ ભાવ અંશ કહેવાય. તે વખતે આખી સપ્તભંગી દ્વારા પણ અસમગ્ર વસ્તુ કહેવાય. એટલે એ ભાંગો વિકલ-અસમગ્ર-વસ્તુનો સાધક હોવાથી વિકલાદેશ થયો.

આથી, વિકલાદેશજન્ય સપ્તભંગી એ નયસપ્તભંગી કહેવાય અને સકલાદેશજન્ય સપ્તભંગી એ પ્રમાણસપ્તભંગી કહેવાય. પરંતુ, નય સપ્તભંગી કે પ્રમાણ સપ્તભંગીના અન્યતર ભંગ વાક્યને તો પ્રમાણવાક્ય ન કહી શકાય. કારણ કે તે સાક્ષાત્ સાંશવસ્તુને જ જણાવે છે. સકલ વસ્તુને-સંપૂર્ણ વસ્તુને-અનેકાન્ત વસ્તુને નહીં.

।। મલયગિરિ સૂરિજીના કથનનું તાત્પર્ય શું? ।।

એવું બની શકે કે 'સ્યાત્' પદનો અર્થ અનંતધર્માત્મક કરો. અને 'અસ્તિ' પદનો અર્થ વસ્તુ એવો કરો, તો 'સ્યાદ્ અસ્તિ' એ પદથી 'અનંતધર્માત્મક વસ્તુ' આવો અર્થ નીકળવાથી તે વાક્ય પ્રમાણવાક્ય જ માનવું જોઈએ. આવું જ **પૂજ્યપાદ મહોપાધ્યાયજી**નું પણ કથન છે. **ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય ગ્રંથ**માં તેમણે લખ્યું છે કે ''મલયગિરિજીનું વચન એ અપ્રતિપક્ષ ધર્મનું કથન કરવાનું હોય, એવા સ્થળે, અવચ્છેદકનો ભેદ બતાવવાની જરૂર નથી હોતી. માટે તે વખતે જે સ્યાત્ પદ છે, તે અવચ્છેદક અર્થક નથી, પરંતુ અનંતધર્મ અર્થક બની શકે છે.''

परमाणुरित्युच्यते। तथा समग्र-सप्त-भङ्गपरिकलितस्वरूपा सैका सप्तभङ्गी, सैव प्रमाणवाक्यम्। तदेकदेशरूपैकभङ्गस्य च नयवाक्यत्वमेव। यदि च स भङ्गः सप्तभङ्ग्यन्तर्भूततया विचिन्त्यते, तदा स स्वसमयवाक्यम्, यदि च सप्तभङ्गीबहिर्भूततया तर्हि परसमयवाक्यम्। यदि चेतरनयप्रतिक्षेपित्वेन स्यात्पदरहिततया तर्हि दुर्नयवाक्यमिति।

स्वसमये एकस्मिन्नपि नयवाक्ये उत्थाप्याकाङ्क्षाऽऽदिक्रमेणेतरभङ्गानामपि शब्दशः कथनाद् भङ्गषट्कस्य प्रायः संयोजनं भवत्येवेत्यतस्स भङ्गः प्रमाणवाक्यैकदेशतया रच्यते, इत्यतः प्रदेशवत्तस्य स्वरूपतः स्वसमयवाक्यत्वम्। स एव च भङ्गो यदा परसमये स्थितः, तदा तत्र षड्भङ्गसंयोजनं न भवति, परसमयत्वात्। इति न स भङ्गः प्रमाणवाक्यैकाङ्गभूतः, किन्तु तद्बहिर्भूतः, तत्रापि च स्यादेवकारयोः सत्त्वेनेतरप्रतिक्षेपित्वाभावान्न दुर्नयत्वम्, किन्तु परमाणुवत्तस्य स्वरूपतः परसमयवाक्यत्वम्। विशेषतो **नयामृततरङ्गिण्यवगाह्या, दिक्प्रदर्शनपरत्वादस्य ग्रन्थारम्भस्य।**

एवं च "स्याज्ज्ञानादिलक्षणो जीव" इत्येतंस्यापि भङ्गस्य सुनयवाक्यत्वमेव, एकभङ्गरूपत्वात्तस्येति।

अतः स्थितमिदं, यदुत सप्तभङ्गीमहावाक्यं प्रमाणवाक्यम्, तदन्तर्गतैकभङ्गस्य स्वसमयनयवाक्यत्वम् तद्बहिर्भूतैकभङ्गस्य परसमयनय-वाक्यत्वम्, एकस्य च भङ्गस्येतरप्रतिक्षेपित्वे मिथ्यैकान्तरूपत्वाद्-दुर्नयवाक्यत्वमिति।

अतोऽयमेव सर्वसङ्क्षेपो नयोपदेशे → स्याच्छब्दलाञ्छितैकमात्रेण तु न प्रमाणवाक्यविश्रामः, सुनयवाक्यार्थस्यैव ततः सिद्धेः... लक्ष्य-लक्षणादि-व्यवहारोऽपि नयवाक्यैरेव सिध्यति, उद्देशत्रयलौकिकबोधस्यानतिप्रसक्तस्य तेभ्य एव सिद्धेः, प्रमाणवाक्यं त्वलौकिकबोधार्थं सप्तभङ्गात्मकमेवाश्रयणीयम्, अत एव तद्व्यापकत्वं सम्मत्यादौ महता प्रयत्नेन साधितमिति किमतिविस्तरेण? ← इति ।।२१।।

પરંતુ તે 'સ્યાદ્ અસ્તિ' એવું પ્રમાણવાક્ય એ સપ્તભંગીનાં પ્રથમ ભાંગાને સમાન અર્થવાળું નથી. માટે તેના જેવું દેખાય છે, પણ તે નથી.

શંકા : અહીયાં પણ 'સ્યાત્ સ્યાદ્ એવ', 'સ્યાન્ન સ્યાદ્ એવ' આ રીતે સપ્તભંગી સંભવી શકે છે. આમાં, 'સ્યાત્ સ્યાદેવ અસ્તિ' આવો પ્રથમ ભાંગો બનાવ્યો, એમાંથી સ્યાત્ કાર અને એવકારનો અધ્યાહાર કર્યો. માટે 'સ્યાદ્ અસ્તિ' પદો બચ્યાં. અને 'સ્યાદ્ અસ્તિ' પદથી વાચ્ય પ્રમાણાત્મક વસ્તુ છે જ. એવું તમે જ કહ્યું છે.

સમાધાન : ના, 'સ્યાદ્ અસ્તિ એવ' અહીં 'અસ્તિ' વસ્તુ પર સપ્તભંગી છે અને 'સ્યાત્ સ્યાદ્ એવ અસ્તિ' અહીં 'સ્યાત્' વસ્તુ પર જ સપ્તભંગી છે. માટે બન્ને સપ્તભંગી જ ભિન્ન ભિન્ન છે.

શંકા : ભલે ને, અસ્તિ વસ્તુની સપ્તભંગીનો પ્રથમ ભાંગો ન બનતો હોય, સ્યાત્ વસ્તુની સપ્તભંગીનો પ્રથમ ભાંગો તો તે બને ને ?

સમાધાન : જો 'સ્યાદ્ અસ્તિ' આ પદને સપ્તભંગીનો પ્રથમ ભાંગો ગણીએ, તો એ પરિપૂર્ણ વસ્તુબોધક ન બને. પ્રથમ ભાંગાથી અનેકાન્તાત્મક અનંતધર્માત્મક વસ્તુ ભાવાંશની મુખ્યતાએ કહેવાય. અને બીજા ભાંગાથી એકાન્તાત્મક અનંતધર્માત્મક વસ્તુ અભાવ અંશની મુખ્યતાએ કહેવાય. આથી, ત્યાં સમગ્ર સાતે'ય ભાંગાઓ વડે જ અનેકાન્ત અને એકાન્તરૂપ સમગ્ર વસ્તુ કહેવાઇ. આ વાત સૂક્ષ્મતાથી જાણવી.

આથી જ, જ્યારે 'સ્યાત્' પદ વડે પોતાના પ્રતિપક્ષધર્મથી વ્યાવૃત્તત્વેન અનંતધર્માત્મકતા ન જણાય, ત્યારે જ 'સ્યાદ્ અસ્તિ' એવું વાક્ય એ પ્રમાણવાક્ય બની શકે. એનાં દ્વારા સત્ત્વાસત્ત્વ એકાન્તાત્મકત્વ અનેકાન્તાત્મકત્વ ઇત્યાદિ સર્વ ધર્મોથી સંયુક્ત પર્યાપ્ત વસ્તુનો બોધ થાય અને જો તેમાં સ્યાત્, એવ નો અધ્યાહાર માનીને તેને સપ્તભંગીના પ્રથમ ભાંગારૂપે જ માનો, તો તે અસમગ્ર વસ્તુને કહેનારો હોવાથી નયવાક્યરૂપ જ બની જાય.

।। પ્રમાણવાક્યમાં સ્યાત્ એવ નો પ્રયોગ ન હોય ।।

આથી જ પ્રમાણવાક્યમાં ક્યાંય સ્યાત્ અને એવ પદનો પ્રયોગ થતો નથી.

अव. अथ दुर्नय-नय-प्रमाणानां स्वरूपं किञ्चिद्विस्तरेणोच्यते

दुर्नयेन नयेनापि, प्रमाणेन त्रिधैव हि ।
सर्वज्ञशासने वस्तु-परिच्छेदविभावनम् ।।२२।।

टीका – सर्वज्ञशासने-इति सर्वदर्शनमूलभूते स्याद्वाददर्शने, वस्तुनः परिच्छेदः, ज्ञानम्, तस्य विभावनं, विचारणम्। वस्तुपरिच्छेदविभावनम्। तच्च त्रिधा कृतम्। वस्तुपरिच्छेदः स्यान्नयः स्याद्दुर्नयात्मकः स्याद्वा प्रमाणस्वरूपः। त्र्यन्यतरद्वस्तुज्ञानं सर्वज्ञशासने विचारितं भवितुमर्हति। चतुर्थप्रकार एव न विद्यते, इत्यतः नय-दुर्नय-प्रमाणा-ऽप्रमाणेति चतुर्द्धा वस्तुनः परिच्छेद-इत्येवं **सप्तभङ्गीतरङ्गिणी-**कृतो यन्मतम्, तत्तुच्छम्। अप्रमाणस्य ज्ञानस्य दुर्नय-नयान्यतरान्तःप्रविष्टत्वादेव।

।। दुर्नयत्वपरिभाषास्पष्टीकरणम् ।।

अथ दुर्नयत्वमिति परसमयस्थितनयत्वमिति चेत्? **न**-शुद्धपर्यायविवक्षया प्रवृत्तस्य बौद्धदर्शनस्य, शुद्धद्रव्यापेक्षया च प्रवृत्तस्य वेदान्तदर्शनस्य सापेक्षत्वे सम्यगेकान्तस्वरूपत्वे नयत्वमेव। प्रमाणवाक्यस्यान्यतरो भङ्ग एव तैर्दर्शनकारै-र्विस्तरेण विवृतः स्वस्वदर्शने, इत्यतः तत्तन्नयव्युत्पत्त्यर्थं बुद्धिपरिकर्मणानिमित्तं चैव तु तेषां समयानामवगाहोऽपि प्रवचने तत्र तत्रावश्यंकर्तव्यतया परिख्यातः। यद्वा, 'आलयविज्ञानसन्ततिरूप आत्माऽपि यदि क्षणिकः, किं पुनर्वाच्यं बाह्यवस्तुषु?' इति वैराग्यप्रतिपन्थितृष्णोच्छेदकानित्यत्वभावनोद्देशेन बौद्धदर्शनस्य, 'मुमुक्षुणा सर्वं परित्यज्य स्वात्मनिष्ठेन भवितव्यम्, स चैक एवे'ति शोकद्वेषादिनि-बन्धनानेकसम्बन्धबुद्धिमलप्रक्षालनगङ्गाजलसमानैकत्वभावनोद्देशेन च वेदान्तदर्शनस्य प्रवृत्तेः, तेन शुद्धोद्देशेनैव तस्य परदर्शनस्थपरसमयनयस्यापि सुनयत्वमेवाङ्गीक्रियते। इति स्वसमयस्थनयानां सुनयत्वम्, परसमयस्थितानां च दुर्नयत्वमित्यपि सुनयत्वदुर्नयत्वे न विचार्येते।

तर्हि इतरनयांशौदासीन्येन स्वांशमुख्यतया ते प्रगलभमाना नयाः, स्वेतरनयांश-बाधेन च प्रवर्तमाना दुर्नयाः, अत एव सम्यग्दृष्टिपरिगृहीतस्य परसमयनयस्यापि

'ગુણપર્યયિવદ્ દ્રવ્યમ્', 'દ્રવ્યગુણપર્યાયાત્મકં સત્' ઇત્યાદિ પ્રમાણ વાક્યોમાં ક્યાંય તેનો પ્રયોગ નથી.

શંકા : તો પછી 'જ્યાં સ્યાત્ એવ પ્રયુક્ત ન હોય. ત્યાં પણ તે અધ્યાહારથી લેવા.' આવાં આર્ષવચનનો વિરોધ આવે-માટે અહીં સાક્ષાત્ ભલે ન વાપરો, અધ્યાહૃત તો કરવાં જ પડે.

સમાધાન : સર્વત્ર નયવાક્યોમાં સ્યાત્-એવ નો પ્રયોગ કરવો જરૂરી હોવા છતાંય પ્રમાણવાક્યોમાં ક્યાંય ન વાપરી શકાય. કારણ કે પ્રમાણવાક્યમાં સ્યાત્ ને વાપરવાનું કોઇ પ્રયોજન જ નથી. **તથાહિ** સૌ પ્રથમ તો જ્યારે વસ્તુનું સાંશ પ્રતિપાદન કરાય, ત્યારે તેનાં ઇતર અંશનો વ્યવચ્છેદ કરવા માટે એવકાર વપરાય છે. તેનાથી 'વસ્તુમાં અસ્તિત્વ જ છે' ઇત્યાદિ નિશ્ચિત બોધ થાય અને વસ્તુમાં અસ્તિત્વનાં અભાવનો-અસ્તિત્વથી ઇતર ધર્મોનો-વ્યવચ્છેદ સિદ્ધ થાય. હવે કોઇ પૂછે, કે જ્યારે અસ્તિત્વ સિવાયનાં ધર્મો પણ તે પદાર્થમાં છે જ. તો તેનો નિષેધ શી રીતે? ત્યારે 'સ્યાત્' પદનો પ્રયોગ થાય. 'સ્યાત્'નો અર્થ છે : કોઇક અવચ્છેદક વિશેષ અવચ્છિન્નત્વ. સ્વપર્યાયિવત્ત્વની અપેક્ષાએ તો વસ્તુમાં અસ્તિત્વ સિવાયના કોઇ જ ધર્મો નથી જ. માત્ર અસ્તિત્વ જ છે.

આથી, સાંશ વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરવા માટે જ સ્યાત્ અને એવ નો પ્રયોગ થાય. નિરંશવસ્તુને કહેવા માટે ન થાય. અને જો પ્રમાણવાક્યમાં સ્યાત્ એવનો પ્રયોગ કરો, તો તે પણ નયવાક્ય જ બની જાય. **ઇતિ દિક્.**

શંકા : સ્યાત્ એવનો પ્રયોગ ન થવાથી પ્રમાણવાક્ય એ અનધ્યવસાય, સંશય, અવગ્રહબોધ, ઇત્યાદિરૂપ બની જશે.

સમાધાન : ના, પ્રમાણવાક્યનું લક્ષણ જ આ બધાં કરતાં ભિન્ન હોવું એ છે. અથવા એનું સ્વરૂપ આ બધાં કરતાં ભિન્ન છે. માટે આવી કોઇ આપત્તિ નથી. **ઇતિ દિક્.**

।। સપ્તભંગી એ પ્રમાણવાક્ય છે ।।

સામાન્યથી તો સપ્તભંગીરૂપ મહાવાક્ય, એ જ પ્રમાણવાક્ય કહેવાય. **નયોપદેશ**માં પણ એવું કહ્યું છે.

सुनयत्वम्, तेन तन्नयार्थग्रहणेऽपीतरनयार्थाबाधनात्, सम्यग्दृष्टेः। मिथ्यादृष्टिपरिगृहीतस्य चास्तां स्वसमयनयस्य, साक्षाद्भगवद्वचसोऽपि दुर्नयत्वमेव, तेन तन्नयार्थमात्रस्य ग्रहणात्, इतरनयार्थबाधनाच्च, मिथ्यादृष्टेः। **इत्यपि न सुवचम्**। दृश्यन्ते ते नयाः स्वसमये परसमये च स्वेतरनयार्थबाधेनैव स्वाभिप्रेतार्थकथने प्रगल्भमानाः। तथाहि–यथा स्याद्वादाङ्गभूतानि तानि षडादीनि दर्शनानि परस्परं विवदन्ते, तथा स्वसमयेऽपि ज्ञानक्रियावादिनोः व्यवहारनिश्चयवादिनोः परस्परं विवादः प्रचलित एव, **विशेषावश्यकभाष्यादौ** तु सप्रपञ्चं प्रतिपादितः। एवं सति **स्वसमयनयानामपि** दुर्नयत्वमेवाऽऽपद्यते। **न च–**स्वसमये विवादस्यान्ते स्थितपक्षो विरच्यते इति **वाच्यम्**, स्थितपक्षस्य तु प्रमाणस्वरूपत्वात्। न च नयेषु विवाद एव एकान्तग्राहित्वात्, प्रमाणमेव निर्विवादमनेकान्तस्वरूपत्वादिति सुवचम्।

।। नयत्वविलोपशङ्कनं तद्व्युदासश्च ।।

एवमपि सति विवादे दुर्नयत्वदशायां, नयेषु च सर्वदा विवदमानेषु सर्वे नया दुर्नयत्वेनैव परिवर्तेयुः, इत्यतो द्विप्रत्यवतारं ज्ञानमापद्येत, दुर्नयात्मकं प्रमाणात्मकं च। इति सुनयात्मकज्ञानस्य विलोपः प्रसज्येत।

न च ⟶ नयो दुर्नयः सुनयश्चेति दिगम्बरी व्यवस्था, न त्वस्माकं, नय-दुर्नययोरर्थाविशेषात्, नयानां सर्वेषां मिथ्यादृष्टित्वात्, तथा चानुस्मरन्ति–"**सव्वे णया मिच्छावायिणो**" त्ति। ⟵ इति **मलयगिरिश्रीपूज्यानां** वचोऽनुसारेण सुनयात्मकज्ञानविलोपरूपा सेष्टापत्तिरेवेति **वाच्यम्।**

⟶ वस्तुतो नयदुर्नयविभागो न दैगम्बर एव, हेमसूरिभिरपि "सदेव सत् स्यात्सदिति त्रिधाऽर्थो, मीयेत दुर्नीतिनयप्रमाणैः" इत्यादि विभज्याऽभिधानात्, आकरे नयतदाभासानां व्यक्तेर्बोधितत्वाच्च। ⟵ इति **नयोपदेशस्याज्ञायामेवास्माकं** मनो रमते। न च 'सव्वे णया' इत्यागमबाधः, आगमवचसां यथाश्रुतार्थकत्वमेवेत्येकान्तो न ग्राह्यः, पौर्वापर्येण यथाश्रुतार्थबाधे तात्पर्यं गवेषणीयम्, तत्र तत्र नैकासामप्यागमोक्तीनां विशिष्टयाऽपेक्षयैव प्रयुक्तत्वात्। न चैतदागमाध्ययन-

।। અવિસંવાદિ જ્ઞાન એ પ્રમાણજ્ઞાન? ।।

અર્થને અવિસંવાદી=અભ્રમરૂપ જ્ઞાનને પ્રમાણ કહેવાય. આવું પણ પ્રમાણવાક્યનું સ્વરૂપ કોઇ દર્શાવે છે. પરંતુ તે સ્વરૂપ પ્રસ્તુતમાં ઉપયોગી નથી. કારણ કે નયજ્ઞાન એ અભ્રાન્ત હોઇ શકે છે, પણ પ્રમાણાત્મક નહીં. એક ભંગ રૂપ વાક્ય તે નયવાક્ય, સપ્તભંગી વાક્ય તે પ્રમાણ વાક્ય.

।। સ્વસમય અને પરસમયનાં નયવાક્યોની પ્રદેશ-પરમાણુનાં દ્રષ્ટાન્ત સાથે તુલના ।।

જેમ અનેક દેશ-પ્રદેશો ભેગા થઇને એક સ્કન્ધ બને છે અને સ્કંધનો એક સૂક્ષ્મતમ દેશ, એ જ્યારે સ્કંધને સંલગ્ન હોય, ત્યારે પ્રદેશ કહેવાય અને સ્કંધથી બહિર્ભૂત હોય, તો પરમાણુ કહેવાય. એમ સાત ભંગવાક્યોનો સમાહાર-સ્કન્ધ-તે પ્રમાણવાક્યરૂપ સપ્તભંગી. અને એક ભંગવાક્ય એની અંતર્ભૂત હોય તો સ્વસમયનયવાક્ય અને જો તેની બહાર હોય તો પરસમયનયવાક્ય અને જો અવચ્છેદકની અપેક્ષાથી નિરપેક્ષ રીતે એકાન્તને બતાવે તો દુર્નયવાક્ય.

સ્વસમયમાં અન્યતરભંગ રૂપ નયવાક્યને દર્શાવી પછી ઉત્થાપ્યઆકાંક્ષાથી ક્રમે કરીને બાકીનાં ભાંગા પણ સંલગ્ન તરીકે જણાવાય છે. માટે તે પ્રદેશની જેમ સ્વરૂપથી સ્વસમયવાક્ય કહેવાય. જ્યારે પરસમય એકાન્તરૂપ હોવાથી તેમાં બાકીનાં ભાંગા જોડાવાના છે જ નહીં. માટે તે પરમાણુની જેમ પરસમયવાક્ય થાય. પરંતુ, ત્યાં પણ જો સ્યાત્ એવ કાર યુક્તતા હોય, તો દુર્નયત્વ ન આવે. **ઈતિ સંક્ષેપ.** વિસ્તારથી તો **નયામૃતતરંગિણી**નું અવગાહન કરવું.

આમ, સર્વ ગ્રંથોનાં પૂર્વાપરનાં અનુશીલનથી આવો નિર્ણય કરી શકાય, કે

(૧) સપ્તભંગીનો એક ભાંગો નયવાક્ય છે. પછી તે ચાહે સ્વસમય રૂપ હોય કે પરસમય રૂપ હોય.

(૨) સપ્તભંગીનો એક પણ ભાંગો સાક્ષાત્ પ્રમાણવાક્યરૂપ નથી.

(૩) પ્રમાણવાક્ય એ ક્યાં તો સપ્તવાક્ય સમાહારરૂપ માનવું, ક્યાં તો 'દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયવત્ સત્' ઇત્યાદિરૂપ માનવું. ઇત્યાદિ નિર્ણયો થાય છે.।।૨૧।।

અવ. હવે દુર્નય, નય અને પ્રમાણનું સ્વરૂપ જરા વિસ્તારથી કહે છે-

निपुणानामविज्ञातपूर्वम्। इति न व्यामोहः कर्तव्यः। प्रकृते तु ये नया दुर्नयरूपास्ते सर्वे मिथ्यात्विन इति व्युत्पत्तिसङ्कोचः। अन्यरीत्या वा सङ्कोचः कार्यः। यथाश्रुतार्थतायां पूर्वापरविरोधापत्तेः ।

।। नयस्वरूपविचारणा निष्कर्षश्च ।।

अथ–पूर्वं ये घटादौ 'नित्यमिद'मिति जानन्ति, तेषां पश्चात्तत्रैव 'क्षणिकमिद'-मिति नयज्ञाने पूर्वज्ञानीयनित्यत्वं ज्ञायते न वा? तस्याज्ञानं तु न सम्भवति, पूर्वं नित्यत्वेन ज्ञातत्वात्, क्षणिकत्वेन ज्ञाने च स्मृतावुपस्थितत्वात्परेषां ज्ञानलक्षणाजोपनीतभानवत् 'नित्यमिदं क्षणिक'मितिबोधस्य सुसम्भाव्यत्वात्। तस्य ज्ञाने तु उपनीतभानात्मकस्य बोधस्य न नयात्मकत्वं, किन्तु प्रमाणात्मकत्वमेव मन्तव्यम्, क्षणिकत्वस्थायित्वोभयांशयोरेव ज्ञानविषयीकृतत्वान्निरंशवस्तु-मापकत्वादिति।

तन्न–नयज्ञाने पूर्वं विज्ञातेतरांशस्य स्याद्वादिनोऽपि प्रसङ्गवशात्तदंश-विषयकत्वमेवेतरांशं प्रतिरुन्ध्योत्स्फूर्ततया प्रवर्तते। प्रसङ्गस्यैवेतरांशज्ञान-प्रतिबन्धकत्वात्।

ननु उपसर्जनतया तु तज्ज्ञानस्य तदितरांशविषयकत्वमपि इति **चेत्?** किमुपसर्जनेति वक्तव्यम्?

।। प्रसङ्गाद् उपसर्जनापदार्थस्पष्टीकरणम् ।।

आह–उपस्थितोऽपीतरांशः स्यात्संशयं कारयेत्, स्यात्तदंशबाधं कुर्यात्, परन्तु न स तदुभयं प्रवर्तयति, इत्यप्रवर्तकत्वान्नयज्ञाने उपस्थितस्यापि तस्योपसर्जनत्वाख्य-विषयतावत्त्वं इति।

तदसत्–उपसर्जनेति उपचार एव, असतोऽपि काल्पनिकतया स्वीकरणमेवेति यावत्। **तदाहुर्नयोपदेशे श्रीमन्तः** → घटावगाही अवान्तरद्रव्यार्थिकः पर्यायोपसर्जनतां द्रव्यमुख्यतां चावगाहमानो न विरुध्यते, असतोऽप्युप-

દુર્નયથી નયથી અને, પ્રમાણથી હુએ જ્ઞાન;
વસ્તુનું જિનશાસને, જ્ઞાન તણો એ વિચાર ।।૨૨।।

વાર્તિક. શ્રી જિનશાસનમાં વસ્તુમાત્રનું જ્ઞાન ત્રણ રીતે કરાય એમ કહ્યું છે. ક્યાં તો તે જ્ઞાન દુર્નયરૂપ હોય અથવા નય રૂપ અથવા પ્રમાણરૂપ. આ ત્રણ સિવાય કોઇ જ ચોથો પ્રકાર નથી. માટે 'નય,દુર્નય, પ્રમાણ અને અપ્રમાણ આ ચાર ભેદે વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે.' આવું **સપ્તભંગીતરંગિણી**નું વચન અસત્ છે. અપ્રમાણાત્મક જ્ઞાન એ ક્યાં તો દુર્નયરૂપ હોય, અને ક્યાં તો નયરૂપ.

।। દુર્નયત્વની પરિભાષાની સ્પષ્ટતા ।।

શંકા : સ્વસમયનય એ સુનય અને પરસમયનય એ દુર્નય આવી વ્યાખ્યા બરાબર છે?

સમાધાન : ના. પૂર્વોક્ત રીતે જો શુદ્ધ પર્યાયની અપેક્ષાથી જ **બૌદ્ધ** વાત કરે, અને શુદ્ધ દ્રવ્યની અપેક્ષાથી જ **વેદાન્તી**, તો તેઓ ખોટા નથી જ. કારણ કે તેઓ સમ્યગ્ અપેક્ષાપૂર્વક સાંશ વસ્તુને જણાવે છે.

અથવા, 'જો આત્મા પણ ક્ષણિક હોય તો બાહ્યપદાર્થો સુતરાં ક્ષણિક જ હોય' આવી ઉદાત્તભાવનાથી પ્રવર્તેલા **બૌદ્ધદર્શન**ના પ્રતિપાદનોથી બાહ્યપદાર્થ પર તૃષ્ણાનો નાશ થાય છે. તે જ રીતે 'મુમુક્ષુએ સર્વ પદાર્થનો ત્યાગ કરી આત્મસ્થિત થવું. અને તે એક જ છે.' આવી ઉદાત્ત ભાવનાથી પ્રવર્તેલાં **વેદાન્તદર્શન**નાં તત્ત્વજ્ઞાનથી એકત્વ ભાવનાના સંસ્કાર દૃઢમૂળ બને છે. માટે તેમનાં પ્રતિપાદનો પણ સુનયરૂપ ગણાયા છે. આવું **નયામૃતતરંગિણી**માં કહ્યું છે.

શંકા : ઇતર નયાંશને વિશે ઉદાસીન રહે, અને પોતાના અંશનું પ્રતિપાદન કરે, તો સુનયો. પણ અન્ય નયાંશનો બાધ કરીને પોતાના અંશનું પ્રતિપાદન કરે તો દુર્નયો. આવી વ્યાખ્યા બરાબર છે?

સમાધાન : આ વાત પણ ઉચિત નથી. કારણ કે જેમ ષડ્દર્શનો પરસ્પર વિવાદ કરે છે. તેમ સ્વસમયમાં પણ જ્ઞાનનય-ક્રિયાનય-નિશ્ચય-વ્યવહાર ઇત્યાદિ નયોનો વિવાદ પ્રચલિત જ છે. જે **વિશેષાવશ્યકભાષ્ય** વગેરે ગ્રંથોમાં ઠેર-ઠેર

सर्जनतयाऽऽश्रयणं च कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नाकाशस्य शब्दग्राहकतां वदतां तार्किकाणाम्, आनुपूर्वीविशेषविशिष्टस्य शब्दस्य श्रोत्रग्राह्यतां वदतां मीमांसकादीनां च दृश्यत एवेति भावः। ← एवमुक्त्वा "तर्हि अवान्तरद्रव्यार्थिकः सर्वदैवोपसर्जनतया पर्यायांशं गृह्णात्येवे"ति कस्यचन व्यामोहसम्भवे कल्पान्तरमाह श्रीमान्→यद्वा घटादेर्द्रव्यार्थिकेन (अवान्तरद्रव्यार्थिकेनापीति भावः) पर्यायविनिर्मुक्तद्रव्याकारेणैव ग्रहः, पर्यायनयेन तत्र पर्यायत्वापादने च पर्यायविशिष्टतया ग्रहणम्...←एवं वदनात्साधितं, यदवान्तरद्रव्यार्थिकोऽपि न सर्वदैव पर्यायांशस्योपसर्जनतयाऽपि ग्रहं करोति। मुख्यवृत्त्या तु पर्यायविनिर्मुक्ततयैव प्रवर्तते, पर्यायनयेन तस्य पर्यायतयाऽऽपादने सत्येवोपसर्जनतयाऽपि स्वमतेऽसतोऽपि पर्यायांशस्य स्वीकारं करोत्यसाविति निश्चितम्। ततश्च उपसर्जनतयेतरांशस्वीकर्तृत्वमेव नावान्तरद्रव्यार्थिकत्वं, किन्तु शुद्धद्रव्यार्थिकनयविषयव्याप्यविषयग्राहित्वेना-वान्तरद्रव्यार्थिकत्वं, **नयोपदेशाद्यभियुक्तवचनसंवादादिति।**

अत उपसर्जनतया स्वीकार इति न वास्तविकतया स्वीकारः किन्तु काल्पनिकतया स्वीकार एव, न तद्धर्मवत्त्वेन स्वीकार इति यावत्। तथाहि-सर्वं क्षणिकमिति वादिभ्यः पर्यायार्थिकेभ्यो द्रव्यार्थिकः कश्चिदाक्षिपति "सन्तानस्य स्थायित्वेन स्वीकारे द्रव्यांशस्य सन्तानरूपेण भवताऽपि स्वीकारः कृत एवेति", इत्येवं रीत्या कथञ्चिदपि तस्य मते द्रव्यांशवत्त्वस्यापादने पर्यायार्थिको द्रव्यविशिष्टपर्यायतया वस्तुनः स्वीकारं कुरुते। अत्र द्रव्यांशस्य सन्तानस्य स्वीकारो जातः, परन्तु न सन्तानः सदृशक्षणसन्ततेर्व्यतिरिक्तः पदार्थान्तरः। इति न स वास्तवः, उपचरिते तस्मिन्द्रव्यत्वधर्मरहिते एव स्थायित्वं संलग्नम्। इति न तेन स्थायित्वांशो न सङ्गृहीतः, किन्तु उपसर्जनतया, उपचारेण, काल्पनिकतयैवेति न तु निरुपचरिततया, वास्तविकतया वा, यथार्थतया वा, तन्मते स्थायिवस्तुन एवाऽसत्त्वात्।

જોવા મળે છે.

આથી સ્વસમય નયો પણ દુર્નયરૂપ જ બની જાય.

સ્વસમયમાં વિવાદને અંતે જે સ્થિતપક્ષ રચવામાં આવે છે. તે તો પ્રમાણરૂપ છે નયરૂપ નથી.

શંકા : તે નયો એકાંશગ્રાહી હોવાથી, તેમાં વિવાદ થાય તે સહજ જ છે. પરંતુ એટલે જ જેમાં વિવાદ થાય તે દુર્નય અને નિર્વિવાદ એ પ્રમાણ.

સમાધાન : તો-તો 'સુનયત્વ'નો વિલોપ થાય...

શંકા : ''નય, દુર્નય અને સુનય આ તો દીગમ્બરોની વ્યવસ્થા છે. આપણે ત્યાં તો નય અને દુર્નય વચ્ચે કોઇ જ ભેદ નથી. 'બધાં નયો મિથ્યાદષ્ટિ જ છે' એવું આગમવચન પણ છે.'' આવું શ્રી **મલયગિરિસૂરિજી**નું વચન છે. માટે સુનયનો વિલોપ થાય, એ ઇષ્ટ જ છે.

સમાધાનઃ ''એ વ્યવસ્થા દીગંબરોની જ છે એવું નથી. **અન્યયોગ-વ્યવચ્છેદબત્રીસી**માં **શ્રી હેમચંદ્રસૂરિજી**એ પણ ત્રણેય જ્ઞાન કહ્યાં છે. તથા **સ્યાદ્વાદરત્નાકર**માં તે પ્રત્યેક પ્રકારોનાં ઉદાહરણો બતાવ્યાં છે.'' આવું **નયામૃતતરંગિણી**નું વચન હોવાથી જિન પ્રવચનમાં ત્રણેય રીતે વસ્તુનું જ્ઞાન થાય છે. માટે સુનયનો વિલોપ થાય, તે ઇષ્ટ ન કહી શકાય. પ્રસ્તુત આગમ વચનનો વિવક્ષાવિશેષ પકડીને વ્યુત્પત્તિ સંકોચ કરી, લાક્ષણિક અર્થ લેવો પણ યથાશ્રુતાર્થ ન લેવો. **ઇતિ દિક્.**

।। સુનયના સ્વરૂપની વિચારણા અને નિષ્કર્ષ ।।

શંકા : ઘટાદિને વિષે નિત્યતાનું જ્ઞાન ધરાવનારને જ્યારે ત્યાં જ નયજ્ઞાનથી ક્ષણિકતાનો બોધ થાય, ત્યારે પૂર્વનાં જ્ઞાનથી જણાયેલું નિત્યત્વ પણ ત્યાં સ્મૃતિ દ્વારા જણાઇને ''નિત્ય એવું આ ક્ષણિક છે.'' આવો જ નયાત્મક બોધ થાય, તો આ જ્ઞાનને નયાત્મક નહીં કહેવાય. પણ પ્રમાણાત્મક જ કહેવાશે. કારણ કે નિત્યત્વ-અનિત્યત્વ આ બંને અંશોથી યુક્ત પરિપૂર્ણ વસ્તુનું જ્ઞાન થયું છે, માટે.

સમાધાન : ના, જેણે પૂર્વે ઇતરનયાંશને જાણ્યો છે, તેવાં સ્યાદ્વાદી પણ

अत एव पर्यायार्थिकविशेषस्तु वदति– 'सन्तानस्य वस्तुत्वे तत्र स्थायित्वादेः कस्यचनापि धर्मस्य समावेशो युक्तिमान्, यावता सन्तानस्यैवासत्त्वम्, तदा स्थायित्वस्वरूपः द्रव्यांशः कुत्र समावेश्यः?' इत्यसौ द्रव्यविनिर्मुक्तप्रकारताक एवेति।

अतः इतरांशविनिर्मुक्तप्रकारताकस्य इतरांशनिष्ठोपसर्जनत्वाख्यविषयताकस्य वा ज्ञानस्य नयज्ञानत्वमिति सिद्धम्। तथा च **नयोपदेशः** → पर्यायविनिर्मुक्त-प्रकारताकस्य पर्यायनिष्ठोपसर्जनत्वाख्यविषयताकस्य वा द्रव्यार्थिकस्य... ←इति।

एवं सिद्धम्, उपसर्जनतया ज्ञानेऽपि न तद्धर्मवत्तया ज्ञानम्। वस्तुतस्तु अतद्धर्मवत्तया–उपचरिततया काल्पनिकतयेति यावत् ग्रहत्वमेवोपसर्जनतया ग्रहत्वमिति ध्येयम्। यतस्तद्धर्मवत्तया ग्रहणेनेतरांशस्य न गौणत्वेन ग्रहः, किन्तु प्राधान्येनैव।

अन्यच्च द्रव्यार्थादिस्वांशग्राहिणि नयज्ञाने तदितरांशस्य पर्यायादेश्चेत्तद्धर्मवत्तया ग्रहणं, तदा तत्स्यात्संशयतामापद्येत, विरुद्धोभयकोटिकैकविशेष्यकज्ञानत्वात्। स्यात्समूहालम्बनतामापद्येत, स्यादेवकारसंयुक्तसप्तभङ्गीयतृतीयभङ्गज-समुच्चयात्मकज्ञानवत्, तदपि च स्यादेवकारार्थयुक्तत्वात् सांशवस्तुग्रहणान्नयात्मकमेव किन्तु न द्रव्यार्थिकनयात्मकं तदिति सुसूक्ष्ममवधार्यम्। स्यात्स्वेतरांशस्य द्रव्यादेर्बाधं कृत्वा स्वज्ञानं जनयेत्तथा सति द्रव्यार्थिकनयस्य पर्यायांशग्राहित्वेऽसम्भव एव। स्यात्प्रमाणात्मकतया परिणमितं सन्माध्यस्थ्यपरिणतिं स्पर्शयेत्, स्यादेवकाररहितत्वे समग्रवस्तुवदनात्। परन्तु द्रव्यार्थिकनयस्वरूपतामवश्यं विजह्यात्।

एवं सति इतोऽपि गौणतयाऽन्यांशस्वीकार आवश्यक इत्याग्रहो न ज्यायान्। तथा सति नयवाक्ये एवकारस्य वैयर्थ्यापत्तेः। अनिष्टार्थव्यावर्तकत्वमेवावधारणार्थकै-वकारस्य प्रयोजनम्। अनिष्टश्च तन्नयस्येतरनयार्थः, अंशात्मकवस्तुग्राहित्वात्तस्य।

પ્રમાતાને જ્યારે નયજ્ઞાન થાય, ત્યારે તેમાં તે જ અંશ જણાય ઇતર અંશનો બોધ ન જ થાય. તે વખતે તેવો અવસર વિશેષ જ સ્યાદ્વાદીને પણ કે ઇતરાંશનાં જ્ઞાતાને પણ ત્યાં તેનો બોધ થવા દેવામાં પ્રતિબંધક બને.

શંકા : નયજ્ઞાનમાં ઉપસર્જનાથી તો ઇતર અંશ જણાય ને?

।। પ્રસંગથી ઉપસર્જનતા પદાર્થનું સ્પષ્ટીકરણ ।।

પ્રતિશંકા : ઉપસર્જનતા શું છે?

શંકા : જ્ઞાનમાં ઉપસ્થિત થયેલો ઇતર નયાંશ એ ક્યાં તો સંશય કરાવે, ક્યાં તો તે અંશનો બાધ કરે, પરંતુ ઉપસ્થિત થયા પછી પણ તે આ બેમાંથી કશું જ ન કરતો હોય, તો તે ઉપસર્જનતાથી-ગૌણ રીતે-ઉપસ્થિત થયો કહેવાય. આથી તે નયના જ્ઞાનમાં પણ (ઉપસર્જનતાથી) ઇતર નયાંશ જણાય જ.

સમાધાન : ઉપસર્જના એટલે ઉપચાર. જે છે જ નહીં તેને પણ કાલ્પનિક રીતે સ્વીકારવું એ જ ઉપસર્જના કહેવાય અને **નયોપદેશ-નયામૃતતરંગિણીમાં** પણ આ જ વાત કહી છે, કે મુખ્યવૃત્તિએ તો નય હંમેશા સ્વઅંશને જ માને છે. પરંતુ, અવાન્તર દ્રવ્યાર્થિકનય એ ઉપસર્જનતાથી, એટલે કે પોતાના મતમાં ન રહેલા એવા પણ અંશનો ઉપચારથી, ગ્રહણ કરે છે. આથી જ, અવાંતર દ્રવ્યાર્થિક-નયનું લક્ષણ- ''જે નય ઉપસર્જનતાથી અન્ય અંશનો સ્વીકાર કરે તે'' આવું ન માનવું, પણ ''જે નય શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયને વ્યાપ્ય એવા વિષયને ગ્રહણ કરે તે અવાંતર દ્રવ્યાર્થિકનય'' એવું માનવું. **ઇતિ દિક્.**

આથી જ ઉપસર્જનતાથી ગ્રહણ કરવું એટલે કાલ્પનિકતયા ગ્રહણ કરવું. અર્થાત્ તદ્ધર્મવત્તયા ગ્રહણ ન કરવું. આ વાત વિસ્તારથી સમજીએ. 'બધું ક્ષણિક છે' આવું કહેનાર પર્યાયાર્થિક નયને દ્રવ્યાર્થિક કહે છે, કે ''તમારામાં પણ ક્ષણિક પર્યાયનો સંતાન ચાલે જ છે. અને તે સ્થાયી જ છે. તો સ્થાયી એવાં સંતાનરૂપ દ્રવ્યાંશનો સ્વીકાર થઇ ગયો ને?'' આવી રીતે જો દ્રવ્યાર્થિક નયનું કહેલું માની લે તો અવાન્તર પર્યાયાર્થિક કહે-''ઠીક છે, અમે સન્તાનવિશિષ્ટ પર્યાયનું ગ્રહણ કરીએ છીએ. માટે અમે દ્રવ્યવિશિષ્ટ પર્યાયનું ગ્રહણ કરીએ છીએ. આમ સ્વીકારીએ.'' પરંતુ, તે કાંઇ સ્વતંત્ર પદાર્થ નથી. તે ક્ષણના

।। दुर्नयनययोर्निष्कृष्टं स्वरूपम् ।।

अत: स्थितमिदं यदुत–सर्वोऽपि नय: स्वांशमेवावगृह्णाति, इतरांशस्य च व्यवच्छेदं करोति, अनिष्टत्वात्, एवकारेण च प्रयुक्तेन व्यावर्तितत्वाच्चेति। स्यात्पदप्रयोगे तु सुनयवाक्यत्वम्, तदप्रयोगे तु दुर्नयवाक्यत्वम्। ज्ञानेऽपि सम्यगपेक्षयैकान्तग्रहणेन सुनयत्वम्, निरपेक्षतयैवैकान्तग्रहणे दुर्नयतेति सङ्क्षेप:। **अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिकाया** अष्टाविंशतितमे पद्ये च यदुक्तं **कलिकालसर्वज्ञै:** तस्यायं भावो ग्राह्य: 'सदेवे'ति दुर्नयो दुर्नयवाक्यं वा, तस्य स्यात्पदपदार्थानपेक्षमाणस्य मिथ्यैकान्तरूपत्वात्, मिथ्यैकान्तप्ररूपकत्वाद्वा; "सदि"ति सुनय: सुनयवाक्यं वा, वाक्यात्मके तत्र स्यात्कारैवकारयोरनुक्तयोरपि समुच्चयनात्, अध्याहृतत्वात्।[१] तथैव च ज्ञानेऽपि तदर्थयोरुपस्थितत्वात् सम्यगेकान्तत्वात्। 'स्यात्सदि'ति च प्रमाणवाक्यं प्रमाणं वा, स्यात्पदस्यात्रानन्तधर्मात्मकत्वार्थकत्वात्, "अनन्तधर्मात्मकं सत्" इति बोधरूपत्वाद्वा।

।। दुर्नयत्वमिति नेतरप्रतिक्षेपित्वं, किन्तु मिथ्यैकान्तत्वमेवेति ।।

अथैवं सति स विवाद: पूर्वोक्त उपस्थित एवास्ते, दुर्नयत्वमिति किम्? इतरप्रतिक्षेपित्वस्य दुर्नयत्वार्थकत्वे स्वसमयपरसमयस्थसर्वनयानामेव तदापद्येतेति **चेत्?** अत्र **महोपाध्यायवचनं** श्रूयताम् 'यदीतरनयार्थप्रतिषेधो द्वेषबुद्ध्या तदा

---

१. तुलना

स्यात्पदलाञ्छनविवक्षितधर्मावधारकत्वेन स्वार्थमात्रप्रतिपादनप्रवणत्वेन च द्विधा सुनयत्वमुदाहरन्ति, आद्यं सप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यैकवाक्यतापन्नवाक्ये, अन्त्यं चोदासीने धर्मान्तरोपादानप्रतिषेधाऽकारिणि, इत्थं च स्यादस्तीत्यादिप्रमाणम्, अस्त्येवेत्यादि दुर्नय:, अस्तीत्यादिक: सुनय:, न तु स व्यवहाराङ्गम्, स्यादस्त्येवेत्यादिस्तु सुनय एव व्यवहारकारणं, स्वपरानुवृत्तव्यावृत्तवस्तुविषयप्रवर्तकवाक्यस्य व्यवहारकारणत्वादिति ग्रन्थकृतो विवेचयन्ति–"

– अनेकान्त व्यवस्था प्रकरणम्

સમૂહરૂપ જ છે. માટે દ્રવ્યત્વ ધર્મથી રહિત એવાં તે કાલ્પનિક પદાર્થમાં સ્થાયિત્વ રૂપ અન્ય નયનો અંશ સંલગ્ન થયો. માટે તેણે વાસ્તવિક રીતે સ્થાયિત્વ અંશવાળો કોઈ પદાર્થ માન્યો જ નથી. કારણ કે તેનાં મતે સ્થાયી વસ્તુ અસત્ છે.

આથી જ, શુદ્ધપર્યાયાર્થિક તો એમ જ કહે છે, કે સંતાન જો વાસ્તવિક હોય, તો જ તેમાં સ્થાયિત્વ વગેરે કોઈ અંશ ઘટી શકે. જ્યારે સંતાન જ અસત્, કાલ્પનિક છે, તો એમાં સ્થાયિત્વરૂપ અંશ શી રીતે ઘટી જ શકે? ખપુષ્પનો કોઈ વર્ણ ન હોય. આવું પ્રતિપાદન કરતાં (શુદ્ધ) પર્યાયાર્થિકને દ્રવ્ય વિનિર્મુક્ત પ્રકારતાક જ કહેવાય.

આમ, **નયોપદેશ** કહે છે, કે ક્યાં તો ઇતરનયનાં અંશથી જે મુક્ત હોય, તેવું જ્ઞાન, અથવા ઇતરનયનાં અંશને ઉપસર્જનતાથી જે ગ્રહણ કરે તેવું જ્ઞાન નયજ્ઞાન કહેવાય.

આમ, ઉપસર્જનતાથી જાણવું, તે કાલ્પનિકતયા જાણવું. કારણ કે જો તદ્ધર્મવત્ત્વેન જાણીએ, (વાસ્તવિક રીતે જાણીએ) તો એને ગૌણ રીતે જાણ્યું કહેવાય જ નહીં; પરંતુ પ્રધાનતાથી જ જાણ્યું કહેવાય.

શંકા : તે નય દ્વારા પણ ઇતર અંશનું જો તદ્ધર્મવત્ત્વેન જ ભાન થાય, તો શું વાંધો?

સમાધાન : જો તે નયમાં સ્વાંશ અને અન્ય અંશ-બન્નેનું તદ્ધર્મવત્ત્વેન=નિરુપચરિત રીતે જ ભાન થાય, તો તે જ્ઞાન કદાચ ૧) **સંશયરૂપ** બને, કારણ કે બે વિરુદ્ધ કોટિનું એક વિશેષ્યમાં જ્ઞાન થાય, એ સંશય કહેવાય. કદાચ તે ૨) **સમૂહાલંબન-સમુચ્ચય-રૂપ** બને. સ્યાત્ અને એવ કારથી યુક્ત હોવાથી અને સાંશવસ્તુનું ગ્રહણ કરતો હોવાથી સપ્તભંગીના ત્રીજા ભાંગાથી થતું જ્ઞાન હોય, તેના જેવું આ નયાત્મક જ્ઞાન બને. તે જ્ઞાન નયરૂપ કહેવાય, પણ દ્રવ્યાર્થિકનય રૂપ ન કહેવાય. કદાચ તે ૩) સ્વઇતરનયાંશનો **બાધ** કરી, સ્વાંશનાં જ્ઞાનને જ જન્માવે, એટલે દ્રવ્યાર્થિક નય પર્યાયનું ગ્રહણ કરનાર બની રહે, જેથી અસંભવ દોષ આવે. અથવા, કદાચ તે ૪) **પ્રમાણરૂપે** પરિણમેલું એવું માધ્યસ્થ્યપરિણતિને સ્પર્શ કરાવે... પરંતુ, આખરે તે દ્રવ્યાર્થિકનયરૂપતાને અવશ્ય

दुर्नयत्वमेव, यदि चोक्तभावनादाढ्यार्नुकूलस्वविषयोत्कर्षाधानाय तदा सुनयत्वमेव।'

अयं भावः- स्वविषयं प्रतिपादयन्नयः प्रवर्तते, यथा परसमयबौद्धदर्शनीयनयः स्वसमयीयशुद्धपर्यायार्थिको वा नयः "सर्वं क्षणिक"मिति वदति। प्रज्ञापकेनैवमुक्ते श्रोताऽवग्रहीतुं न पारयति, "सर्वं स्थायी"तिव्यवहारनयभावनाभावितमनस्कत्वात्। तदा प्रज्ञापकेन प्रतिपाद्यनयविषयस्य पदार्थस्येतरांशस्य बोधनाय तदंशमात्रप्ररूढायास्तद्वासनाया उपरि निस्त्रिंशं शब्दप्रहारा अवश्यंकर्तव्यतयाऽऽपतन्ति। न च स स्वनयेतरांशखण्डनं द्वेषबुद्ध्या करोति, किन्तु श्रोतृमतिग्राहणोद्देशेनेति तस्य सुनयत्वमेव। एवं च "सर्वं क्षणिकमिति" वचोऽपि यदा सौगतीयं स्वसमयस्थं वाऽनित्यत्वभावनापोषणार्थं वक्त्रोच्यमानमास्ते, तदा व्यवहारवासनोच्छेदाय स्वार्थज्ञानजन्यभावनादाढ्यार्नुकूलस्वविषयोत्कर्षाधानाय चावश्यंतया स्वेतरनयार्थव्यवहारनयार्थप्रतिषेधः कार्य एव, तथाऽपि न तत्प्रतिषेधनं दुर्नयत्वमेव सम्पादयति तन्नयस्य, द्वेषबुद्ध्या प्रतिषेधस्याभावात्, मिथ्यैकान्ताग्रहस्याभावादिति।

इत्यतः द्वेषबुद्ध्येतरनयार्थखण्डने दुर्नयत्वम्, तदभावे सुनयत्वम्, सप्तभङ्ग्यात्मकसमग्रवाक्येन जायमानस्य बोधस्य, 'अनन्तधर्मात्मकं सदि'त्यादि वा श्रुतवितर्केण जायमानस्य बोधस्य प्रमाणत्वमिति संवित्तिप्रकारसङ्क्षेपः ॥२२॥

अव. अथ समग्रप्रकरणस्योपसंहारमाह-

इति ज्ञातवचःशुद्धि-सारा नयप्रमाणयोः ।
तथा कुर्युः सन्नियोगं, मोक्षो यन्निकषा भवेत् ॥२३॥

॥ वक्ता प्रमाणवाक्यं नयवाक्यं वोचिततयोपयुञ्जानः शुद्धदेशकः ॥

टीका – **अथ**-सप्तभङ्ग्याद्यात्मकं प्रमाणवाक्यम्, अन्यतमभङ्गात्मकं च नयवाक्यम् एतदद्वयमपि सर्वज्ञशासने प्रयोक्तव्यतया सम्मतम्। किन्तु तत्राप्युत्सर्गतस्तु सप्तभङ्ग्याद्यात्मकं प्रमाणवाक्यमेव वक्तव्यम्, न तु नयवाक्यम्। तदुक्तं **सम्मतौ**-

"सीसमइविप्फारण-मेत्तत्थोऽयं कओ समुल्लावो।
इहरा कहामुहं चेव, णत्थि एअं ससमयंमि ॥तृ.का. २५॥

છોડી જ છે.

વળી, નયવાક્યમાં 'એવ' કારનો પ્રયોગ થાય જ છે. એનાથી જ અનિષ્ટાર્થનો વ્યવચ્છેદ થાય અને અનિષ્ટ અર્થ એ તે નયને માટે ઇતર અંશ જ છે. માટે નયજ્ઞાનમાં માત્ર સ્વનો અંશ જણાય. ઇતર અંશ તદ્ધર્મવત્ત્વેન ક્યારેય ન જ જણાય. **ઇતિ સંક્ષેપ.**

।। દુર્નય અને નયનું નિષ્કૃષ્ટ સ્વરૂપ ।।

આથી એમ સાબિત થયું કે દરેક નય સ્વાંશનું જ ગ્રહણ કરે છે અને અન્ય અંશનો વ્યવચ્છેદ કરે છે. કારણ કે અન્ય અંશ એને અનિષ્ટ છે. અને એના વ્યવચ્છેદ માટે જ નયવાક્યમાં 'એવ' કારનો પ્રયોગ કરાયો છે. પરંતુ 'સ્યાત્'નો પ્રયોગ કરો, તો સુનયવાક્ય અને એનો પ્રયોગ ન કરો, તો દુર્નયવાક્ય એમ સમ્યગ્ અપેક્ષાપૂર્વક એકાન્તનું ગ્રહણ કરાય તો સુનયજ્ઞાન અને નિરપેક્ષ રીતે એકાન્ત ગ્રહણ કરનારું દુર્નયજ્ઞાન.

અન્યયોગ વ્યવચ્છેદ દ્વાત્રિંશિકામાં ૨૮મી ગાથામાં નય-દુર્નય અને પ્રમાણનું સ્વરૂપ આ રીતે દર્શાવાયું છે. 'સદેવ' આ દુર્નયવાક્ય છે. 'સત્' એ સુનયવાક્ય છે. અને 'સ્યાત્ સત્' એ પ્રમાણવાક્ય છે. આને વિશે **અનેકાન્ત-વ્યવસ્થામાં** કહ્યું છે, કે ''સત્ એ જેમ નયવાક્ય છે. તેમ 'સ્યાત્ સદ્ એવ' એ પણ નયવાક્ય જ છે. જે સપ્તભંગીના અન્યતર ભંગરૂપ છે. તથા તે જ વ્યવહારનો વિષય બને છે.'' 'સ્યાત્ સત્' એ પ્રમાણ વાક્ય છે. કારણ કે ત્યાં 'સ્યાત્' પદનો અર્થ સાક્ષાત્ અનંતધર્માત્મકત્વ થાય છે અને 'સત્' પદ વસ્તુવાચક બને છે.

।। દુર્નયત્વ એ બીજાનાં વિરોધથી ન આવે પરંતુ મિથ્યા એકાન્તરૂપ હોવાથી જ આવે ।।

શંકા : તો શું અન્ય નયનો વિરોધ કરનારું જ્ઞાન કે વાક્ય એ પણ સુનય કે સુનય વાક્ય હોઈ શકે?

સમાધાન : જે વિરોધ કરે એ દુર્નય અને વિરોધ ન કરે તે સુનય. આવી વ્યાખ્યા અમે માનતા જ નથી. પરંતુ સમ્યગ્ એકાન્તનું ગ્રહણ કરનારો સુનય

नास्त्येतद् इति नयवाक्यं, स्वसमये। अतो नयवाक्यं नोत्सर्गतः प्रयुज्यते- **इति चेत्?**

तन्न, श्रोत्राश्रितैव देशना स्यात्, स्याद्वादरुचिशालिने श्रोत्रे प्रथमत एव स्याद्वादकथने सम्भवत्यपि 'अस्ति न वे'ति प्रश्नो जिज्ञासुना यदा सत्त्वस्य भावप्रकारतायाः प्राधान्यं निश्रित्य कृतः तदा प्रत्युत्तररूपेण "स्यादस्त्येवे" ति नयवाक्यमेव कथनीयं प्रज्ञावता प्रज्ञापकेन। तत्पश्चात्सति तादृशे प्रसङ्गे कारणे वाऽऽकाङ्क्षोत्थापनीया श्रोतरि, षड्विधोत्थाप्याकाङ्क्षाक्रमेण च तत्परतः षडपि प्रकाराः जिज्ञासयितव्याः प्रश्नयितव्याः, प्रत्युत्तररूपेण च षट्प्रकारप्ररूपणं कर्तव्यम्, इत्येवं समग्रा भविष्यति सप्तभङ्गी। प्रमाणवस्तु ज्ञास्यते श्रोत्रा।

यदि च श्रोताऽऽदित एव व्युत्पन्नः, तदा तस्मै पूर्वमेव अनेकान्तकथनमुचितम्, यथा **भगवता वर्द्धमानेन "भंते! रयणप्पभापुढवी किं सासया असासया?"** इति **गणधरगौतमस्वामि**प्रश्नस्य प्रत्युत्तररूपेण कथितं **"सिय सासया, सिय असासया।"** इति स्याद्वादप्रत्युत्तरः, श्रोतुर्निस्सन्देहाऽवधारणशक्तेः। एवं यदा कश्चिच्छलेन निग्रहीतुं प्रयतेत, तस्मै अप्यादित एव स्याद्वादकथनमावश्यकम्, यथा-**"सरिसवया किं भक्खा अभक्खा?"** इति प्रश्ने भगवतोक्तं **"सिय भक्खा, सिय अभक्खा।"** इति।

।। प्रमाणनयदेशनायामुत्सर्गापवादत्वाभावः ।।

न च-श्रोत्राधीनदेशनायां स्यादयं नियमः, सामान्यतस्तु प्रमाणकथनमेव युज्यते-इति **वाच्यम्,** सामान्यव्याख्यानेऽपि न नियमः, वक्ता प्रमाणदेशनामपि दद्यात्, नयदेशनामपि दद्यात्, **न च** तथापि प्रमाणदेशनया न काचिदन्याऽऽपत्तिः, अनेकान्तरूपत्वात्तस्याः, नयदेशनायास्तु एकान्तरूपत्वात्कदाचिन्मिथ्याग्रहण-परिणामवशतः संसारफलकत्वमेवेति **वाच्यम्।** अनेकान्तेऽपि यद्येकान्त एवावगृहीतस्तदा तस्यापि संसारफलकत्वं समानमेव।

इति द्वयोरपि एतयोः वाक्ययोः कारणिकत्वमेव, अतोऽत्र नैयत्येन नौत्सर्गिकत्वं आपवादिकत्वं वा, स्वस्वस्थाने द्वयोरपि प्राधान्यविधेः, तथा चावधेयं

અને મિથ્યા એકાન્તનું ગ્રહણ કરનારો દુર્નય. આવું અમે કહીએ છીએ.

શંકા : ઈતરનયાંશનો વિરોધ કરે એને સુનય શી રીતે કહી શકાય?

સમાધાન : ''ઈતરનયાંશનો વિરોધ જો દ્વેષબુદ્ધિથી કરે તો પોતે મિથ્યા એકાન્તરૂપે પરિણમે અને જો પૂર્વોક્ત ભાવનાની દઢતા થાય, એ ખાતર પોતાના વિષયનો ઉત્કર્ષ સિદ્ધ કરવા માટે અન્ય નયાંશનો વિરોધ કરે, તો તે મિથ્યા એકાન્તરૂપ બનતો નથી. માટે સુનય જ છે.'' આવો પાઠ **નયોપદેશ-નયામૃતતરંગિણી**માં જણાવ્યો છે.

આને વિસ્તારથી સમજીએ-નય હંમેશા સ્વવિષયનું પ્રતિપાદન કરતો હોય છે. જેમ કે પરસમયમાં બૌદ્ધદર્શનરૂપ નય અને સ્વસમયમાં શુદ્ધ પર્યાયાર્થિકનય 'સર્વં ક્ષણિકં' આવું કહે છે. પરંતુ, શિષ્ય જ્યારે વ્યવહારની ભાવનાથી ભાવિત મનવાળો જ હોય, ત્યારે એ આ વાતને સ્વીકારી શકતો નથી. અને જો એને સ્વીકારી ન શકે, તો એના જ્ઞાનથી જે પર્યાયનો બોધ કરાવવા રૂપ પ્રયોજન, અથવા અનિત્ય ભાવનાની સિદ્ધિરૂપ જે પ્રયોજન છે, તે સિદ્ધ થતું નથી. માટે તે પ્રયોજનને સિદ્ધ કરવા માટે પ્રજ્ઞાપકે તેને પર્યાયાર્થિકનયનું જ્ઞાન કરાવવું જ રહ્યું. અને શ્રોતા તેને બરાબર જાણી શકે તે માટે તેણે શ્રોતાના મનમાં પડેલાં વ્યવહારનયની ભાવનાના સંસ્કારોને અવશ્ય તોડવાં જ પડે. એટલે તે ઈતરનયાંશનું ખંડન કરે, પરંતુ દ્વેષબુદ્ધિથી નહીં, શ્રોતાનાં મગજમાં બેસે એટલા માટે. આથી, અન્યનયાંશપ્રતિષેધ એ દુર્નયતાનું પ્રયોજક નથી. પરંતુ, મિથ્યા એકાન્તરૂપે ગ્રહણ કરવું, એ દુર્નયતાનું પ્રયોજક છે.

આમ, સુનય-દુર્નય અને પ્રમાણની પરિભાષાનું સ્પષ્ટીકરણ કર્યું. આ સંવિત્તિનાં પ્રકારની વિચારણાનો સંક્ષેપ છે. ।।૨૨।।

અવ. હવે સમગ્ર પ્રકરણનો ઉપસંહાર કરે છે-

એમ વચનની શુદ્ધિને, જાણી નય-પ્રમાણ;
યોગ્ય રીતથી આદરી, મોક્ષનિકટતા પામ ।।૨૩।।

नयोपदेशवचनमिदं → प्रमाणवाक्यमपि ह्यनेकान्तरुचिशालिनं पुरुषविशेष-मधिकृत्यैव प्रयुज्यते, तदनयोर्द्वयोरपि कारणिकत्वे प्राप्ते स्वस्वकाले औत्सर्गिकत्वमेव न्यायसिद्धम्, विप्रतिषिद्धकरणविधिस्थले तथाव्युत्पत्तेः, ← सदा मनसि दृढतरमवधार्यम्। इत्यनेकान्तेऽपि नैकान्तो ग्राह्यः। तथा तथा वाक्यप्रयोगः कर्तव्यः, यथा मोक्षो निकटं भवेद् वक्तृश्रोत्रोः, अनेकान्तेन कदाचन नयवाक्यस्य कदाचन प्रमाणवाक्यस्य च स्वपरोपकाराधानेन मोक्षापादनादिति विज्ञप्तिः उपदेशश्च ।।२३।।

।। एवं सम्पूर्णमिदं सप्तभङ्गीप्रकाशप्रकरणम् ।।

।। ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः ।।

।। ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः ।।

।। पूज्यपादश्रीआत्मारामकमलसूरिवरदानसूरिवरसद्गुरुवरेभ्यो नमः।।

सिद्धान्तमहोदधिसुविशालगच्छनिर्मातृपूज्याचार्यश्रीप्रेमसूरिवरशिष्य-न्यायविशारदसुविशालगच्छाधिपतिपूज्याचार्यश्रीभुवनभानुसूरिवरशिष्यसिद्धान्त-दिवाकरपूज्याचार्यश्रीमद्विजयजयघोषसूरीश्वरा अस्माकं गच्छाधिपतयः ।

पूज्याचार्यश्रीवरबोधिसूरिवरा नः गणाचार्या दीक्षादातारश्च ।

पूज्याचार्यश्रीभुवनभानुसूरिशिष्यघोरतपस्विमुनिराजश्रीमणिप्रभविजयशिष्य-पंन्यासश्रीकैवल्यबोधिविजयशिष्यपंन्यासश्रीपद्मबोधिविजया मम गुरवः।

वैक्रमे २०७१ तमे वर्षे सूर्यपुरनगरे सरेलावाडी-घोडदोडरोडजैनसङ्घे चातुर्मास्यां ग्रन्थ एष लिलिखे देव-गुरुकृपया मया मुनितीर्थबोधिविजयेन ।

ग्रन्थस्य सर्जनात्कर्म-निर्जरा प्राप्यतां मया ।
तथाऽस्य पठनादन्यै-रन्ते स्युर्मोक्षगास्समे ।।१।।

एकान्तदुर्व्यालविनाशिनी सा,
पापापहा पुण्यविलासकर्त्री ।
तीर्थङ्करास्यप्रविजृम्भमाणा,
स्याद्वादमुद्रा जयति प्रपूर्णा ।।२।।

।। પ્રમાણવાક્ય અને નયવાક્યનો યોગ્ય રીતે ઉપયોગ કરે તે શુદ્ધપ્રરૂપક કહેવાય ।।

વાર્તિક. શંકા : પ્રમાણ વાક્ય અને નયવાક્ય આ બેનો જ પ્રયોગ કરવો જોઇએ એવું કહ્યું છે. પરંતુ, તેમાં પણ મુખ્યત્વે ઉત્સર્ગથી તો પ્રમાણવાક્ય જ કહેવું જોઇએ, નયવાક્ય નહીં. કેમ કે **સમ્મતિતર્કમાં તૃતીયકાંડની ૨૫મી ગાથામાં** કહ્યું છે કે ''સ્વસમયમાં નયવાક્ય હમણાં નામશેષ થયું છે, અર્થાત્ પ્રચલનમાં નથી.'' આથી ઉત્સર્ગથી તો નયવાક્ય ન જ વાપરવું.

સમાધાન : દેશના એ સામાન્યથી શ્રોતાને આશ્રયીને કરાય છે. અર્થાત્ શ્રોતાની રુચિ-જિજ્ઞાસા પ્રમાણે કરાય. આથી શ્રોતા જ્યારે અનેકાન્તની રુચિ ધરાવતો હોય, તો એમને પહેલેથી જ સ્યાદ્વાદ=પ્રમાણવાક્ય કહેવામાં વાંધો નથી. પરંતુ, જો તે અમુક અંશની જિજ્ઞાસાથી જ પૂછતો હોય, તો પ્રજ્ઞાપકે પણ પહેલાં તો નયવાક્ય જ કહેવું. પછી પ્રસંગવિશેષ કે કારણવિશેષ હોય, તો એના મનમાં જિજ્ઞાસા ઉભી કરાવવી, પછી પ્રશ્નો પૂછાવવાં અને પછી બાકીનાં અંશોનું પણ વિવરણ કરી છેલ્લે પ્રમાણવાક્ય કહેવું. જેથી શ્રોતા પ્રામાણિક વસ્તુને જાણી શકે.

અને જો શ્રોતા પહેલેથી જ વ્યુત્પન્ન જ હોય, તો તેને પહેલેથી પણ અનેકાન્તનું કથન કરવું યોગ્ય જ છે. જેમકે **ભગવાન મહાવીરે** ''હે ભગવન્! રત્નપ્રભા પૃથ્વી શું શાશ્વત છે કે અશાશ્વત છે?'' આવાં **ગૌતમસ્વામીજી**નાં પ્રશ્નના જવાબમાં એમ કહ્યું કે ''સ્યાત્ શાશ્વત છે, સ્યાત્ અશાશ્વત છે.'' કારણ કે શ્રોતા ગૌતમસ્વામી હતા. જેમનામાં સંશય વગર અવધારણ કરવાની ક્ષમતા હતી. બાકી આવી ક્ષમતા ન હોય, તો અનેકાન્તનું કથન કરવાં દ્વારા પણ ભ્રમ થવાનો ભય છે અને અનેકને એવો ભ્રમ થયો પણ છે. એ રીતે, જો કોઇ છલથી નિગ્રહ કરવાનો પ્રયત્ન કરે, તો એને પણ સ્યાદ્વાદ પ્રત્યુત્તર આપવો પડે. **શ્રી ભગવતી**માં એનો પણ રેફરન્સ મળે છે.

।। પ્રમાણ દેશના અને નયદેશનામાં ઉત્સર્ગ અને અપવાદ ભાવ ન માની શકાય ।।

શંકા : શ્રોતાને જોઇને કરાતી દેશનામાં આવો નિયમ હોઇ શકે. સામાન્યથી તો પ્રમાણકથન જ કરવું જોઇએ. માટે પ્રમાણદેશના એ ઉત્સર્ગ અને નયદેશના એ અપવાદ થયો.

સમાધાન : દેશના તો શ્રોતાને આશ્રયીને જ થાય. છતાં'ય જ્યારે વક્તા સ્વરસથી જ દેશના કરતા હોય, ત્યારે પણ એમણે પ્રમાણદેશના જ આપવી, આવો નિયમ નથી. એઓ પ્રમાણદેશના પણ આપી શકે, નયદેશના પણ આપી શકે...

શંકા : પરંતુ, પ્રમાણદેશનાથી બીજી કોઇ આપત્તિ નહીં આવે. કારણકે તે અનેકાન્તરૂપ છે. જ્યારે નયદેશના એ એકાન્તરૂપ હોવાથી એને મિથ્યા રીતે ગ્રહણ કરી લે તો તે મિથ્યા એકાન્તરૂપ બનવાથી સંસારનું કારણ બની જાય.

સમાધાન : નયજ્ઞાનની વિષય બનતી એકાન્ત વસ્તુની જેમ પ્રમાણજ્ઞાનના વિષય બનતી અનેકાન્ત વસ્તુમાં પણ જો એકાન્ત=મિથ્યાઆગ્રહ ગ્રહણ કરી લેવામાં આવે, તો એનાથી પણ સંસાર વધી જવાની શકયતા યથાવત્ ઊભી છે.

આ રીતે પ્રમાણવાક્ય અને નયવાક્ય આ બન્ને કારણિક જ થયાં. અર્થાત્ અમુક કારણને આશ્રયીને જ બન્નેનો પ્રયોગ થાય છે. આથી એ બન્નેમાં ઉત્સર્ગ-અપવાદભાવ નથી. ઉત્સર્ગઅપવાદભાવ તો ક્યાં આવે? જ્યાં એમાંથી અન્યતરનું આદરણ સામાન્યથી કરાય અને બીજાનું આદરણ કારણ વિશેષે જ કરાય. ત્યાં પ્રથમ ઉત્સર્ગ બને. દ્વિતીય અપવાદ બને. અહીં તો **નયોપદેશ**નાં વચન મુજબ બન્ને'ય સ્વ-સ્વકાલે ઉત્સર્ગરૂપ જ છે.

આથી જ, અનેકાન્તમાં પણ એકાન્ત નહીં રાખવો જોઇએ. પરંતુ, તેવી તેવી રીતે વાકયપ્રયોગ કરવો, અર્થાત્ અનેકાન્તથી=ક્યારેક નયવાક્યનો અને ક્યારેક પ્રમાણવાકયનો પ્રયોગ કરવો કે જેથી સ્વપરને ઉપકાર થવાથી વક્તા અને શ્રોતાનો મોક્ષ નિકટમાં આવે... આવી રચનાકારની છેલ્લી વિનંતી કે ઉપદેશ છે. ।।૨૩।।

।। આ પ્રમાણે સપ્તભંગી-રાસ પૂર્ણ થયો. ।।

।। પ્રશસ્તિ ।।

પૂજ્યપાદ શ્રી આત્મારામજી-કમલસૂરિજી-દાનસૂરિજી-પ્રેમસૂરિજી સદ્ગુરુભ્યો નમઃ

સિદ્ધાન્તમહોદધિ સુવિશાલગચ્છાધિપતિ પૂજ્યપાદ આચાર્ય ભગવંત **શ્રી પ્રેમસૂરિશ્વરજી મહારાજા**ના વંશજ ન્યાયવિશારદ ધાર્મિકશિક્ષણશિબિરના આદ્યપ્રણેતા સુવિશાલગચ્છનિર્માતા પૂજ્યપાદ આચાર્યભગવંત**શ્રી ભુવનભાનુ સૂરીશ્વરજી**ના અન્વયમાં વર્તમાનમાં વિદ્યમાન સિદ્ધાન્તદિવાકર પૂજ્યપાદ આચાર્યભગવંત **શ્રીમદ્ વિજય જયઘોષસૂરીશ્વરજી મહારાજ** વર્તમાન ગચ્છાધિપતિ છે.

પૂજ્યપાદ આચાર્યભગવંત **શ્રી વરબોધિસૂરિવર** અમારા ગણાચાર્ય અને દીક્ષાદાતા છે.

પૂજ્યપાદ આચાર્યભગવંત **શ્રી ભુવનભાનુસૂરિજી**નાં શિષ્ય ઘોરતપસ્વી સુવિશુદ્ધસંયમી **મુનિરાજ શ્રી મણિપ્રભવિજયજી**ના શિષ્ય પંન્યાસ**શ્રી કૈવલ્યબોધિ વિજયજી મ.સા.**ના શિષ્ય તથા પૂજ્ય આચાર્ય**શ્રી કુલબોધિસૂરિજી**ના ભ્રાતા પંન્યાસ**શ્રી પદ્મબોધિ વિજયજી મહારાજા** અમારા ગુરુ છે.

વિક્રમ સંવત ૨૦૭૨મા વર્ષે મુંબઇનગરે શ્રી જુહુ સ્કીમ જૈન સંઘમાં ચાતુર્માસ દરમ્યાન આ ગ્રંથ **મુનિ તીર્થબોધિ વિ.** દ્વારા લખાયો.

સ્વલિખિત ''સપ્તભંગી પ્રકાશ'' નામના સંસ્કૃત ભાષાબદ્ધ ગ્રંથને અનુસરીને લખાયેલા આ ગ્રંથનાં સર્જનથી મને કર્મનિર્જરા મળો, અને આનાં પઠનથી અપ્રતિમ અજેય સ્યાદ્વાદને જાણી, સમજી, અનુસરી, અંતે સર્વકર્મોથી મુક્ત થઇ, સૌ મોક્ષ સુખનાં ભોક્તા બનો. **ઈતિ શમ્.**

શ્રી ત્રિભુવનભાનુ શાસન સેવા ટ્રસ્ટમાં જ્ઞાન દ્રવ્યનાં

દાતા શ્રી સંઘો

૧. નડીયાદ શ્વે. મૂ. પૂ. જૈન સંઘ, ગુજરાત

૨. રોયલ કોમ્પ્લેક્ષ જૈન સંઘ, બોરીવલી (વે), મુંબઇ

૩. અઠવાલાઈન્સ શ્વે. મૂ. પૂ. જૈન સંઘ, તથા
ફુલચંદ કલ્યાણચંદ ઝવેરી ટ્રસ્ટ-સુરત, ગુજરાત

૪. શ્રી મહાવીરનગર જૈન સંઘ, દહાણુકર વાડી, કાંદિવલી (વે), મુંબઇ

૫. શ્રી બાવન જિનાલય જૈન સંઘ, ભાયંદર

૬. શ્રી ધર્મવર્ધક જૈન સંઘ, ગેલેક્સી એપાર્ટમેન્ટના આરાધકો તરફથી, સુરત

૭. શ્રી શાંતિનિકેતન, સરદારનગર જૈન સંઘ, સુરત

૮. શ્રી ધર્મવર્ધક શ્વે. મૂ. પૂ. જૈન સંઘ, બોરીવલી (ઇ)

૯. શ્રી બોરીવલી જૈન મૂ. પૂ. તપા. જૈન સંઘ, બોરીવલી (વે)

૧૦. શ્રી કોલડુંગરી જૈન શ્વે. મૂર્તિપૂજક સંઘ, અંધેરી (વે)

૧૧. શ્રી ઘોડદોડ જૈન શ્વે. મૂર્તિપૂજક સંઘ, સુરત

૧૨. શ્રી આદિનાથ શ્વે. મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, નવસારી

૧૩. શ્રી શ્વે. મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, સાયન (શિવ), મુંબઇ

૧૪. શ્રી ચકાલા શ્વે. મૂ. પૂ. જૈન સંઘ, અંધેરી (વે), મુંબઇ

૧૫. શ્રી જુહુ લેન શ્વે. મૂ. તપા. જૈન સંઘ, અંધેરી (વે), મુંબઇ

૧૬. શ્રી જુહુ સ્કીમ શ્વે. મૂ. પૂ. તપા. જૈન સંઘ, જુહુ સ્કીમ

૧૭. શ્રી વિલેપાર્લે (વે) જૈન સંઘની આરાધક શ્રાવિકાઓ

॥ ભૂરિ- ભૂરિ અનુમોદના ॥

ગ્રંથના લાભાર્થી સંઘ

શ્રી બોરીવલી શ્વે. મૂ.પૂ. જૈન સંઘ

મંડપેશ્વર રોડ, બોરીવલી (વે.) મુંબઇ.